ISSN : 2581-8848

हिंदी गीत और ग़ज़ल: सत्ता-संरचना, साम्प्रदायिक तनाव और आर्थिक विषमता का काव्यात्मक दस्तावेज़

प्रो. डॉ. जिजाबराव व्ही. पाटील
उपप्राचार्य एवं शोधनिर्देशक हिंदी विभाग
श्री. शेठ मुरलीधरजी मानसिंगका साहित्य विज्ञान
व वाणिज्य महाविद्यालय, पाचोरा

सारांश

हिंदी गीत और ग़ज़ल आधुनिक समाज की जटिल राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों को अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम हैं। प्रारंभ में जहाँ ग़ज़ल को प्रेम और व्यक्तिगत संवेदनाओं की विधा माना जाता था, वहीं समकालीन हिंदी ग़ज़ल ने अपने विषय-क्षेत्र का व्यापक विस्तार किया है। आज यह सत्ता, व्यवस्था और समाज के बीच के अंतर्विरोधों को सामने लाने वाली प्रभावी साहित्यिक विधा बन चुकी है।

समकालीन हिंदी गीत और ग़ज़ल में सत्ता-संरचना की असमानता और प्रशासनिक अन्याय प्रमुख रूप से उभरते हैं। संसाधनों का केंद्रीकरण, न्याय-प्रणाली की विफलता और आम जन की उपेक्षा को ग़ज़लकारों ने प्रतीकात्मक और व्यंग्यात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। इन रचनाओं में सत्ता का आलोचनात्मक विश्लेषण स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, जो लोकतांत्रिक चेतना को मजबूत करता है।

साम्प्रदायिक तनाव हिंदी ग़ज़ल का एक महत्वपूर्ण सरोकार बनकर उभरा है। धर्म के नाम पर समाज को विभाजित करने वाली राजनीति, धार्मिक उन्माद और सत्ता-लाभ की प्रवृत्ति को ग़ज़लकारों ने बेनकाब किया है। इन ग़ज़लों में मानवता, सहिष्णुता और सामाजिक सौहार्द के मूल्यों की रक्षा का आग्रह स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है।

आर्थिक विषमता, गरीबी, बेरोज़गारी और सामाजिक असुरक्षा समकालीन हिंदी ग़ज़ल के केंद्रीय विषय हैं। दुष्यंत कुमार, अदम गोंडवी, रामकुमार कृषक, ज्ञान प्रकाश विवेक, विनय मिश्र और ज़हीर कुरेशी जैसे रचनाकारों की ग़ज़लों के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि हिंदी ग़ज़ल केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि प्रतिरोध और जनचेतना की प्रभावशाली विधा है, जो समाज को आत्ममंथन और परिवर्तन की दिशा प्रदान करती है

प्रस्तावना

आधुनिक हिंदी गीत और ग़ज़ल अब केवल प्रेम, विरह और सौंदर्य की अनुभूतियों तक सीमित नहीं रहीं, बल्कि वे समाज के व्यापक यथार्थ को अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम बन चुकी हैं। बदलते सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक संदर्भों ने इन विधाओं के स्वरूप और विषय-वस्तु में महत्वपूर्ण परिवर्तन किया है। आज हिंदी ग़ज़ल जनजीवन की समस्याओं, संघर्षों और आकांक्षाओं को प्रतिबिंबित करने वाली साहित्यिक अभिव्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी है।

लोकतंत्र, सत्ता और प्रशासनिक तंत्र से जुड़े प्रश्न आधुनिक हिंदी ग़ज़ल के केंद्रीय सरोकार बन गए हैं। सत्ता का केंद्रीकरण, न्याय-प्रणाली की विफलता, भ्रष्टाचार और आम नागरिक की उपेक्षा को ग़ज़लकारों ने तीखे व्यंग्य और प्रतीकात्मक भाषा में प्रस्तुत किया है। इस प्रकार ग़ज़ल सत्ता और समाज के बीच संवाद स्थापित करने का माध्यम बनती है।

धर्म और साम्प्रदायिकता भी समकालीन हिंदी ग़ज़ल के महत्वपूर्ण विषय हैं। धर्म के नाम पर फैलाए जा रहे विभाजन, असहिष्णुता और हिंसा के विरुद्ध ग़ज़लकारों ने मानवीय मूल्यों और सामाजिक सौहार्द की पक्षधरता की है। हिंदी ग़ज़ल इस संदर्भ में सांस्कृतिक एकता और सहिष्णुता की आवाज़ बनकर उभरती है। वर्तमान समय में जब आर्थिक विषमता गहराती जा रही है और बेरोज़गारी, गरीबी तथा सामाजिक असुरक्षा आम जनजीवन की प्रमुख समस्याएँ बन चुकी हैं, तब हिंदी ग़ज़ल सामाजिक हस्तक्षेप का सशक्त माध्यम बनकर सामने आती है। यह विधा न केवल यथार्थ का चित्रण करती है, बल्कि समाज को आत्ममंथन और परिवर्तन की दिशा में प्रेरित करने का कार्य भी करती है।

विषय विवेचन

1. सत्ता-संरचना और संसाधनों का केंद्रीकरण:

समकालीन हिंदी ग़ज़ल में सत्ता-संरचना का प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण रूप में उभरता है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में संसाधनों का समान वितरण एक मूलभूत अपेक्षा होती है, किंतु व्यवहार में सत्ता और पूँजी कुछ सीमित वर्गों के हाथों में केंद्रित होती चली जाती है। इस विसंगति को दुष्यंत कुमार ने अत्यंत सशक्त रूपक के माध्यम से प्रस्तुत किया है—

"यहाँ तक आते-आते सूख जाती हैं कई नदियाँ,
मुझे मालूम है पानी कहाँ ठहरा हुआ होगा।"1.

इस शेर में 'नदियाँ' जनसाधारण और 'पानी' संसाधनों का प्रतीक है। सत्ता-संरचना की यात्रा में जब संसाधन जनता तक पहुँचते-पहुँचते समाप्त हो जाते हैं, तब यह प्रश्न उठता है कि वे कहाँ ठहर गए। कवि का संकेत स्पष्ट है कि संसाधन सत्ता-केंद्रों, उच्च वर्गों और प्रभावशाली लोगों के पास रुक जाते हैं। यह ग़ज़ल सत्ता की उस संरचना को उजागर करती है, जिसमें असमानता व्यवस्था का स्थायी रूप बन चुकी है।

इसी विचार को ज्ञान प्रकाश विवेक और अधिक तीखे तथा प्रत्यक्ष शब्दों में प्रस्तुत करते हैं—

"बे-मेहर हुक्काम था सब कुछ उठा कर ले गया
जिस तरह दरियाओं का पानी समंदर ले गया।"2

यहाँ 'समंदर' सत्ता का प्रतीक है, जो अपने विस्तार और शक्ति के बल पर सब कुछ अपने भीतर समेट लेता है। 'दरियाओं का पानी' जनता की मेहनत, संसाधन और अधिकारों को सूचित करता है, जिन्हें सत्ता निर्दयतापूर्वक अपने अधिकार में ले लेती है। 'बे-मेहर हुक्काम' शब्द सत्ता की संवेदनहीनता को रेखांकित करता है, जहाँ शासक वर्ग को जनता की पीड़ा से कोई सरोकार नहीं रह जाता।

इन दोनों ग़ज़लों के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि हिंदी ग़ज़ल सत्ता-संरचना की केवल आलोचना ही नहीं करती, बल्कि उसके कार्य-तंत्र को भी उजागर करती है। संसाधनों का केंद्रीकरण सामाजिक असंतुलन को जन्म देता है, जिससे आर्थिक विषमता, बेरोज़गारी और असंतोष बढ़ता है। दुष्यंत कुमार और ज्ञान प्रकाश विवेक की ग़ज़लें इस संदर्भ में सत्ता और समाज के बीच बढ़ती खाई का प्रामाणिक दस्तावेज़ प्रस्तुत करती हैं। इस प्रकार हिंदी ग़ज़ल लोकतांत्रिक चेतना को जागृत करने वाली प्रतिरोधी साहित्यिक विधा के रूप में स्थापित होती है।

2. प्रशासनिक अन्याय और न्याय व्यवस्था

समकालीन समाज में न्याय-व्यवस्था लोकतंत्र की आधारशिला मानी जाती है, किंतु जब यही व्यवस्था आम नागरिक के लिए जटिल, विलंबित और भ्रष्ट हो जाती है, तब वह अन्याय का माध्यम बन जाती है। आधुनिक हिंदी ग़ज़ल ने इस प्रशासनिक विडंबना को निर्भीकता से उजागर किया है। विनय मिश्र न्याय-प्रणाली की इसी विकृत स्थिति पर तीखा प्रश्न उठाते हैं—

"विलंबित औ' बिकाऊ फ़ैसलों पर
ये कैसी न्याय पाने की सनक है।"3

इस शेर में 'विलंबित' और 'बिकाऊ' जैसे शब्द न्यायिक व्यवस्था के दो प्रमुख दोषों की ओर संकेत करते हैं। एक ओर न्याय में अनावश्यक देरी है, तो दूसरी ओर न्याय का बाज़ारीकरण। आम नागरिक वर्षों तक न्याय की प्रतीक्षा करता रहता है, और अंततः उसे यह एहसास होता है कि न्याय धन और सत्ता के अधीन हो चुका है। कवि का प्रश्न—"ये कैसी न्याय पाने की सनक है"—न्याय की इस निरर्थक खोज पर गहरी व्यथा व्यक्त करता है।

प्रशासनिक अन्याय केवल व्यवस्था की विफलता नहीं, बल्कि सत्ता के संरक्षण में पनपने वाली संरचना का परिणाम है। इस व्यवस्था के विरुद्ध प्रतिरोध की चेतना दुष्यंत कुमार की ग़ज़ल में प्रखर रूप से दिखाई देती है—

"हो गई है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिए,
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए।"4

यहाँ 'पीर पर्वत-सी' जनता की वर्षों से जमी हुई पीड़ा का प्रतीक है, जो अब परिवर्तन की माँग कर रही है। 'हिमालय' सत्ता और व्यवस्था की जड़ता का संकेत है, जबकि 'गंगा' न्याय, शुद्धता और परिवर्तन का प्रतीक बनकर सामने आती है। कवि स्पष्ट रूप से यह संकेत देता है कि व्यवस्था के भीतर से ही परिवर्तन की धारा प्रवाहित होनी चाहिए। इन ग़ज़लों के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि हिंदी ग़ज़ल प्रशासनिक अन्याय के प्रति केवल असंतोष व्यक्त नहीं करती, बल्कि परिवर्तन की आकांक्षा भी प्रकट करती है। न्याय-व्यवस्था की आलोचना के साथ-साथ यह जनचेतना को जाग्रत करने का कार्य करती है। इस प्रकार हिंदी ग़ज़ल सत्ता और प्रशासन के विरुद्ध प्रतिरोध का सशक्त साहित्यिक माध्यम बनकर उभरती है।

3. साम्प्रदायिक तनाव और सत्ता की राजनीति

समकालीन समाज में साम्प्रदायिकता केवल धार्मिक मतभेद तक सीमित नहीं रह गई है, बल्कि यह सत्ता की राजनीति का एक प्रभावी औज़ार बन चुकी है। धर्म के नाम पर समाज को विभाजित कर राजनीतिक लाभ उठाने की प्रवृत्ति आधुनिक समय

ISSN : 2581-8848

की एक गंभीर समस्या है। हिंदी ग़ज़ल ने इस सामाजिक-राजनीतिक यथार्थ को निर्भीकता से उजागर किया है। रामकुमार कृषक की ग़ज़ल इस संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण है—

"वहाँ अल्लाह-हो-अकबर यहाँ श्रीराम की जय-जय
इधर गुरुओं की पौबारह उधर रहबर बहुत खुश है।"5

इस शेर में कवि ने दो धार्मिक नारों को आमने-सामने रखकर साम्प्रदायिक विभाजन की भयावह स्थिति को उभारा है। 'अल्लाह-हो-अकबर' और 'श्रीराम की जय-जय' यहाँ आस्था के प्रतीक नहीं, बल्कि राजनीतिक हथियार के रूप में प्रयुक्त होते दिखाई देते हैं। कवि का संकेत स्पष्ट है कि धार्मिक भावनाओं को भड़काकर समाज में तनाव पैदा किया जाता है, जिससे सत्ता को अपना हित साधने का अवसर मिलता है। शेर की दूसरी पंक्ति—'इधर गुरुओं की पौबारह उधर रहबर बहुत खुश है'—सत्ता की राजनीति पर तीखा व्यंग्य करती है। यहाँ 'गुरु' और 'रहबर' सत्ता-संरचना के वे चेहरे हैं, जो साम्प्रदायिक उन्माद के बीच स्वयं लाभ की स्थिति में रहते हैं। जनता विभाजन, हिंसा और असुरक्षा का शिकार होती है, जबकि सत्ता-प्रतिनिधि अपने राजनीतिक लक्ष्य साधते हैं।

इस ग़ज़ल के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि साम्प्रदायिक तनाव स्वतःस्फूर्त नहीं होता, बल्कि उसे सुनियोजित ढंग से उत्पन्न किया जाता है। हिंदी ग़ज़ल इस यथार्थ को उजागर कर समाज को सचेत करती है और मानवीय मूल्यों, सहिष्णुता तथा सामाजिक सौहार्द की आवश्यकता पर बल देती है। इस प्रकार हिंदी ग़ज़ल साम्प्रदायिक राजनीति के विरुद्ध प्रतिरोध की सशक्त साहित्यिक आवाज़ बनकर सामने आती है।

4. आर्थिक विषमता और गरीबी

आर्थिक विषमता आधुनिक समाज की सबसे गंभीर समस्याओं में से एक है। विकास और समृद्धि के दावों के बीच समाज का एक बड़ा वर्ग आज भी गरीबी, बेरोज़गारी और अभावग्रस्त जीवन जीने को विवश है। हिंदी ग़ज़ल ने इस आर्थिक यथार्थ को अत्यंत संवेदनशील और तीखे स्वर में प्रस्तुत किया है। अदम गोंडवी सरकारी नीतियों और दावों की वास्तविकता को उजागर करते हैं—

"उनका दावा मुफ़लिसी का मोर्चा सर हो गया।
पर हकीकत ये है मौसम और बदतर हो गया।"6

इस शेर में कवि विकास और गरीबी उन्मूलन के दावों तथा जमीनी सच्चाई के बीच के अंतर को स्पष्ट करता है। सत्ता द्वारा प्रस्तुत आँकड़े और घोषणाएँ भले ही सफलता का दावा करें, किंतु आम जनता की स्थिति दिन-प्रतिदिन बदतर होती जाती है। यह शेर आर्थिक विषमता की गहरी विडंबना को उजागर करता है।

गरीबी को राष्ट्रीय पहचान के रूप में प्रस्तुत करते हुए दुष्यंत कुमार लिखते हैं—

"कल नुमाइश में मिला वो चीथड़े पहने हुए
मैंने पूछा नाम तो बोला कि हिंदुस्तान है।"7

यह शेर गरीबी की पीड़ा को सामूहिक राष्ट्रीय त्रासदी के रूप में प्रस्तुत करता है। 'नुमाइश' शब्द व्यवस्था की संवेदनहीनता को दर्शाता है, जहाँ गरीबी तमाशा बनकर रह जाती है। कवि का कथन इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि आर्थिक विषमता केवल व्यक्तिगत समस्या नहीं, बल्कि पूरे राष्ट्र की विफलता है।

आर्थिक विषमता का एक भयावह परिणाम बेरोज़गारी है, जिसे ज़हीर कुरेशी ने मार्मिक रूप में व्यक्त किया है—

"डिग्रियों की कोख से जन्मी
बुद्धिमत्ताएं सड़क पर है।"8

यह शेर शिक्षित बेरोज़गारी की विडंबना को उजागर करता है, जहाँ डिग्रियाँ होते हुए भी युवाओं के सामने आजीविका का संकट बना रहता है। आर्थिक विषमता समाज में असंतोष, अपराध और असुरक्षा को जन्म देती है, जिसे ज़हीर कुरेशी आगे इस प्रकार चित्रित करते हैं—

"दिनदहाड़े रैप, हत्याकांड, डाके
आजकल सड़कें ये मंजर देखती हैं।"9

 ISSN : 2581-8848

यह शेर स्पष्ट करता है कि आर्थिक अभाव और बेरोज़गारी सामाजिक अपराधों को बढ़ावा देती है। इस प्रकार हिंदी ग़ज़ल आर्थिक विषमता और गरीबी को केवल सामाजिक समस्या के रूप में नहीं, बल्कि मानवीय संकट के रूप में प्रस्तुत करती है। ग़ज़लकार इन यथार्थों को उजागर कर समाज और सत्ता—दोनों को आत्ममंथन के लिए बाध्य करते हैं।

निष्कर्ष

हिंदी गीत और ग़ज़ल समकालीन समाज की जटिल राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक संरचनाओं को समझने का एक महत्वपूर्ण साहित्यिक माध्यम हैं। आधुनिक हिंदी ग़ज़ल ने अपनी पारंपरिक सीमाओं से आगे बढ़कर सत्ता, व्यवस्था और समाज के बीच के संबंधों को आलोचनात्मक दृष्टि से प्रस्तुत किया है। इस दृष्टि से हिंदी ग़ज़ल को समकालीन यथार्थ का प्रामाणिक काव्यात्मक दस्तावेज़ कहा जा सकता है। सत्ता-संरचना के संदर्भ में हिंदी ग़ज़ल संसाधनों के केंद्रीकरण, प्रशासनिक अन्याय और लोकतांत्रिक मूल्यों के क्षरण को उजागर करती है। ग़ज़लकारों ने प्रतीकात्मक भाषा और व्यंग्यात्मक शैली के माध्यम से यह दिखाया है कि किस प्रकार सत्ता आम जनता से दूर होती जा रही है। यह आलोचना ग़ज़ल को केवल साहित्यिक नहीं, बल्कि सामाजिक हस्तक्षेप का माध्यम भी बनाती है।

साम्प्रदायिक तनाव के प्रश्न पर हिंदी ग़ज़ल मानवीय मूल्यों और सामाजिक सौहार्द की पक्षधर दिखाई देती है। धर्म के नाम पर फैलाए जा रहे विभाजन और हिंसा को ग़ज़लकारों ने सत्ता की राजनीति से जोड़कर देखा है। इस प्रकार हिंदी ग़ज़ल साम्प्रदायिकता के विरुद्ध चेतना जाग्रत करने वाली विधा के रूप में सामने आती है। आर्थिक विषमता और गरीबी हिंदी ग़ज़ल के केंद्रीय सरोकार हैं। बेरोज़गारी, अभाव और सामाजिक असमानता को ग़ज़लकारों ने व्यक्तिगत पीड़ा से आगे बढ़ाकर सामूहिक राष्ट्रीय समस्या के रूप में प्रस्तुत किया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि हिंदी ग़ज़ल समाज के हाशिये पर खड़े वर्गों की आवाज़ बनती है।

हिंदी गीत और ग़ज़ल की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे यथार्थ के साथ-साथ प्रतिरोध की चेतना को भी स्वर देती हैं। ये रचनाएँ पाठक को केवल परिस्थितियों से परिचित नहीं करातीं, बल्कि उसे सोचने, प्रश्न करने और परिवर्तन की आकांक्षा से भर देती हैं। इस प्रकार ग़ज़ल सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभाती है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि हिंदी गीत और ग़ज़ल समकालीन समाज की आत्मा का प्रतिबिंब हैं। सत्ता-संरचना, साम्प्रदायिक तनाव और आर्थिक विषमता जैसे जटिल विषयों को काव्यात्मक संवेदना के साथ प्रस्तुत कर ये विधाएँ साहित्य और समाज के बीच सेतु का कार्य करती हैं। यही कारण है कि हिंदी ग़ज़ल आज भी प्रासंगिक, प्रभावशाली और परिवर्तनकामी साहित्यिक विधा बनी हुई है।

संदर्भ ग्रंथ

1. दुष्यंत कुमार, *साये में धूप*, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पाँचवी आवृत्ति, 2013, पृ. 15
2. ज्ञान प्रकाश विवेक, *गुफ़्तगू अवाम से है*, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2008, पृ. 44
3. विनय मिश्र, *सच और है*, लिटिल बर्ड पब्लिकेशंस, 2020, पृ. 42
4. दुष्यंत कुमार, *साये में धूप*, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पाँचवी आवृत्ति, 2013, पृ. 30
5. रामकुमार कृषक, पढ़िए तो आँख पाइए, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2022, पृ. 148
6. अदम गोंडवी, *समय से मुठभेड़*, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पाँचवाँ संस्करण, 2022, पृ. 5
7. दुष्यंत कुमार, *साये में धूप*, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पाँचवी आवृत्ति, 2013, पृ. 5
8. ज़हीर कुरेशी, *एक टुकड़ा धूप*, विद्या प्रकाशन, कानपुर, द्वितीय संस्करण, 2016, पृ. 17
9. ज़हीर कुरेशी, *एक टुकड़ा धूप*, विद्या प्रकाशन, कानपुर, द्वितीय संस्करण, 2016, पृ. 24।

*****

मुनव्वर राना की ग़ज़ल : विविध परिदृश्य

डॉ. दीपक रामा तुपे
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
विवेकानंद कॉलेज, कोल्हापुर
(अधिकारप्रदत्त स्वशासी)
भ्रमणध्वनिः 8805282610
ई-मेलः dipaktupe1980@gmail.com

सारांशः

मुनव्वर राना की ग़ज़लों का परिदृश्य व्यापक है; जिसमें निजी अनुभूति और सामूहिक संवेदना का सुंदर समन्वय दिखाई देता है। उनकी ग़ज़लें पाठक और श्रोता दोनों के मन में गहरे उतर जाती हैं, क्योंकि वे सीधे जीवन से संवाद करती हैं। हिंदी-उर्दू शायरी की परंपरा में मुनव्वर राना एक ऐसे शायर के रूप में प्रतिष्ठित हैं, जिन्होंने ग़ज़ल को आम आदमी की संवेदनाओं से जोड़ा। उन्होंने शायरी को महलों और दरबारों से निकालकर माँ, परिवार, आंगन, रसोई, बचपन, पीड़ा, समाज, राजनीति, अर्थ, संस्कृति और रिश्तों की दुनिया में स्थापित किया। मुनव्वर राना की पहचान विशेष रूप से 'माँ' पर लिखी गई ग़ज़लों और शेरों के कारण बनी है। 'माँ' यह शब्द केवल एक संबंध नहीं, बल्कि संपूर्ण सभ्यता, संस्कृति और संवेदना का आधार है। मुनव्वर राना की ग़ज़लों में माँ किसी दार्शनिक अवधारणा नहीं है, बल्कि जीती-जागती, साँस लेती, पीड़ा सहती, त्याग करती और बच्चों के लिए अपना सबकुछ न्योछावर कर देने वाली स्त्री के रूप में उपस्थित हो चुकी है। उनकी ग़ज़ल की नायिका 'माँ' नहीं, बल्कि जीवन की सच्चाई है। यह आलेख मुनव्वर राना की ग़ज़लों के विविध परिदृश्य को लेकर उपस्थित होता है; जिसमें माँ, समाज, राजनीति, अर्थ और संस्कृति आदि परिदृश्य शामिल हैं।

बीज शब्दः मुनव्वर राना, माँ परिदृश्य, सामाजिक परिदृश्य, राजनीतिक परिदृश्य, आर्थिक परिदृश्य, सांस्कृतिक परिदृश्य।

प्रस्तावनाः

मुनव्वर राना हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं के लोकप्रिय शायर है। उन्होंने ग़ज़ल की पारंपरिक रूमानियत को तोड़ दिया और उसे रिश्तों की गर्माहट और घरेलू संवेदनाओं के साथ जोड़ दिया। उनकी शायरी के केंद्र प्रेमिका नहीं, बल्कि माँ, बहन, बेटी, पिता, बच्चा, भाई, घर, समाज, राजनीति, अर्थ और संस्कृति रही। उनकी शायरी ने भाषा, मज़हब और वर्ग की सीमाओं को लांघकर 'माँ' को सर्वोपरि रखा और लोगों के दिलों में जगह बना दी। उन्होंने सहज, भावपूर्ण और संवेदनशील शैली में 'माँ' के विषय को ग़ज़लों और शेरों में पिरोया; जिससे उन्हें भारत और विदेशों में लोकप्रियता मिल गई। उनकी माँ पर आधारित ग़ज़ल साहित्यिक महफ़िलों, स्कूल-कॉलेजों और मुशायरे की महफ़िलों में अत्यधिक चर्चित रहीं। इसलिए मुनव्वर राना को 'माँ का शायर' कहा जाता है। जहाँ परंपरागत उर्दू ग़ज़लें इश्क़, शराब और महबूब के इर्द-गिर्द घूमती थीं, वहीं मुनव्वर राना ने माँ, समाज, राजनीति, अर्थ और संस्कृति को ग़ज़ल का विषय बनाया और उसे जनमानस के साथ जोड़ दिया। मुनव्वर राना मूलतः उर्दू

ग़ज़ल के शायर थे, किंतु उनकी संवेदना भारतीय लोक संस्कृति, हिंदी-उर्दू की साझी विरासत और घरेलू जीवन से गहरे जुड़ी हुई है। उनका काव्य संसार आम आदमी के अनुभवों से निर्मित है। इसी कारण उनकी शायरी जनसाधारण के हृदय में सहज उतर जाती है।

माँ परिदृश्यः

मुनव्वर राना हिंदी-उर्दू के ऐसे शायर हैं; जिनकी ग़ज़लों ने माँ को पारंपरिक महबूब की जगह स्थापित कर ग़ज़ल परंपरा को नया वैचारिक आयाम दिया। उनका प्रसिद्ध ग़ज़ल संग्रह "माँ" युगल अर्थ और भाव की साधना में सर्वाधिक चर्चित रहा है, जिसमें माँ की आत्मीयता, स्नेह, त्याग, प्रेम और सामाजिक मानवता का संपूर्ण समावेश मिलता है। परंपरागत उर्दू ग़ज़ल में 'माँ' का उल्लेख अत्यंत सीमित मिलता था। ग़ज़ल के केंद्र में प्रायः प्रेमिका, शराब, जुदाई और अस्तित्वगत पीड़ा रही है। मुनव्वर राना ने इस परंपरा को तोड़ते का काम किया है। ''शब्दकोशों के मुताबिक ग़ज़ल का मतलब महबूब से बाते करना है। अगर इसे सच मान लिया जाए तो फिर महबूबा माँ क्यों नहीं हो सकती!''[1] मनुव्वर राना का यह सवाल 'माँ' शब्द मात्र एक पहचान नहीं; बल्कि यह एक भाव, एक अनुभव और एक सार्वभौमिक प्रतीक है। उन्होंने ग़ज़ल को सिर्फ इश्क़ एवं महबूब तक सीमित न रखकर उसे घर, परिवार, माँ, बचपन, विस्थापन, सामाजिक विडंबनाओं और आम आदमी की पीड़ा के साथ जोड़ दिया। उन्होंने माँ को त्याग, करुणा और ममता का विकल्प माना। इतना ही नहीं; उन्होंने माँ को ही ईश्वर से बड़ी शक्ति माना है-

"चलती-फिरती आँखों से अजाँ देखी है,
मैंने जन्नत तो नहीं देखी है, माँ देखी है।"[2]

उक्त शेर धार्मिक प्रतीकों से अधिक माँ को जीवन का आधार मानता है। मनुव्वर राना माँ को जन्नत के समकक्ष नहीं बल्कि उससे भी ऊपरी स्थान देते हैं। इसमें माँ धार्मिक कल्पना नहीं जबकि प्रत्यक्ष अनुभव है। वे दुनिया में सबसे सुरक्षित जगह माँ की गोद को मानते हैं। माँ सबसे बड़ी सुरक्षाकवच है। दुनिया चाहे कितनी भी खतरनाक हो, मगर मनुष्य स्वयं माँ की गोद में निस्संकोच और निडर महसूस करता है -

"जब तक रहा हूँ छाँव में, माँ की दुआओं की,
मैं धूप में भी बैठकर साया समझता रहा।"[3]

स्पष्ट है कि माँ की दुआएँ छाया बन जाती हैं। यह दुआं की छाया भौतिक नहीं, आध्यात्मिक है; जो जीवन की हर धूप में साथ देती है। माँ अपने सुखों का त्याग करती है और अपने बच्चों का जीवन संवारती है। पारिवारिक बंटवारें में किसी भाई को घर मिला तो किसी को दुकान मिली, मगर मैं सबसे छोटा था इसी कारण मुझे माँ जैसी संस्कृति विरासत में मिली- "किसी को घर मिला हिस्से में या कोई दुकाँ आई,
मैं घर में सबसे छोटा था, मेरे हिस्से में माँ आई।"[4]

स्पष्ट है कि माँ बच्चों के जीवन की सबसे बड़ी पूँजी है; जो किसी सम्पत्ति, वैभव और उत्तराधिकार से सर्वोपरि है। माँ जीवन का एक बड़ा परिदृश्य है; जो स्मृति के रूप में उभरता रहता है। बचपन, घर, आंगन ये सब माँ की स्मृतियों में गुँथे हुए होते हैं। माँ की दुनिया और बाहरी दुनिया में अंतर होता है। माँ की गोद में सुकून होता है,

मगर बाहरी दुनिया में अकेलापन और असुरक्षा होती है। माँ बच्चों के जीवन में असुरक्षा और अकेलेपन महसूस नहीं होने देती जबकि वह हर वक्त सुकून देती है। उन्होंने माँ को केवल एक भावुक प्रतीक नहीं बनाया, बल्कि उसे जीवन की सच्चाई, सुरक्षित आश्रय और गहरी संवेदना के रूप में प्रस्तुत किया। सार यह कि मुनव्वर राना की 'माँ' विषयक ग़ज़लें पाठक को भावुक ही नहीं करतीं, बल्कि उसे अपनी जड़ों की ओर लौटने को विवश कर देती हैं। कर्ज लेना-देना आम बात है। कर्ज के लेन-देन में हम सबका कर्ज चुका सकते हैं मगर एक ऐसा कर्ज होता है जिसे हम चुका नहीं सकते और वह कर्ज है माँ का सजदे में रहने का। इसी स्थिति का प्रमाण मुनव्वर राना की 'माँ' ग़ज़ल-संग्रह में देखने को मिलता है। स्वयं मुनव्वर राना अपनी 'माँ' नामक ग़ज़ल में लिखते हैं-

''ये ऐसा कर्ज है जो मैं अदा कर ही नहीं सकता
मैं जब तक घर न लैटूँ मेरी माँ सजदे में रहती है।''[5]

उक्त शेर से स्पष्ट हो जाता है कि जब तक अपनी संतान सही-सलामत घर नहीं आती तब तक माँ सजदे में रहती है। दरअसल, माँ का कर्ज इस दुनिया में कोई लौटा नहीं सका है क्योंकि वह हमेशा अपने बच्चों के खयालात में जीती है।

सामाजिक परिदृश्यः

मुनव्वर राना की ग़ज़लों में समाज की कड़वी सच्चाइयों का निर्भीक चित्रण पाया जाता है। गरीबी, भूखमरी, बेरोज़गारी, शोषण और असमानता जैसे विषय उनकी ग़ज़लों में संवेदनात्मक रूप में मौजूद हैं। वे संवेदनहीन व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य कसते हैं और आम आदमी की पीड़ा का स्वर मुकरित कर देते हैं।

"जिसको बच्चों का पेट पालना था,
उसने सपनों का गला घोंट दिया।"[6]

उक्त शेर आर्थिक विवशता और मानवीय सपनों के संघर्ष को गहराई से अभिव्यक्त करता है। राना की ग़ज़ल गरीबी और भूख का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करती है। उनकी भूख केवल पेट की नहीं जबकि अवसरों, शिक्षा और सम्मान की भूख है - ''चूल्हा ठंडा है तो बच्चों की हँसी बूझती है,
रोटी महँगी हो तो त्योहार उदास हो जाते हैं।''[7]

स्पष्ट है कि दो वक्त की रोटी बच्चों के चेहरे पर हँसी ला देती है। जब रोटी महँगी हो जाती है तब त्योहार भी उदास हो जाते हैं। आर्थिक संकट का सीधा असर पारिवारिक और सांस्कृतिक जीवन पर पड़ता है। उनकी ग़ज़ल रोटी, आत्मसम्मान और सुरक्षा का संघर्ष बयां करती है। अमीर-गरीब की खाई, असमानता, वर्गभेद राना की ग़ज़लों में पाया जाता है। सामाजिक अन्याय पर उनकी ग़ज़ल गहरा व्यंग्य करती है -

''अमीर शहर के फुटपाथ भी खरीद लेता है
गरीब घर की जमीन तक बचा नहीं पाता।''[8]

उक्त ग़ज़ल का शेर अमीर और गरीब की खाई के साथ-साथ सामाजिक संरचना की विषमता ध्वनित करता है। अमीर शहर में कुछ भी खरीद सकते हैं मगर गरीब अपने घर की जमीन तक बचा नहीं पाते। वे घर से बेघर होते हैं मगर अमीर शहर के फुटपाथ तक खरीद लेते हैं। अमीर-गरीब के अंतर मुनव्वर राना ने इस शेर में

नापने का प्रयास किया है। उनकी ग़ज़ल स्त्री सम्मान और स्त्री के प्रति करुणा की हिमायत करती है। वे स्त्री उपभोग की वस्तु नहीं बल्कि संवेदना की मूर्ति मानते हैं- ''औरत का दर्द समझना आसान नहीं

वो मुस्कुराती है तो जख्म छुप जाते हैं।''[9]

उक्त शेर में औरत का दर्द कितना गहरा होता है जिसे समझना भी काफी मुश्कील हो जाता है। वह मुस्कुराती जरूर है मगर उसके जख्म छुए हुए होते हैं। उनकी ग़ज़ल औरत का दर्द और औरत के प्रति सम्मान का भाव व्यक्त करती है। उनकी शायरी केवल संवेदनात्मक नहीं है जबकि समाजिक नैतिकता की रीढ़ है -

''माँ-बाप जिंदा हों तो घर मुकद्दस होता है।
वरना मकान तो शहर में मिल जाते हैं।''[10]

उक्त शेर स्पष्ट होता है कि माता-पिता के जिंदा होने से घर-परिवार पवित्र हो जाता है। माता-पिता के होने से ही पारिवारिक और सामाजिक मूल्यों का जतन होता है, मगर आज संवेदनाहीनता से उपजे सामाजिक संकट की चिंता राना की ग़ज़ल में अभिव्यक्त हो जाती है-

''अब लोग हालचाल नहीं पूछते
बस हैसियत का अंदाजा लगाते हैं।''[11]

उक्त शेर समाज की मानसिकता पर प्रहार करता है। आज लोग हालचाल हैसियत नहीं पूछते। यदि पूछते भी है तो हैसियत से अंदाजा लगाते हैं। संक्षेप में राना की ग़ज़ल समाज की खामियों पर सीधे प्रहार करती है, मगर वह उम्मीद एवं इन्सानियत का दामन कभी नहीं छोड़ती।

आर्थिक परिदृश्य:

मनुव्वर राना की ग़ज़लों का नायक आम जन है-मजदूर, किसान, निम्न-मध्यवर्गीय व्यक्ति। जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं के लिए संघर्षरत वर्ग राना की शायरी में बार-बार उभरता है। अर्थाभाव मनुष्य की गरीमा और रिश्तों को काफी प्रभावित करता है। गरीबी रोजमर्रा की जिंदगी का कटु सत्य है। अर्थाभाव और दिखावटीपन में मध्यवर्ग पिसता जा रहा है। मनुव्वर राना उनका दर्द अपने शेर के माध्यम से बयां करते हैं-

''कर्ज लेकर भी मुस्कुराना पड़ता है
ये शहर हमें जिंदा रहने नहीं देता।''[12]

स्पष्ट है कि शहर में जिंदा रहने के लिए कर्ज लेकर भी मुस्कुराना पड़ता है। उक्त शेर आर्थिक हालात और सामाजिक दिखावे में जीवन जीने के लिए विवश मध्यमवर्गीयों की व्यथा प्रकट करता है। राना गरीब, मध्यमवर्गीय और हाशिये पर खड़े इन्सान के कवि है। अमीर-गरीबी की खाईं और संवेदनहीन व्यवस्था पर राना तीखा व्यंग्य कसते हैं - ''यहाँ दौलत ही तय करती है

कौन अपना है, कौन पराया।''[13]

उक्त शेर में अर्थकेंद्रित रिश्ते और आर्थिक शक्ति का वर्चस्व अभिव्यक्त होता है। आर्थिक तंगहाली का असर रिश्तों पर भी होता है क्योंकि दौलत ही अपना-पराया तय करने लगी है। अर्थाभाव एवं आत्मसम्मान प्रेम और रिश्तों को कमजोर बना देता है। राना के शब्दों में -

''पैसे की कमी ने यह सिखा दिया
कौन अपना है, कौन सिर्फ हालचाल पूछता है।''[14]

उपरोक्त शेर से विदित होता है कि पैसा ही समाजिक रिश्ते-नाते तय करने लगा है। मनुव्वर राना आम आदमी की आर्थिक पीड़ा को दिल से उकेरते हैं। आर्थिक संकट केवल जेब का ही नहीं होता जबकि आत्मा का भी होता है। मेहनतकश आदमी जैसे-तैसे पेट तो भरता है, मगर उनके सपने हमेशा टूट जाते हैं। सपने टूटने की पीड़ा मजदूर, रिक्शेवाला, दुकानदार, बेरोजगार युवा वर्ग के लिए आम बात बन गई है। गरीबी और अर्थाभाव के कारण वे भूखे, फटेहाल, खाली जेब और टूटी उम्मीदों के साथ कटु जीवन जीते हैं।

राजनीति परिदृश्य:

मुनव्वर राना की ग़ज़लों में राजनीति एक महत्वपूर्ण परिदृश्य के रूप में उभरती है। वे पाखंड़ी, अवसरवादी और अनैतिक राजनीति की कड़ी आलोचना करते हैं। दरअसल राजनीति में सत्ता की उथल-पुथल होती है, मगर गरीब आदमी की स्थिति जस की तस बनी रहती है। इस पर राना कहते हैं -

"हुकूमतें तो बदलती रहीं मगर अफ़सोस,
गरीब आदमी का हाल वही का वही रहा।"[15]

स्पष्ट है कि मुनव्वर राना की ग़ज़लों में सत्ता के प्रति अविश्वास और आम जनता के प्रति सहानुभूति स्पष्ट दिखाई देती है। उनकी संवेदना आम आदमी के प्रति है। उनका राजनीतिक विरोध मानवीय पीड़ा, नैतिक पतन, लोकतांत्रिक मूल्यों की तिलांजलि को स्पष्टता से रेखांकित करता है। दरअसल वे सत्ता के विरोधी नहीं जबकि आम आदमी के पक्षधर है। वर्तमान राजनीति संवेदनहीन और स्वार्थांध हो चुकी है। आज के राजनेता वादा तो करते हैं, मगर जल्द ही वादे से मुकर जाते हैं -

''सियासत ने हमें बस इतना सिखाया है
वदा करो, मुकर जाओ और मुस्कुरा दो।''[16]

स्पष्ट है कि सियासत की राजनीति में अनैतिकता और धोखाधड़ी पनप रही है। इन दिनों की राजनीति ने खोखली संस्कृति को जन्म दिया है। राना की ग़ज़ल सत्ता के दमन एवं डर की राजनीति का खुलेआम विरोध करती है। उनकी ग़ज़लों में यही साहस और प्रतिरोध का स्वर मुकरित होता है-

''लिखना तो नहीं था, मगर हालात ने मजबूर किया
कलम ने जब बोलना सीखा तो तख्त हिल गए।''[17]

स्पष्ट है कि कलम की ताकत से तख्त भी पलट जाते हैं। उनकी ग़ज़लें राजनीति का आईना पाठकों को दिखाती है और राजनीति में मानवीय संतुलन की मांग करती है। इंसानियत, लोकतंत्र और भाईचारे को बरकरार रखने का संदेश उनकी ग़ज़ल देती है। उनकी ग़ज़ल आम आदमी की पक्षधर है। राना ने धर्म और राजनीति की गठजोड़ का पर्दाफाश किया है। वे इन्सानियत को धर्म के ऊपर रखते हैं-

''मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना
सियासत ने मगर यह हुनर ज़रूर सिखाया।''[18]

उक्त शेर सांप्रदायिकता के नाम पर की जा रही राजनीति की पोलखोल देता है। वे अपनी ग़ज़ल के माध्यम से राजनीति का अमानवीय, असंवेदनशील, अनैतिक, स्वार्थांध, अवसरवादी, मूल्यहीन, दमनकारी, सांप्रदायिक, असहिष्णु नकाब का पर्दाफाश करते हैं।

सांस्कृतिक परिदृश्यः

मनुव्वर रानी की ग़ज़लों में सांस्कृतिक परिदृश्य पारिवारिक मूल्यों और लोकजीवन की गहरी समझ के साथ उपस्थित है। उनकी ग़ज़ल में माँ, घर, रिश्ते और स्मृतियों को जोड़कर सांस्कृतिक चेतना का स्वर मुकरित हो चुका है। वे संस्कृति को मानवता से जोड़ते हैं और मजहबी दीवारों ढहाते हैं-

''हमने हर दौर में इंसान बचाकर रखा
वरना तहजीब तो तलवार से कट जाती है।''[19]

स्पष्ट है कि ग़ज़लकार राना मजहबी दीवारों को ढहाकर इन्सानी रिश्ते और साझा संस्कृति को तरजीह देते हैं। परिवार और रिश्तों की संस्कृति राना की ग़ज़ल में काफी मात्रा में दिखाई देती है। संयुक्त परिवार, भाईचारा और रिश्तों की गर्माहट को वे काफी महत्वपूर्ण मानते हैं, मगर आधुनिक काल में हो रही रिश्तों की टूटन को लेकर वे काफी चिंतित नजर आते हैं-

''रिश्तों की किताब का यही आखिरी सबक है
जो साथ नहीं चलता वही सबसे ज्यादा याद आता है।''[20]

उपरोक्त शेर बदलती सांस्कृतिक संरचना का संकेत देता है। संस्कृति के नाम पर बाजारवाद पनप रहा है। उनकी ग़ज़ल में आधुनिक जीवन और पश्चिमी प्रभाव से हो रहे सांस्कृतिक पतन की पीड़ा दिखाई देती है -

''नई तहजीब ने सिखाया है यह दस्तूर
घर में बूढ़े हों तो आश्रम बना दो।''[21]

उक्त शेर आधुनिक समाज एवं संस्कृति के लिए करारा व्यंग्य है; जो आधुनिक काल की नई तहजीब को उजागर कर देता है। आज बुजुर्गो के लिए घर से निकाल दिया जाता है और उन्हें वृद्धाश्रम भेज दिया जाता है। आज के युवाओं की इसी मानसिकता का ग़ज़लकार पर्दाफाश कर देता है। राना की ग़ज़ल स्मृति, संस्कृति और अतीत की यादें ताजा करती है -

''पुराने घर की खुशबू आज भी
मेरे नए मकान को छोटा कर देती है।''[22]

स्पष्ट है कि राना की ग़ज़ल हमारी स्मृतियों, सांस्कृतिक मूल्यों की धरोहर और लोक-संवेदना को बरकरार रखने का कार्य करती है और इन्सान को इन्सान बनाने वाली संस्कृति की बात करती है। उनकी ग़ज़ल लोकजीवन और घरेलू संस्कृति का बिंब उभारती है। उनकी शायरी आंगन, चूल्हा, रसोई, छत, माँ की गोद, बचपन की गलियाँ जैसे बिंबों का जीता-जागता चित्रण करती है-

''छत की मुंडेर पर बैठा बचपन आज भी
मुझे शर की ऊँचाइयों से बुलाता है।''[23]

उक्त शेर भारतीय संस्कृति की सच्चाई को उजागर करता है। आज हमारे घर बड़े हो गए हैं मगर दिल छोटे हो गए है। सार यह कि आधुनिक समाज में रिश्तों की टूटन, स्वार्थ और अकेलापन मुनव्वर राना की ग़ज़ल का प्रधान विषय रहा है।

श्रमिक परिदृश्य:

मजदूरों, कारीगरों और समाज के मेहनतकश वर्ग दिन-रात मेहनत करता है। जिसके कारण बड़ी-बड़ी इमारतें खड़ी हो जाती है। इमारत बनने के बाद जिन मजदूरों ने इमारत बनाई है उन्हें कोई याद नहीं करता मगर मुनव्वर राना उन मजूदरों और मेहनतकशों का दर्द अपनी ग़ज़ल के माध्यम से व्यक्त करते हैं-

''हमें मजदूरों की, मेहनतकशों की याद आती है
इमारत देख कर कारीगरों की याद आती है।''[24]

स्पष्ट है कि भव्य इमारत बनाने के लिए मजदूर और कारीगर दिन-रात खपते हैं मगर लोग उन्हें अक्सर भूल जाते हैं। शानदार इमारत के पीछे कितने मजदूरों के हाथ होते हैं मगर उन्हें भुला दिया जाता है। मुनव्वर राना अपनी शायरी में आम आदमी, गरीबों, मजदूरों की संवेदनशीलता रेखांकित करते हैं। इसमें मजूदर वर्ग की संवेदना के साथ-साथ उनकी अनदेखी पर गहरा व्यंग्य है। इन श्रमिकों को घर नहीं मिलते। घर के लिए दर-दर की ठोकरे खानी पड़ेगी। टूटा-फूटा ही सही लेकिन घर चाहिए -

''जिंदगी तू कब तलक दर-दर फिराएगी हमें
टूटा-फूटा ही सही घर-बार होना चाहिए।''[25]

स्पष्ट है कि आदमी जीवन भर दर-दर की ठोकरें खाता है, मगर उसे मकान नहीं मिलता।

निष्कर्ष:

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मुनव्वर राना की ग़ज़लों का परिदृश्य बहुआयामी और मानवीय भावनाओं से सराबोर है। उनकी ग़ज़ल मानवीय संवेदना, घरेलू आत्मीयता और सहज भावुकता की बात करती है। वे उन विरले शायरों में हैं; जिन्होंने ग़ज़ल जैसी परंपरागत विधा को महलों, मदिराओं और माशूक़ की सीमाओं से निकालकर माँ, समाज, संस्कृति, राजनीति और अर्थ के साथ जोड़ दिया है। मुनव्वर राना की शायरी का सबसे सशक्त और स्थायी पक्ष है-'माँ'। उनकी ग़ज़लों में माँ केवल एक पारिवारिक पात्र नहीं, बल्कि संपूर्ण मानवीय चेतना, संस्कृति, सुरक्षा और करुणा का प्रतीक बनकर उभरती है। उनकी ग़ज़लों में सामाजिक संघर्षों की विविध रंगछटाएँ और मानव जीवन यथार्थ निहित है। भाषा की सहजता, भावों की सच्चाई, घरेलू बिंब, संवेदना की सघन अनुभूति और अनुभव की गहराई ने उन्हें समकालीन ग़ज़ल परंपरा में एक विशिष्ट स्थान प्रदान किया है। मुनव्वर राना की ग़ज़लें केवल साहित्यिक कृतियाँ नहीं, बल्कि आम आदमी के जीवन का संवेदनशील दस्तावेज़ हैं। उनकी ग़ज़लों में आधुनिक जीवन की व्यस्तता, टूटते पारिवारिक मूल्य और माँ की उपेक्षा का दर्द भी गहराई से अभिव्यक्त हुआ है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि मुनव्वर राना ने ग़ज़ल को दरबारी और रोमानी रूमानियत से हटाकर घरेलू संवेदना, आम आदमी के जीवन का सुख-दुःख, पारिवारिक टूटन, राजनीति का षड्यंत्र, सांस्कृतिक

धरोहर और अर्थाभाव को अभिव्यक्त किया है। उनकी शायरी संवेदना पर सीधा आघात करती है और मानव जीवन को सच्चाइयों के साथ जोड़ देती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. मुनव्वर राना-माँ, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करणः 2016, पृष्ठ – 12
2. वही, पृष्ठ – 39
3. https://hindi-kavita.com/Hindi-Ghazal-Gaon-Munnawar-Rana.php
4. वही, पृष्ठ – 44
5. https://hindi-kavita.com/Hindi-Ghazal-Gaon-Munnawar-Rana.php
6. वही, पृष्ठ – 39
7. https://hindi-kavita.com/Hindi-Ghazal-Gaon-Munnawar-Rana.php
8. मुनव्वर राना - माँ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करणः 2016, पृष्ठ – 42
9. वही, पृष्ठ – 44
10. https://hindi-kavita.com/Hindi-Ghazal-Gaon-Munnawar-Rana.php
11. वही
12. वही
13. वही
14. https://www.rekhta.org/poets/munawwar-rana/ghazals?lang=hi
15. वही
16. वही
17. वही
18. वही
19. वही
20. वही
21. वही
22. वही
23. वही
24. https://hindi-kavita.com/Hindi-Ghazal-Gaon-Munnawar-Rana.php
25. https://www.rekhta.org/ghazals/ishq-hai-to-ishq-kaa-izhaar-honaa-chaahiye-munawwar-rana-ghazals?lang=hi

*****

गीतकार जावेद अख्तर के हिंदी फिल्म गीतों में राष्ट्रभक्ति

प्रो. परसराम रामजी रगडे
(अध्यक्ष, हिंदी विभाग)
शंकरराव जगताप आर्टस् अ‍ॅण्ड कॉमर्स कॉलेज,
वाघोली. ता. कोरेगाँव, जि. सातारा
मो. नं. 9850492933
Email - ragadepr@gmail.com

'शोध सारांश'

हिंदी सिनेमा में साठोत्तरी कालखंड फिल्म गीत लेखन को लेकर यादगार माना जाता है। हिंदी फिल्म गीत प्रारंभ में एक साहित्य की मिठास के साथ-साथ एक संदेश को लेकर लिखे जाते थे। इस कालखंड में शकिल बदायूँनी, कैफी आज़मी, जावेद अख्तर, गुलजार, नीरज, शैलेंद्र, हसरत जयपुरी, साहिर लुधियानवी जैसे महारथी गीतकारों ने हिंदी फिल्म गीतों में अभूतपूर्व योगदान दिया है। इसमें जावेद अख्तर जी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। जावेद अख्तर यह नाम हिंदी सिनेमा में पटकथा लेखन, संवाद लेखन और कालजयी गीतों के लिए महत्त्वपूर्ण माना जाता है। जावेद अख्तर पर बचपन से देशभक्ति, प्रगतिवादी और पंथ-निरपेक्ष विचारधारा का प्रभाव था। उनके माता-पिता, दादा-मामा भी प्रगतिशील विचारधारा के साहित्यकार एवं आंदोलनधर्मी कार्यकर्ता रहे चुके हैं। इस कारण जावेद अख्तर की सोच भी प्रगतिवादी रही है।

सन 1981 ई. से उन्होंने 'तेज़ाब' और '1942 अ लव स्टोरी' इस फिल्म से गीत लेखन में भी अपनी प्रतिभा को दिखाया। इसके बाद उन्होंने कई फिल्मों में एक से बढकर एक मिठासभरे गीत दिए। लेकिन उन्हें राष्ट्रभक्ति से ओत-प्रोत भरे गीतों ने खूब शोहरत और पहचान दी। इसमें 'बॉर्डर', 'लगान', 'स्वदेश', 'लक्ष्य', 'वीर-जारा', 'गॉड मदर', 'मंगल पांडे- दि रायजिंग', 'लक्ष्य' आदि फिल्मों के गीत विशेष उल्लेखनीय हैं। आज भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में धर्मवादी राजनीति चरमसीमा पर पहुँच चुकी है, वहाँ जावेद अख्तर के राष्ट्रभक्ति से भरे गीत एक दीपस्तंभ की भाँति हमारा दिशा-निर्देशन करते हैं। उनके गीतों में बाँटने की नहीं बल्कि धर्म और मजहबों में गलतफहमियों से बनी खाइयों को पाटने की सीख है। इस कारण वे केवल गीतकार नहीं, बल्कि राष्ट्रभक्त एवं मानवतावादी गीतकार है।

बीज शब्द : हिंदी सिनेमा, गीत, जावेद अख्तर, राष्ट्रभक्ति, स्वदेश, लगान, बॉर्डर, लक्ष्य, वीर- जारा आदि।

प्रस्तावना :

हिंदी सिनेमा में साठोत्तरी कालखंड फिल्म गीत लेखन को लेकर यादगार माना जाता है। हिंदी फिल्म गीत प्रारंभ में एक साहित्य की मिठास के साथ-साथ एक संदेश को लेकर लिखे जाते थे। कुछ-कुछ गीतों में तो पूरे सिनेमा की कहानी का अक्स ही उतरता था। इस कालखंड में लिखे गए अनगिनत गीत केवल इसलिए हमारे दिलो-दिमाग पर छाए हुए हैं क्योंकि वे इंसान और उसके मूल्यों की कद्र करके लिखे गए हैं। इस कालखंड में शकिल बदायूँनी, कैफी आज़मी, जावेद अख्तर, गुलजार, नीरज, शैलेंद्र, हसरत जयपुरी, साहिर लुधियानवी जैसे महारथी गीतकारों ने हिंदी फिल्म गीतों में अभूतपूर्व योगदान दिया है। इसमें जावेद अख्तर जी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। जावेद अख्तर यह नाम हिंदी सिनेमा में पटकथा लेखन, संवाद लेखन और कालजयी गीतों के लिए महत्त्वपूर्ण माना जाता है। सलीम-जावेद की जोड़ी ने साठोत्तरी हिंदी सिनेमा के रूप को ही परिवर्तित कर डाला। लेकिन जावेद साहब सबसे ज्यादा उनकी शायरी और हिदीं गीत के लिए जाने जाते हैं। वे किसी मंच पर हो या फिर गीत लेखन के क्षेत्र में हो, उनपर भारतीयता की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। उनकी पटकथा में या फिर गीत लेखन में देशभक्ति, मानवतावाद, सांप्रदायिक सद्भाव के मूल्य हमें उनके मुरीद बना देते हैं। अत: विवेच्य शोध-प्रपत्र में जावेद अख्तर द्वारा लिखित उन सदाबहार नगमों का विवेचन किया है, जिसमें राष्ट्रभक्ति का भाव दृष्टिगत होता है।

विषय प्रवेश:

हिंदी एवं उर्दू के मशहूर गीतकार एवं पटकथा लेखक जावेद अख्तर का जन्म 17 जनवरी, 1945 ई. में ग्वालियर में हुआ। उनके पिता जाँ निसार अख्तर एक प्रसिद्ध प्रगतिशील कवि थे और उनकी माता साफिया अख्तर मशहूर उर्दू लेखिका एवं अध्यापिका थी। उनके मामा कवि मज़ाज एक लोकप्रिय कवि थे बल्कि उनके दादाजी मुज्तर खैराबादी जावेद भी अपने समय के एक विख्यात उर्दू शायर थे। इस कारण जावेद अख्तर जी को साहित्य के प्रति रूचि एवं प्रेरणा विरासत में ही मिली थी। हिंदी सिनेमा में वे बतौर पटकथा एवं संवाद लेखक के रूप में दाखिल हुए लेकिन सन 1981 ई. से उन्होंने 'तेज़ाब' और '1942 अ लव

स्टोरी' इस फिल्म से गीत लेखन में भी अपनी प्रतिभा का जलवा बिखेरा। इसके बाद उन्होंने कई फिल्मों में एक से बढकर एक मिठासभरे गीत दिए। लेकिन उन्हें राष्ट्रभक्ति से ओत-प्रोत भरे गीतों ने खूब शोहरत और पहचान दी। इसमें 'बॉर्डर', 'लगान', 'स्वदेश', 'लक्ष्य', 'वीर-जारा', 'गॉड मदर', 'मंगल पांडे-दि रायजिंग', 'लक्ष्य' आदि फिल्मों के गीत विशेष उल्लेखनीय हैं। उनके सांप्रदायिक सद्भाव, प्रगतिशील एवं पंथ-निरपेक्ष विचारधारा को बढावा देने के कार्य हेतु भारत सरकार द्वारा पद्भूषण पुरस्कार और विदेश से 'रिचर्ड डॉर्किस अवार्ड' से सम्मानित किया जा चुका है।

गीतकार जावेद अख्तर के हिंदी फिल्म गीतों में राष्ट्रभक्ति :

जावेद अख्तर पर बचपन से देशभक्ति, प्रगतिवादी और पंथ-निरपेक्ष विचारधारा का प्रभाव था। उनके माता-पिता, दादा-मामा भी प्रगतिशील विचारधारा के साहित्यकार एवं आंदोलनधर्मी कार्यकर्ता रहे चकु हैं। इस कारण जावेद अख्तर की सोच भी प्रगतिवादी है। उनके हिंदी फिल्म गीतों में भी उनकी यह देशभक्ति एवं मानवतावादी सोच हमें दिखाई देती है। उनके शब्दों और शब्दों से निकलने वाले विचारों में जादू होती है। इस कारण जब उनके गीत संगीतबद्ध होकर लोगों के सामने आते हैं तो अपना जादू बिखेर देते हैं। ''अख्तर अपने राष्ट्रवाद को खुलकर प्रकट करते हैं और उनके कई गीत इन्हीं विचारों को दर्शात हैं।''[1] उन्होंने 'स्वदेश', 'लक्ष्य', 'बॉर्डर', 'चले-चलो', 'गॉड मदर', 'वीर-ज़ारा', 'मंगल पांडे : द राइजिंग' आदि मशहूर फिल्मों में राष्ट्रभक्ति का जज्बा जगाने वाले गीत लिखे हैं।

आशुतोष गोवारीकर निर्देशित 'स्वदेश' फिल्म में 'ये जो देश है तेरा' और 'ये तारा ओ तारा हर तारा' ये दो गीत लिखे हैं। इन दोनों गीतों में उन्होंने अपने देश की मिट्टी की महानता और सांप्रदायिक सद्भाव को जागृत किया है। 'ये जो देश है तेरा' इस गीत में वे उन तमाम अनिवासी भारतीय प्रतिभावान लोगों को उनके दायित्वबोध से परिचित कराते हैं। भारत में पले-बढे अनेक लोग विदेशों में जाकर बस जाते हैं और फिर वापस नहीं आते हैं। वे उन्हें भावपूर्ण रूप से पूछते हैं-

> '' मिट्टी की है जो खुशबू, तू कैसे भूलाएगा? / तू चाहे कहीं जाए, तू लौट के आएगा /
> नई-नई राहों में, दबी-दबी आहों में / खोए-खोए दिल से तेरे कोई ये कहेगा ।
> ये जो देस है तेरा, स्वदेश है तेरा, तुझे है पुकारा। ''[2]

स्पष्ट है कि विदेशों में बसे भारतीय लोग पराए देशों में अपने देश को याद करते रहते हैं। भारतीयता उनके रग-रग में बसी है। वे अपनी धरती की मिट्टी की खुशबू को कैसे भूल सकते हैं। वे जहाँ भी बसे लेकिन उनके दिल के किसी कोने में उनका देश जिंदा रहता है। अब तुमने जो पाना था सब पा लिया है, अब देश के प्रति तुम्हारी कुछ जिम्मेदारी है, यह स्वदेश तुम्हें पुकार रहा है। तुम्हें आकर अब इसकी मद्द करनी है, ऐसा वे संदेश देते हैं।

किसी भी देश की ताकत उस देश के आवाम की एकता की शक्ति होती है। लेकिन भारत में जाति एवं वर्ग भेद के कारण अनेक असमाजिक तत्त्वों ने भारत की पंथ-निरपेक्ष छवि को बिगाड़ना शुरू किया है। जावेद अख्तर पर भी पंथ-निरपेक्ष विचार रखने पर कई बार शाब्दिक हमले किए जाते रहे हैं। लेकिन वे बेखौफ अपने मानवतावादी और पंथ-निरपेक्ष विचारों को रखते आए हैं। 'स्वदेश' फिल्म के 'ये तारा, वो तारा, हर तारा' इस गीत में इसी एकता और अखंडता के महत्त्व को स्पष्ट करते हैं। भारत देहातों का देश है और यहाँ हर एक की मेहनत देश के विकास के लिए महत्त्वपूर्ण है। सभी की मेहनत के कारण ही भारत आज विकास कर रहा है। वे लिखते हैं-

> ''जो किसान हल सँभाले, धरती सोना ही उगाए/ जो ग्वाला गैया पाले, दूध की नदी बहाए/
> जो लोहार लोहा ढाले, हर औजार ढल जाए/ मिट्टी जो कुम्हार उठा ले, मिट्टी प्याला बन जाए/
> सब ये रूप हैं मेहनत के, कुछ करने की चाहत के/ किसी का किसी से कोई बैर नहीं/
> सब के एक ही सपने हैं, सोचो तो सब अपने है/ कोई भी किसी से यहाँ गैर नहीं।''[3]

स्पष्ट है कि देश तभी महान बनता है जब हम सभी एक-साथ रहे और एक-दूसरे के मेहनत, सपने और जीवन का सम्मान करेंगे।

हमारे देश का विश्वमंच पर दबदबा देश के किसान और देश के जवानों के कारण है। किसान और जवान मिलकर ही एक सदृढ भारत एवं उसके विकास की नींव को और ज्यादा मजबूत बना रहे हैं। गीतकार जावेद अख्तर जी ने फिल्म 'बॉर्डर' में 'संदशे आते हैं' यह मशहूर देशभक्ति गीत लिखा है। भारत और भारत के जवानों की राष्ट्रनिष्ठा के संदर्भ में यह गीत कालजयी बना हुआ है। देश के आजादी के दिन की याद हो, गणतंत्र दिवस हो या फिर कोई ऐतिहासिक दिन हो देश में यह गीत अभिमान एवं गौरव के साथ सुना जाता है। इस गीत में भारतीय सैनिकों के जज्बे एवं उनके कठिन जीवन को बखूबी पेश किया है। भारतीय सैनिक अपने

प्रेम, माता-पिता, बाल-बच्चे, रिश्ते-नाते सभी को पीछे छोड़कर भारत माँ की सेवा करने के लिए सीमाओं पर दिन-रात तैनात रहते हैं, इसलिए हर भारतवासी रात को चैन की नींद ले सकता है। इसलिए इन देश के जवानों का हम पर बहुत उपकार है। वे अपने गाँव की गलियों, प्रेमिका, दोस्तों और माता-पिता से वादा करके वापस आने का वचन देकर आते हैं। उन्हें विश्वास है कि भारत माँ की सेवा करके वे एक दिन अपने गाँव जरूर लौटेंगे-

''मैं वापस आऊंगा, फिर अपने गाँव में/ उसकी छाँव में, के माँ के आँचल से/
गाँव की पीपल से, किसी के काजल से/ किया जो वादा था वो निभाऊंगा/
मैं एक दिन आऊंगा।''[4]

स्पष्ट है कि देश की राष्ट्रभक्ति में हमारे देश के जवान पहली कतार में खड़े हैं और उनके कारण ही हम देश में चैन की साँस ले पाते हैं।

अशुतोष गोवारीकर निर्देशत 'लगान' (2012 ई.) फिल्म में भी जावेद अख्तर के 'चले- चलो' गीत ने बहुत शोहरत बटोरी। ब्रिटिश कालखंड पर आधारित इस फिल्म में एक क्रिकेट मैच एवं उसकी तैयारी को लेकर देशभक्ति के जज्बे को दर्शाया है। भारत पर आने वाली किसी भी गुलामी की जंजीरों को खत्म करने के लिए एकजुट होकर संघर्ष करने का संदेश यह गीत देता है-

''वोही जो तेरा हाकिम है, जालिम है की है जिसने तबाही/
घर उसका पच्चीं हैं, यहाँ ना बस में पाए/ धरती हिला देंगे, सब को दिखा देंगे/
राजा है क्या, परजा है क्या, ओह ओह ओह/ हम जाग पे छचाएंगे, अब यह बताएंगे/
हम लोगों का दर्जा है क्या, जो होना है, हो जावे/ चले चलो, चले चलो।''[5]

भारत ने हमेशा से अपने स्वाभिमान के साथ कोई समझौता नहीं किया है। भारत बुद्ध, गांधी का देश है जहाँ पर अहिंसा को महत्त्व दिया गया है। लेकिन यह अहिंसा कायरों की नहीं है। भारत ने जब कभी भी दूसरे देशों से युद्ध किया है, पहला वार कभी नहीं किया है। हमेशा दूसरे देशों ने ही हमें हाथियार उठाने के लिए मजबूर किया है। जंग के मैदान में भी भारत के जवानों की ताकत देखकर दुश्मन देश डर से सहम जाते हैं। जावेद अख्तर जी ने फिल्म 'लक्ष्य' के एक गीत 'कंधों से मिलते हैं कंधे' इस गीत में भारत के सेना की ताकत से दुश्मनों के खेमे में होने वाले आतंक बहुत ही सुंदरता से लिखा है-

''कंधों से मिलते हैं कंधे/ कदमों से कदम मिलते हैं/
हम चलते हैं जब ऐसे तो/ दिल दुश्मन के हिलते हैं।''[6]

भारतीय जवानों की ताकत का गौरवगान करने वाला यह गीत जावेद अख्तर के हृदय में भारतीय जवानों के प्रति होनेवाले सम्मान को बयाँ करता है।

दुनिया में भारत जैसा महान और बहुविध संस्कृति का देश तलाशने पर भी नहीं मिलेगा। भारत में सभी संस्कृतियों एवं सभ्यताओं का सुंदर संगम दिखाई देता है। भारत एक ऐसा देश है जिस पर हर किसी को गौरव का अनुभव होता है। इसलिए विदेशी लोग भी हमारी संस्कृति से मोहित हो जाते हैं। जावेद जी ने भारत देश की संस्कृति एवं उसकी सुंदरता को 'वीर-जारा' फिल्म के 'ऐसा देश है मेरा' इस गीत में बहुत ही सुंदर तरीके से पेश किया है -

''धरती सुनहरी, अंबर नीला/ हर मौसम रंगीला/ ऐसा देश है मेरा/
बोले पपीहा, कोयल गाए/ सावन घिर के आए/ ऐसा देश है मेरा।''[7]

इस गीत में जावेद जी ने भारत की प्राकृति सुंदरता, भारत की संस्कृति एवं सभ्यता, भारत की आस्था एवं श्रद्धा के भाव हर भावना को शब्दों में पिरोया है। यह गीत भारत के सुंदरता और महानता का महान गान ही प्रतीत होता है।

निष्कर्ष :

संक्षेप में कह सकते हैं कि जावेद अख्तर फिल्म की कहानी के साथ भारतीय समाज एवं देशभक्ति के मर्म से जुड़े गीतकार है। विरासत में मिली राष्ट्रनिष्ठा एवं पंथ-निरपेक्ष सोच उनके कई गीतों में झलकती है। आज भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में धर्मवादी राजनीति चरमसीमा पर पहुँच चुकी है, वहाँ जावेद अख्तर के राष्ट्रभक्ति से भरे गीत एक दीपस्तंभ की भाँति हमारा दिशा-निर्देशन करते हैं। भारत पर प्रेम करने का जज्बा हर भारतीयों का रूहानी जज्बा है उसे किसी धर्म, जाति, वर्ग या संप्रदाय के चश्मे से देखने की जरूरत नहीं है। जिसकी सोच ही भारतीयता हो उसे कोई धर्मवादी राजनीति राष्ट्रभक्ति के मार्ग से हटा नहीं पाएगी, यही संदेश उनके गीत देते हैं। उनके गीतों में बाँटने की नहीं बल्कि धर्म और मजहबों में गलतफहमियों से बनी खाइयों को पाटने की सीख है। इस कारण वे केवल गीतकार नहीं, बल्कि राष्ट्रभक्त एवं मानवतावादी गीतकार है।

संदर्भ सूची :

1. www.radioandmusic.com वेबसाईट से उद्धृत
2. www.Lyricsindia.net से उद्धृत
3. www.geetmanjusha.com से उद्धृत
4. www.radioandmusic.com वेबसाईट से उद्धृत
5. www.Lyricsindia.net से उद्धृत
6. वही
7. www.geetmanjusha.com से उद्धृत

*****

हिंदी ग़ज़ल का बहुआयामी परिदृश्य

डॉ. भाऊसाहेब एन. नवले
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग
कला, वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय,
सात्रळ,
drbhausahebnavale@gmail.com
मो- 9922807085, 8788417569

शोध सारांश -

हिंदी ग़ज़ल का बहुआयामी परिदृश्य निश्चित ही समृद्ध रहा है। यह परिदृश्य हिंदी ग़ज़ल की सशक्त परंपरा, साहित्यिक प्रतिबद्धता, संवेदनशीलता तथा मानवीयता की पुरजोर हिमायत करता दृष्टिगोचर होता है। अन्य विधाओं की तरह हिंदी ग़ज़लकार भी विषय वैविध्य एवं बहुआयामी परिदृश्य को अभिव्यक्ति देने में पर्याप्त मात्रा में सफल हुए हैं, इसमें संदेह नहीं है। यह इस बात का परिचायक है कि हिंदी ग़ज़ल मात्र प्रेमी-प्रेमिका तक सीमित नहीं रही है बल्कि वर्तमान यथार्थ एवं समाज के साथ साक्षात्कार कराती हुई परिलक्षित होती है। यहाँ हिंदी के लब्धप्रतिष्ठ रचनाकार दुष्यंत कुमार, गोपालदास सक्सेना 'नीरज', रामकुमार कृषक, अदम गोंडवी, मनोज सोनकर तथा अशोक रावत आदि रचनाकारों की गजलों में प्राप्त साम्प्रदायिक सद्भाव, जनजीवन की पीड़ा, राजनीतिक परिदृश्य एवं जीवन के प्रति आस्था आदि आयामों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

बीज शब्द : ग़ज़ल, बहुआयामी, सांप्रदायिक, सद्भाव, समसामयिक, संवेदना, परिदृश्य, आस्था आदि।

विषय प्रवेश -

साहित्य अपने समय एवं समाज की दस्तक होता है। रचनाकार समसामयिक सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक परिदृश्य एवं उसके प्रभाव से प्रभावित होता है। कोई भी संवेदनशील एवं सामाजिक प्रतिबद्धता की पुरजोर हिमायत करनेवाला अपने आस-पास के परिदृश्य से आहत एवं बेचैन होता है। रचनाकार की यह बेचैनी ही साहित्य सृजन के रूप में उसकी सामाजिक प्रतिबद्धता का परिचय कराती है। साहित्य की विभिन्न विधाएँ कहानी, उपन्यास, नाटक, कविता, एकांकी, आत्मकथा, गीत एवं ग़ज़ल आदि के माध्यम से रचनाकार की साहित्यिक एवं सामाजिक प्रतिबद्धता मुखरित होती है। प्रत्येक विधा अपने आप में महत्त्वपूर्ण होती है। किसी भी विधा की महत्ता उसके सामाजिक पक्ष एवं प्रतिबद्धता पर निर्भर करती है, जो अंतत: मानवीयता की पुरजोर हिमायत कर अपनी प्रतिबद्धता का परिचय देती है। हिंदी ग़ज़ल ने इसी प्रतिबद्धता का निर्वाह पर्याप्त मात्रा में किया है। प्रस्तुत शोधालेख में ग़ज़ल के बहुआयामी परिदृश्य को उजागर करने का प्रयास किया है-

ग़ज़ल-संक्षिप्त पृष्ठभूमि -

ग़ज़ल एक लोकप्रिय काव्य विधा के रूप बहुचर्चित है। वस्तुत: ग़ज़ल का सूत्रपात अरबी भाषा की विधा 'कसीदा' से माना जाता है, जिसे प्रशंसात्मक कविता के रूप में जाना जाता है। ईरान में सात सौ वर्षों के सफर के बाद 16 वीं शती में दक्षिण भारत के शायरों ने ग़ज़ल का प्रयोग किया। कहना सही होगा कि ग़ज़ल का एक लंबा इतिहास है। आज ग़ज़ल उर्दू और हिंदी साहित्य की बहुचर्चित काव्य विधा के रूप में सर्वश्रुत है। काव्य लेखन की परंपरा में समय के साथ कुछ परिवर्तन अवश्य हुए लेकिन ग़ज़ल आज भी अपनी परंपरा से प्रतिबद्ध है। आकाश 'अर्श' का कहना है कि "ग़ज़ल में भी नए भाव-अनुभव और विषय शामिल होते रहे हैं लेकिन वो एक विधा के रूप में अब भी अपनी परंपरा से कटी नहीं हैं।"[1] एक समय था जब ग़ज़ल विधा को सिर्फ प्रेमी-प्रेमिकाओं की अभिव्यक्ति तक सीमित समझा जाता था। लेकिन विचारणीय है कि ग़ज़ल वर्तमान में अपने समय के साथ समसामयिक विषयों एवं समस्याओं को उजागर कर अपनी समष्टिगत प्रतिबद्धता का निर्वाह करती परिलक्षित होती है। आज ग़ज़ल मानवीय संवेदना की अभिव्यक्ति का आवाज बनी है, इसमें संदेह नहीं है।

सांप्रदायिक सद्भाव –

भारतवर्ष बहुभाषी-बहुधर्मी एकमात्र राष्ट्र है जो दुनिया में अपनी विशेषताओं के कारण सोचने के लिए बाध्य करता आया है। देश विभाजन की त्रासदी एवं उसके परिणामों से भारतवर्ष का आम जन आज भी प्रभावित दिखाई देता है। देश आजाद तो अवश्य हुआ लेकिन आज भी भारतवर्ष में साम्प्रदायिक सद्भाव बनाए रखने के लिए विभिन्न स्तरों पर प्रयास होता आया है। साहित्य की विभिन्न विधाएँ भी जिसके लिए अपवाद नहीं है। इसी सिलसिले में ग़ज़ल विधा ने भी राष्ट्रीय एकता एवं साम्प्रदायिक सद्भाव बनाए रखने के लिए अपनी प्रतिबद्धता का परिचय दिया है। वीनस केसरी ग़ज़ल के सर्व समावेशी सफर पर

प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि ग़ज़ल ने- “अंग्रेजों को आते, पाँव जमाते देखा तो उनका वह रूप भी देखा जिसमें इंसान, इंसान पर इस कदर हावी हो जाता है कि सब्र की इन्तिहा हो जाए। ग़ज़ल क्रांतिकारियों की आवाज बनी तो संतों की ज़ुबान भी, माँ की मीठी लोरी बनी तो आशिक की कहानी भी।”[2] कहना सही होगा कि ग़ज़ल अन्य विधाओं की तुलना में अपनी साहित्यिक एवं सृजनगत प्रतिबद्धता का दायित्व बखूबी निभाया है इसमें संदेह नहीं हैं।

गोपालदास सक्सेना ‘नीरज’ हिंदी के बहुचर्चित गीत एवं ग़ज़लकार के रूप में जाने जाते हैं। सांप्रदायिक सद्भाव के प्रति उनकी कलम प्रतिबद्ध रही है। वे अपनी ग़ज़ल में कहते हैं-

“प्यार की धरती अगर बंदूक से बाँटी गई/ एक मुर्दा सहर अपने दरम्या रह जाएगा।”[3] स्पष्ट है कि नीरज प्यार भरी धरती की आवाज को बंदूक से बाँटने के बाद अनुभूत परिणामों से हमें अवगत कराते हैं। आपसी भेदभाव एवं मनमुटाव का परिणाम सकारात्मक नहीं होगा। जिस धरती की पहचान प्यारी धरती के रूप में है, उसी धरती को बंदूक से बाँटने पर इस धरती भर मुर्दा शहर अर्थात खंडहर रहेगा। आपस में प्रेमभाव बाँटनेवाला कोई नहीं रहेगा, सिर्फ मुर्दा शहर बचेगा, जहाँ कोई, किसी को पहचानता नहीं होगा। आगे नीरज विध्वंस के परिणामों का जिक्र करते हुए कहते हैं – “आग लेकर हाथ में पगले जलाता है किसे/ जब न यह बस्ती रहेगी तू कहाँ रह जायेगा।”[4] यह पंक्तियाँ सांप्रदायिक विध्वंस एवं उसमें नतीजे को उजागर करती है। अक्सर हम देखते हैं कि सांप्रदायिक ताकतें किसी न किसी कारणों से आम जन को भड़काने का काम करती है। स्वाभाविक रूप से युवा पीढ़ी इसके प्रभाव में आती है और क्रोध एवं आक्रोश से सरकारी वस्तुओं के साथ साथ बस्तियों को भी जलाते हैं। नीरज कहना चाहते हैं कि यदि इस प्रकार का विध्वंस होता है तो जलाने वाले के सगे, संबंधी, रिश्तेदार एवं आम जन जिसका शिकार होता है। सारे के सारे इस विध्वंस का शिकार हो जाएंगे। यदि आग जलानेवाले के रूप में यदि तू अकेला बच भी जाता है, तो अपनों एवं पराये के अभाव में तेरा जीना किसी काम का नहीं है। इसलिए कुकर्म के लिए प्रवृत्त होने से पहले सोच विचार करने में ही बड़प्पन होता है।

‘अलाव’ के संपादक तथा हिंदी कविता एवं ग़ज़ल के क्षेत्र में एक प्रगतिशील रचनाकार के रूप में रामकुमार कृषक का अनन्यतम स्थान है। ‘अलाव’ के 2015 में प्रकाशित ग़ज़ल केंद्री विशेषांक में रामकुमार कृषक ने ग़ज़ल के लक्षित एवं अलक्षित पहलुओं एवं समीक्षकों की मान्यताओं को व्यापक फलक पर उजागर किया है। ‘अलाव’ के संपादकीय ‘वैसे मुझे मालूम है ! में रामकुमार कृषक ने गजलकारों के रवैये पर विचार व्यक्त करते हुए कहा कि “असल में हमारे याना: अधिसंख्य ग़ज़लकार इस कदर आत्ममुग्ध और आत्मकेंद्रित हैं कि अपने अलावा उन्हें कुछ दीखता ही नहीं। साहित्य उनके लिए सिर्फ कविता है, और कविता महज गीत या ग़ज़ल।”[5] कहना सही होगा कि रामकुमार कृषक रचनाकारों की आत्ममुग्ध और आत्मकेंद्रित प्रवृत्ति को सामने रखकर व्यापक नजरिए से देखने की अपील करते हैं। गोधरा कांड से अस्वस्थ रामकुमार कृषक अपनी बेचैनी को अपनी ग़ज़ल के शेर के माध्यम से इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं – “ प्रार्थनाएँ दुआएँ अगर धर्म हैं/नफ़रतों के दामन गया क्यूँ भरा/ आदमी से बड़ा धर्म जब से हुआ/आदमीयत तभी से रही थरथरा।”[6] द्रष्टव्य उद्धरण से स्पष्ट होता है कि रामकुमार कृषक धर्म की आड़ लेकर समाज में अराजक फ़ैलाने वालों को धर्म के सही चेहरे को उजागर करना चाहते हैं। धर्म के विकृत रूप मनुष्यता की हिमायत नहीं कर सकता। धर्म की पारिकल्पना हम दुआ एवं प्रार्थना एवं इंसानियत से करते हैं। लेकिन हमारे बीच नफ़रत का दामन क्यों है। धर्म के सही रूप को भूलकर हम नफ़रत को गले लगाकर एक दूसरे के दुश्मन बन जाते हैं। ध्यातव्य है कि धर्म आदमी से बड़ा नही हो सकता। आदमी का आदमी होना ही सही धर्म है। लेकिन दुर्भाग्य की बात है कि आदमी ने धर्म के विकृत चेहरे को आदमी से बड़ा बना दिया। उसी का परिणाम है कि आदमीयत का कोई ठिकाना नहीं रहा। इसलिए जरुरी है कि धर्म के सही रूप को समझना एवं नफरत से दूर रहने में ही आदमी का आदमी होना सार्थक होगा इसमें संदेह नहीं है।

जन मानस की पीड़ा की अभिव्यक्ति -

हिंदी ग़ज़ल अपने बहुआयामी तेवरों के कारण हिंदी एवं उर्दू पाठकों एवं शायरों के गले का आवाज बनी है, इसमें दो राय नहीं है। ज्ञान प्रकाश विवेक का कहना है कि “दुष्यंत ने हिंदी ग़ज़ल को नयी दिशा दी... दुष्यंत के बाद ग़ज़ल लिखने वालों का इतना बड़ा समुदाय दुष्यंत से प्रभावित ही नहीं, अनुग्रहीत भी है।” दुष्यंत कुमार अपनी ग़ज़ल में कहते हैं “ मुझमें रहते हैं करोड़ों लोग चुप कैसे रहूँ,/हर ग़ज़ल अब सल्तनत के नाम एक बयान हैं।”[7] कहना सही होगा कि ग़ज़लकार के रूप में दुष्यंत कुमार अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता एवं जनवादी सोच के कारण जाने जाते हैं। लेकिन उन्होंने गज़ल को वैयक्तिकता से तोड़ते हुए करोड़ों लोगों की आवाज बनाया। अर्थात आम जन की पीड़ा एवं वेदना को उजागर किया। मानवतावादी सोच को उन्होंने अपनी आवाज माना। उनका मानना था कि जिस समाज के बीच रहता हूँ, उस समाज की वेदना, दर्द एवं पीड़ा को कवि के रूप में अनदेखा कैसे कर सकता हूँ। इसलिए ग़ज़लकार का अस्वस्थ मन एवं कलम अपनी सामाजिक बेचैनी को ग़ज़ल के माध्यम से उजागर करता है।

ISSN : 2581-8848

कमलेश्वर ने 'हिन्दुस्तानी ग़ज़लें' शीर्षक से प्रकाशित संपादित पुस्तक में आरंभ में दुष्यंत कुमार की ग़ज़ल को स्थान दिया है। दुष्यंत कुमार वे रचनाकार हैं जिन्होंने राजनीतिक साजिशों एवं उसके खोखलेपन को बेबाक ढंग से प्रस्तुत किया है। दुष्यंत कुमार की यह पंक्तियाँ सुधी पाठकों एवं स्वाधीन देश के लोकतंत्र को सोचने के लिए बाध्य करती है " यहाँ दरख्तों के साए में धूप लगती है/ चलो यहाँ से चलें और उम्र भर के लिए।"[8] प्रस्तुत उद्धरण स्वाधीन भारत के लोकतंत्र की पोल खोलता हुआ दृष्टिगोचर होता है। स्वाधीन देश से हर किसी को उम्मीद थीं कि देश के आजाद होने पर हर किसी को कम से कम अंग्रेजों की गुलामी का शिकार तो नहीं होना पड़ेगा। आदमी की मूल आवश्यकताओं की पूर्ति सहज हो जाएगी। साथ ही जहाँ सुरक्षा, शांति और सुकून मिलना चाहिए था लेकिन स्वाधीन देश की स्थितियाँ बहुतही विपरीत परिलक्षित होती है। अर्थात आम जन चुभन, तकलीफ़, बेचैनी एवं असुरक्षा का अनुभव करता है। वस्तुत: दरख्तों में साए में शीतलता का अनुभव होता है। लेकिन ग़ज़लकार का कहना है कि यहाँ तो दरख्तों के साए में धूप लगती है। कहना सही होगा कि देश का हर भारतवासी चाहता था कि आजाद देश में चैन की साँस का अनुभव होगा। लेकिन यहाँ ठहरने का भी मन नहीं है।

राजनीति की पोल खोलता परिदृश्य -

साहित्य की हर विधा ने राजनीतिक परिदृश्य को किसी न किसी रूप में पाठकों के सामने रखने का प्रयास किया है। जिसके लिए हिंदी ग़ज़ल एवं कविता भी अपवाद नहीं है। 'अदम' गोंडवी हिंदी ग़ज़ल के क्षेत्र में अपनी सिद्धहस्थ कलम के लिए जाने जाते हैं। अटल तिवारी का मानना है कि दुष्यन्त कुमार के बाद सबसे अधिक आम जनमानस की पीड़ा अदम गोंडवी ने महसूस की। उनकी गजलों में शोषित-पीड़ित किसान, गाँव, दलित, महिलाएँ और उसके लिए जिम्मेदार राजनीति पर तीखा व्यंग्य है।"[9] अदम गोंडवी उन गजलकारों में हैं जिन्होंने सामाजिक एवं राजनीतिक यथार्थ को अपनी कलम के केंद्र में रखा है। उनकी प्रस्तुत पंक्तियाँ आजाद देश के नागरिकों को विचार करने के लिए प्रवृत्त करती है-

" आजादी का ये जश्न मनाएँ वे किस तरह / जो आ गए फुटपाथ पर घर की तलाश में।

काजू भुने पलेट में विस्की गिलास में/उतरा है रामराज्य विधायक निवास में।"[10] द्रष्टव्य उद्धरण से स्पष्ट होता है कि अदम गोंडवी सामाजिक वैषम्य एवं भयावह यथार्थ को उद्घाटित करते हैं, जहाँ आज़ादी का उत्सव मानो सिर्फ संपन्न वर्ग तक सीमित रह गया है, समाज का वंचित एवं उपेक्षित वर्ग अपनी मूलभूत आवास जैसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए भी संघर्षरत हैं। अलावा इसके गोंडवी ने जनप्रतिनिधियों के रामराज्य की परिकल्पना के वादों को सिर्फ उनके अपने भोग विलासी एवं ऐयाशी जीवन को उद्घाटित किया है। स्पष्ट है कि गोंडवी ने सामाजिक न्याय, समता एवं लोकतांत्रिक मूल्यों के वास्तविक अमल एवं आवश्यकता पर सवाल उठायें हैं।

राकुमार कृषक जी की यह पंक्तियाँ देश के हालात को बेबाक ढंग से बयां करती होती है –

"हर देश के हर चौक पे लटके अभी सलीब/सच बोलने का सिर्फ यही तो इनाम है।

इस मुल्क की हालत पे मेरे दोस्त जरा सोच/जब से हुआ आजाद तभी से गुलाम है।"[11] स्पष्ट है कि रामकुमार कृषक ने राजनीतिक यथार्थ को हमारे सामने रखा है। आज सच का बोलबाला मौत के घाट उतार देता है। यहाँ तो झूठ का सिक्का बड़े पैमाने पर काम आता है, सच बोलनेवालों को सलीब पर चढ़ाया जाता। यह हालत उस स्वाधीन देश की है जिस देश को आजाद हुए छिहत्तर साल हो गए है। ग़ज़लकार चिंतित है कि आजादी से तो उम्मीदें थीं लेकिन दुर्भाग्य है कि हम पराए से नहीं बल्कि अपनों के ही गुलाम बन गए है। यह देश के हालात हमें सोचने के लिए मजबूर करते परिलक्षित होते हैं। मनोज सोनकर चुनावी मौसम पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं –

"चुनाव आएँ मौके लाएँ, दनदनाएँ पोस्टर/सेवक जागें कूदें आगे, घनघनाएँ पोस्टर।

दाना कुछ ले-लेकर दौड़ें, हाल-चाल भी पूछें,/रोटी देवें दाम न लेवें, खनखनाएँ पोस्टर।"[12] द्रष्टव्य पंक्तियाँ चुनावी माहौल को उजागर करते हए राजनेताओं की भ्रष्ट एवं स्वार्थांध नीति से पाठकों को अवगत कराती है। कहना सही होगा कि चुनावी राजनीति का यथार्थ एवं भयावह चेहरा उपस्थित होता है। राजनीतिक कार्यकर्ता अचानक सक्रिय होकर प्रचार-प्रसार के पोस्टर चिपकाते दृष्टिगोचर होते हैं। साथ ही वोट प्राप्ति के उद्देश्य से उम्मीदवार या उनके कार्यकर्ता दान-सामग्री, सौजन्य और सद्भाव के खोखले मुखौटे के माध्यम से मतदाताओं को प्रभावित करते हैं।

जीवन के प्रति आस्थावादी स्वर -

गोपालदास सक्सेना 'नीरज' हिंदी के बहुमुखी रचनाकार हैं जिन्होंने ग़जल विधा को गीतात्मकता, भावप्रवणता और सरल भाषा के सौंदर्य से समृद्ध किया। उनकी ग़ज़लों में जीवन-दर्शन, मानवीय प्रेम, सामाजिक यथार्थ और कोमल अनुभूतियाँ

ISSN : 2581-8848

मिलती है। उनकी ग़ज़ल की यह पंक्तियाँ आज की पीढ़ी को जीवन के प्रति आशावादी एवं आस्थावादी अनुभव कराती हैं – "हारे हुए परिंदे, जरा उडके देख तो / आ जाएगी जमीन पे छत आसमान की।"[13] द्रष्टव्य उद्धरण इस बात की ओर संकेत करता है कि हारा हुआ परिंदा अपने जीवन के प्रति निराश होकर यदि उड़ना छोड़ दें तो वह अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच पायेगा। ग़ज़लकार उसे आश्वस्त करता है कि उड़ने जज्बा उसमें होता है तो आसमान रूपी छत भी जमीन पे आ सकती है अर्थात वह अपना लक्ष्य प्राप्त कर सकता है। परिंदे के माध्यम से नीरज युवाओं को संदेश देते हैं जीवन में निराशाएँ जरुर आएगी, लेकिन प्रयास जारी रखना है, मंजिल चाहे जितनी भी दूर अवश्य प्राप्त हो सकती है। अशोक रावत के ग़ज़ल की यह पंक्तियाँ जीवन के प्रति आशावादी स्वर से परिचित कराती है-

"हमारे पास रुतबा है, न शोहरत है, न वैभव ही,/भले ही कुछ न हो जीने को , लेकिन हौसला तो है।

बुरा क्या है, अधूरे ख्वाब लेकर जी रहे हैं हम,/हमारी सोच में उम्मीद का एक दर खुला तो है।"[14] स्पष्ट है कि भौतिक साधनों के अभाव में भी जीवन मूल्यवान बन सकता है क्योंकि सच्चाई बाहरी साधनों में नहीं, बल्कि हौसलें और दृढ़ संकल्प पर निर्भर करती है। मनुष्य के पास हथियार के रूप में हौसला है तो वह व्यक्ति संघर्ष के साथ आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है। ग़ज़लकार का मानना है कि आशा और साहस जीवन-संघर्ष की विश्वसनीय नींव हैं। दूसरे शेर में कहा है कि अधूरी आकांक्षाएँ और अधूरे स्वप्न जीवन की नकारात्मक स्थिति को नहीं अपितु निरंतर प्रयास का प्रेरक होती है।

निष्कर्ष :

उक्त विवेचन एवं विश्लेषण के पश्चात् निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि हिंदी ग़ज़ल का बहुआयामी परिदृश्य अपनी विशेषताओं एवं विषय वैविध्य के साथ उद्घाटित हुआ है। मुख्य रूप से ग़ज़ल की संक्षिप्त पृष्ठभूमि को उजागर करते हुए दुष्यंत कुमार, गोपालदास सक्सेना 'नीरज', रामकुमार कृषक, अदम गोंडवी, मनोज सोनकर तथा अशोक रावत आदि रचनाकारों की ग़जलें सांप्रदायिक सद्भाव, जनमानस की पीड़ा, राजनीतिक परिदृश्य एवं जीवन के प्रति आस्था को व्यापक धरातल पर प्रस्तुत करती दृष्टिगोचर होती है। विवेच्य रचनाकारों ने समष्टि के प्रति अपनी संवेदनात्मक एवं मानवतावादी प्रतिबद्धता का बेबाक परिचय दिया है। आजादी से लेकर वर्तमान बेबाक यथार्थ को अभिव्यक्ति देने में हिंदी ग़ज़ल का स्वर सशक्त परिलक्षित होता है।

संदर्भ सूची –

1. आकाश 'अर्श', बातें ग़ज़ल की, नोएडा: रेख्ता पब्लिकेशन, 2023, पृष्ठ-13-14
2. केसरी, वीनस. ग़ज़ल की बाबत, प्रयागराज: रैडग्रैब बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, 2019, पृष्ठ-13
3. मुजावर, सरदार. सांप्रदायिक सद्भाव के संदर्भ में हिंदी ग़ज़ल, नई दिल्ली: अयन प्रकाशन, 2015, पृष्ठ-27
4. वही
5. कृषक रामकुमार सं. अलाव, अंक-48 दिल्ली, रामकुमार कृषक, 2016, पृष्ठ-9
6. मुजावर, सरदार. सांप्रदायिक सद्भाव के संदर्भ में हिंदी ग़ज़ल, नई दिल्ली: अयन प्रकाशन, 2015, पृष्ठ-105
7. विवेक, ज्ञान प्रकाश, हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा, पंचकुला: हरियाणा ग्रंथ अकादमी, 2012, पृष्ठ-76
8. कमलेश्वर, हिन्दुस्तानी ग़जलें, दिल्ली: राजपाल एडं सन्स, 2015, पृष्ठ-20
9. कृषक रामकुमार सं. अलाव, अंक-48 दिल्ली, रामकुमार कृषक, 2016, पृष्ठ 49
10. कमलेश्वर, हिन्दुस्तानी ग़जलें, दिल्ली: राजपाल एडं सन्स, 2015, पृष्ठ-20
11. मुजावर, सरदार. सांप्रदायिक सद्भाव के संदर्भ में हिंदी ग़ज़ल, नई दिल्ली: अयन प्रकाशन, 2015, पृष्ठ-108
12. वही, पृष्ठ- 61
13. वही, पृष्ठ-28
14. मिश्र, उमाकांत. सं. कविता आजकल, दिल्ली, प्रकाशन विभाग, 2004 पृष्ठ-94

*****

ISSN : 2581-8848

शैलेंद्र के गीतों में जीवन दर्शन और सामाजिक चेतना

डॉ. प्रकाश विष्णु कांबळे
अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
महावीर महाविद्यालय, कोल्हापुर (स्वशासी)
मो- 9860286148
prakashpushpa08@gmail.com

शोधसार (Abstract)

गीतकार शैलेंद्र ने अपनी बहुमुखी प्रतिभा से सर्वहारा वर्ग की संवेदनाओं, मानवीय मूल्यों और दार्शनिक सत्यों को अत्यंत सरल और सुबोध भाषा में प्रस्तुत किया। उन्होंने हिंदी गीतों को मनोरंजन की परिधि बाहर निकालकर स्वस्थ समाज के निर्माण और व्यक्तिगत चारित्रिक उत्थान केसाथ जोड़ दिया है। उनके गीतों में 'अभाव' को 'भाव' में बदलने की अद्भुत क्षमता है। उनके काव्य में कबीर जैसी फकीरी, मार्क्सवादी वर्ग-चेतना और मानवीय संवेदनाओं का एक दुर्लभ त्रिकोण निर्मित होता है। शैलेंद्र का जीवन दर्शन निराशावादी नहीं, बल्कि 'संघर्षशील आशावाद' का प्रतीक है। उनके गीतों में नारी चेतना, हाशिए के समाज का स्वर और विश्व-बंधुत्व की भावना प्रमुखता से मुखर हुई है। शैलेंद्र के गीतों की प्रासंगिकता अक्षुण्ण है, क्योंकि वे मनुष्य को अपनी जड़ों से जोड़ते हुए उसे एक बेहतर इंसान बनने के लिए प्रेरित करते हैं।

बीज शब्द (Keywords): शैलेंद्र, जीवन दर्शन, सामाजिक चेतना, मानवतावाद, वर्ग-संघर्ष, हिंदी सिनेमा, आशावाद, नैतिकता।

प्रस्तावना (Introduction)

हिंदी सिनेमा के इतिहास में गीतकार शैलेंद्र का आगमन एक क्रांतिकारी घटना थी। क्योंकि शैलेंद्र के गीतों का श्रोता हर आयु, जाति, धर्म, प्रांत, वर्ग का मनुष्य रहा है। उनके गीत जन संवेदना को जन की भाषा में अभिव्यक्त करते हैं इसी कारण वे जनकवि भी कहलाए गए हैं। ३० अगस्त, १९२३ को रावलपिंडी में जन्मे और मथुरा की गलियों में पले-बढ़े शंकरदास केसरीलाल 'शैलेंद्र' ने अपनी लेखनी से एक पूरे युग की धड़कनों और सामाजिक संघर्षों को स्वर दिया। शैलेंद्र एक ऐसे दौर के कवि थे जब भारत नव-स्वतंत्रता के उल्लास और विभाजन की त्रासदी के बीच अपनी पहचान गढ़ रहा था। इप्टा (IPTA) और प्रगतिशील लेखक संघ से जुड़ाव के कारण उनकी दृष्टि में मार्क्सवादी चेतना और सर्वहारा वर्ग के प्रति गहरी सहानुभूति थी। किंतु, उनकी विशिष्टता यह रही कि उन्होंने विचारधारा के बोझ तले अपनी सरलता को दबने नहीं दिया। उनके गीतों में कबीर की फकीरी, लोक-जीवन की सोंधी महक और जीवन के कड़वे सत्यों को मीठी धुन में ढालने की अद्भुत कला विद्यमान है। जहाँ तत्कालीन समय में गीत केवल प्रेम और विरह तक सीमित थे, वहीं शैलेंद्र ने "तू जिंदा है तो ज़िंदगी की जीत में यकीन कर" जैसे गीतों के माध्यम से आम आदमी को उसकी आंतरिक शक्ति से परिचित कराया। उनका जीवन दर्शन किताबी या क्लिष्ट नहीं है, बल्कि वह अनुभव की भट्टी में तपकर निकला है। उन्होंने अभावों में जीवन जिया, इसीलिए उनके गीतों में गरीबी और संघर्ष का वर्णन अपमानजनक नहीं, बल्कि गरिमापूर्ण है।

शोध के उद्देश्य (Objectives of Research)

1. शैलेंद्र के गीतों के उन अंतर्निहित सूत्रों को खोजना, उन्हें एक 'गीतकार' से 'जीवन-द्रष्टा' या 'दार्शनिक' के रूप में स्थापित करना है।
2. शैलेंद्र के गीतों में निहित 'मानवतावाद' और 'वैश्विक चेतना' को रेखांकित करना।
3. उनके काव्य में व्यक्त 'संघर्ष और आशावाद' के अंतर्संबंधों का विश्लेषण करना।
4. सामाजिक विसंगतियों के प्रति उनकी 'वर्ग चेतना' और 'क्रांतिकारी दृष्टि' को समझना।
5. नैतिक मूल्यों और जीवन की नश्वरता के प्रति उनके 'दार्शनिक दृष्टिकोण' की व्याख्या करना।

शोध पद्धतियाँ (Methodology)

प्रस्तुत शोध में वर्णनात्मक (Descriptive) और विश्लेषणात्मक (Analytical) पद्धति का प्रयोग किया गया है।

मूल आलेख (Analysis & Key Findings)

अपने जीवन की तमाम उलझनों को सुलझाने के लिए मथुरा से मुंबई की यात्रा करने वाले शैलेंद्र जी ने रेल्वे में बतौर वेल्डर नौकरी की। रेल्वे कॉलोनी में एक कमरे में जिंदगी बिताई। बचपन में हॉकी खेलने में रूचि रखने वाले शैलेंद्र को उनकी जाति का आधार लेकर हॉकी खेलने से मना किया गया तब वे हॉकी स्टिक को तोड़कर अपने विद्रोह को जाहिर करते हैं। शैलेंद्र जी का

पूरा जीवन और उनके गीतों को देखें तो हॉकी स्टिक तोड़ना एक प्रतीक था उस व्यवस्था के प्रति जिसने विषमता को जन्म दिया था। उनके गीतों या कविताओं में स्थित विद्रोह सभी प्रकार की विषमता को दूर कर एक स्वस्थ समाज के निर्माण का आगाज करता है। यह आगाज उनके युवावस्था में आजादी के आन्दोलन में शामिल होकर लिखी गयी कविताओं से झलकता है। उस समय उनकी कविताएँ नया साहित्य,नया पथ, हंस, जनयुग जैसी पत्रिकाओं में प्रकाशित होती थी। कवि सम्मेलनों में एक विद्रोही कवि के रूप में उनकी पहचान बनी थी। 1942 में गाँधी जी ने 'करो या मरो' का नारा दिया था। एक संवेदनशील व्यक्ति के साथ क्रांतिकारी विचारधारा पर विश्वास रखने वाले शैलेंद्र आजादी के आन्दोलन में कूद पड़े। जेल गए। वहां से बाहर निकलने के बाद उन्होंने भारतीय जन नाट्य संघ के लिए कविता लिखी। यहीं पर उनकी पहचान राज कपूर से होती है। शुरूआती दौर में फिल्मों के लिए गीत लेखन करने से इंकार करने वाले शैलेंद्र फ़िल्मी दुनिया के चमकते सितारा बना गए। जिन्हें राज कपूर 'पुश्किन'या 'कविराज' कहकर संबोधित करते थे तो इतिहासकार लाल बहादुर शर्मा उन्हें भारत का 'बॉब डिलन' कहा करते थे। हिंदी फिल्मों के शीर्षक गीत लिखने की परंपरा शुरू करने वाले शैलेंद्र ने महज 41 साल के जीवन में 800 गीत लिखे जिसमें सादगी, प्रेम, संवेदनशीलता, विद्रोह के साथ जन-जन की पीड़ा को अभिव्यक्ति मिली है। शैलेंद्र के गीतों ने फिल्मों की सार्थक व्याख्याएँ की हैं। यह कहना उचित होगा कि तत्कालीन समय की फ़िल्में उनके गीतों के बिना निष्प्राण सी थी। 'जिस तरह प्रेमचंद कहानी लिखते-लिखते कहानी का पर्याय बन गए उसी तरह शैलेंद्र गीत रचते रचते गीतों के प्रेमचंद बन गए।'[1]

शैलेंद्र जी अपने काव्य जीवन की शुरुआत प्रेम कविता से करते हैं। क्यों प्यार किया, नादान प्रेमका, यदि मैं कहूँ जैसी कविताएँ इसमें शामिल हैं। लेकिन मुंबई में प्रगतिशील लेखक संघ से जुड़ने के पश्चात उनका संपर्क मजदूर आन्दोलन, किसान आंदोलन, छात्र आंदोलन से जुड़े चिंतकों से होता है और वे मजदूरों, किसानों के शोषण और उनके दुःख के साथ जुड़ जाते हैं। इसी संघ में उनकी पहचान दीना पाठक, बलराज साहनी, जोहरा सहगल जैसे कलाकारों के साथ भीष्म साहनी, साहिर लुधियानवी, हसरत जयपुरी, कैफ़ी आझमी जैसे प्रगतिशील साहित्यकारों से होती है और उनके लेखन का दायरा या फलक व्यापक हो जाता है। यहीं पर वे अपने दोस्तों के साथ राष्ट्रीय- अंतरराष्ट्रीय राजनीति पर चर्चा करते हैं। मार्क्सवाद का अध्ययन करते हैं। जन्मता सामाजिक व्यवस्था के शिकार बने शैलेंद्र अपनी प्रतिभा से गीतों की शब्द रुपी माला में देश और दुनिया के शोषित- पीड़ित जनता के दुःख- दर्द को ऐसे पिरोते हैं कि हर कोई इसे अपना ही दर्द समझता है। उनके गीत संघर्षशील समाज के लिए प्रेरणा बने। उअनके गीतों में सामजिक न्याय एवं समानता का स्वर मिलता है। उनके गीत नैतिकता और सादगी के प्रतिमान हैं। उनके गीत भारत की सांस्कृतिक अस्मिता की रक्षा करते नजर आते हैं।

शैलेंद्र जी का अपना जीवन दर्शन है। वे दुख को पलायन का मार्ग नहीं, बल्कि जीवन की अनिवार्य ऊर्जा के रूप में देखते हैं। उनकी दृष्टि से जीवन की सार्थकता भौतिक उपलब्धियों में नहीं, बल्कि निस्वार्थ प्रेम और दूसरों के दुःख को आत्मसात करने की क्षमता में निहित है। उनके दर्शन पर बुद्ध की करुणा झलकती है। कबीर आदि संतों के 'मानव सेवा ही ईश्वर सेवा' का भाव नजर आता है। उनके इस दर्शन को 'किसी की मुस्कुराहटों पे हो निसार" गीत में देखा जा सकता है-

"किसी की मुस्कराहटों पे हो निसार
किसी का दर्द मिल सके तो ले उधार
किसी के वास्ते हो तेरे दिल में प्यार
जीना इसी का नाम है....."[2]

जब हम इस पुरे गीत को सुनते हैं तो लगता है कि उनका यह गीत मानवीय संवेदनाओं और परोपकार का एक कालजयी घोषणापत्र है, जो व्यक्तिवाद के स्थान पर सामूहिक सुख और सहानुभूति को जीवन के परम लक्ष्य के रूप में स्थापित करता है। यह गीत सामाजिक बंधनों और भावनात्मक जुड़ाव को 'जीने की कला' के रूप में प्रस्तुत करता है, जहाँ दूसरों के आँसू पोंछना और किसी के हृदय में आशा का संचार करना ही मनुष्यता की कसौटी माना गया है। सरल शब्दों में रचित यह दार्शनिक गीत 'जीना इसी का नाम है' के सूत्रवाक्य के साथ अस्तित्ववाद के उस पक्ष को उजागर करता है, जो करुणा और उदारता को ही जीवन का वास्तविक आधार मानता है।

वर्तमान समय विज्ञान और तकनीकी का है। भूमंडलीकरण से प्रभावित अर्थप्रधान संस्कृति का है। यह वह समय है जहाँ सबसे तीव्र गति से मानव मूल्य बदल रहें हैं। मनुष्य भौतिक साधनों को पाना ही अपने जीवन का लक्ष्य मान बैठा है। पैसा ही भगवान बना है। पैसे कमाने के साधनों की पवित्रता नष्ट हुई है। चरित्र का खोखलापन और अनैतिकता से व्यक्ति की पहचान की जा रही है। ऐसे समय में शैलेंद्र हमें भौतिक सुखों के बजाय आध्यात्मिक सत्य की ओर उन्मुख करते हैं। वे लिखते हैं-

सजन रे झूठ मत बोलो, खुदा के पास जाना है
न हाथी है ना घोड़ा है, वहाँ पैदल ही जाना है
तुम्हारे महल चौबारे, यहीं रह जाएंगे सारे
अकड़ किस बात कि प्यारे.......।[3]

यह गीत आध्यात्मिक चेतना और नैतिक जीवन का एक दार्शनिक सारांश है। इसमें 'मृत्यु की अनिवार्यता' को केंद्र में रखकर मनुष्य को भौतिक आसक्ति और अनैतिकता के प्रति सचेत किया है। इसमें कर्म-फल सिद्धांत का प्रतिपादन मिलता है, जहाँ 'हाथी-घोड़े' जैसे बिम्ब इस सत्य को उजागर करते हैं कि मृत्यु के पश्चात भौतिक संपदा का पूर्णतः विलोपन हो जाता है और केवल व्यक्तिगत शुचिता ही शेष रहती है। अतः, यह रचना धार्मिक पाखंड और सांसारिक प्रपंचों के विरुद्ध 'सत्य' एवं 'सादगी' को मानव अस्तित्व के परम लक्ष्य के रूप में स्थापित करती है।

कवि शैलेंद्र आस्था और आशा के कवि है। उनकी आस्था आम आदमी के जीवन के साथ जुडी है। उनके गीतों में अभावों के बीच भी उम्मीद न छोड़ने और बड़ी कल्पनाओं के सहारे जीने के मानवीय जज्बे को दर्शाया है। गरीबी और भूख के यथार्थ को एक बहुत ही सुंदर और कल्पनाशील ढंग से प्रस्तुत करते लिखते हैं-

सूरज ज़रा आ पास आ
आज सपनों की रोटी पकाएंगे हम
ऐ आसमाँ ! तू बड़ा मेहरबां
आज तुझ को भी दावत खिलाएंगे हम!
चूल्हा है ठंडा पड़ा
और पेट में आग है
गरमा-गरम रोटीयाँ
कितना हसीं ख़्वाब है![4]

यह गीत अभावों के बीच मानवीय जिजीविषा और कल्पना की शक्ति का अद्भुत दस्तावेज है। जहाँ "ठंडा चूल्हा" और "पेट की आग" गरीबी की कड़वी सच्चाई को दर्शाते हैं, वहीं सूरज की आंच से "सपनों की रोटी" पकाने की बात निराशा में आशा की किरण जगाती है। शैलेंद्र ने यहाँ दर्शाया है कि संसाधन न होने पर भी मनुष्य अपनी उम्मीदों के सहारे भविष्य की सुखद तस्वीर गढ़ता है। आसमान को दावत का न्योता देना कवि के उदार दृष्टिकोण और ब्रह्मांडीय भाईचारे को प्रकट करता है, जबकि आलू-टमाटर के साग जैसी छोटी इच्छाएँ एक साधारण व्यक्ति के संघर्षपूर्ण जीवन में सुख के सरल अर्थों को रेखांकित करती हैं।

शैलेंद्र के गीतों में स्त्री की मुक्ति, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और आत्म-खोज का उल्लासपूर्ण वर्णन है। वे स्त्री मुक्ति के साथ स्त्रियों को आजादी दिलाने के हिमायती थे। यह वह समय था जब "हिंदी सिनेमा में महिला गीतकारों की बहुधा अनुपस्थिति रही है। ऐसे में महिला किरदारों के जज्बात का इजहार पुरुष गीतकारों के ऊपर आ पड़ा और ऐसे अनेक उदाहरण मिल जाएंगे जहाँ शैलेंद्र ने इस जिम्मेदारी को संवेदनशीलता के साथ निभाया।"[5]

"काँटों से खींच के ये आँचल
तोड़ के बंधन बांधे पायल
कोई न रोको दिल की उड़ान को
दिल वो चला ह ह हा हा हा हा
आज फिर जीने की तमन्ना है
आज फिर मरने का इरादा है.."[6]

इस गीत की नायिका अपने अतीत के दुखों, एक असफल विवाह की कड़वाहट और समाज की रूढ़िवादी बेड़ियों को पीछे छोड़कर अपनी शर्तों पर नया जीवन शुरू करने का संकल्प लेती है। 'काँटों से आँचल खींचना' इस संघर्ष का प्रतीक है कि उसने कितनी कठिन परिस्थितियों से स्वयं को आजाद किया है, वहीं "आज फिर जीने की तमन्ना है" जैसी पंक्तियाँ उसके भीतर जागी जीने की नई ललक और खोई हुई पहचान को वापस पाने की ख़ुशी को दर्शाती हैं।

शैलेंद्र जी ने अपने समय की विसंगतियों एवं विषमताओं को अपने गीत के द्वारा अभिव्यक्त किया है। वे जनवादी कवि इसलिए कहलाए क्योंकि उनकी गीतों की आत्मा जनता और उससे जुड़े प्रश्न थे। वे 'तू जिंदा है तो ज़िन्दगी के जीत पर यकीन कर'

और 'हर जोर जुल्म की टक्कर में हड़ताल हमारा नारा है' जैसे जनगीत रचकर जन सामान्य की चेतना को अभिव्यक्त करते हैं। इस सम्बन्ध में वरिष्ठ आलोचक मैनेजर पाण्डेय अपने लेख 'जन आन्दोलन और जनवादी गीत' में लिखते हैं, "शंकर शैलेन्द्र के गीतों की लोकप्रियता का अंदाज़ वही कर सकता है, जो जन आंदोलनों से जुड़ा हुआ है। संघर्ष में आस्था जगाने वाले ये गीत मज़दूर आन्दोलनों के समान किसान आन्दोलनों के भी प्रेरणादायक हैं। शैलेन्द्र के गीत साबित करते हैं कि आन्दोलन से उपजी कला भी स्थायी होती है, बशर्ते कि उसमें जीवन के संघर्ष का संगीत हो।"[7]

शैलेंद्र के गीतों में सामाजिक चेतना अत्यंत प्रखर और गहरी थी। उनके गीतों में सामाजिक चेतना केवल उपदेशात्मक नहीं, बल्कि उनके निजी संघर्षों और विचारधारा से उपजी गहरी अनुभूति थी। उन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से समाज के वंचित वर्ग, गरीबी, स्त्री शोषण को प्रमुखता दी। उन्होंने शोषित और मजदूर वर्ग की पीड़ा को गीतों का हिस्सा बनाया। ग्रामीण जीवन की गरीबी और सामाजिक विषमता को आवाज दी। उनके गीत तो जैसे जन- गन- मन की सच्ची भावना है। इन गीतों में प्रेम भावना के साथ निस्वार्थ त्याग की भावना झलकती है। शैलेंद्र के गीतों की भाषा उनकी अपनी पहचान है। जनकवि जनता की भाषा में व्यक्त होता है। शैलेंद्र की भाषा सहज, सरल और आम आदमी की जुबान है। यह कहें की शैलेंद्र ने आम आदमी की जुबान को साहित्य और सिनेमा के उच्च शिखर पर पहुँचाया। उनकी भाषा में हिंदी, उर्दू के साथ अवधी और भोजपुरी का मिलाफ है। वे अपनी अभिव्यक्ति के लिए नए बिम्बों और प्रतीकों का प्रयोग करते हैं।

निष्कर्ष:

शैलेंद्र के गीतों में गरीबी या संघर्ष का वर्णन किताबी नहीं बल्कि उनके 'मजदूर जीवन' की अपनी पीड़ा और स्वाभिमान से उपजा है। उनके मार्क्सवाद और इप्टा (IPTA) से जुड़ाव ने उनके व्यक्तिगत दर्द को एक व्यापक 'वर्ग चेतना' में बदल दिया, जिससे उनके गीत व्यवस्था परिवर्तन का आह्वान बन गए। उन्होंने उपदेश देने के बजाय मानवीय संवेदनाओं (प्रेम, करुणा, सादगी) का सहारा लिया, जिससे उनके गीत जनता के लिए 'नारे' न बनकर उनके 'जीवन का संगीत' बन गए। संक्षेप में, शैलेंद्र के गीत केवल शब्द नहीं थे, बल्कि एक 'श्रमिक कवि' के हृदय की धड़कन थे, जिन्होंने अपनी विचारधारा को आम आदमी की सरल भाषा में ढालकर उसे गरिमा और आशा प्रदान की।

संदर्भ सूची (References)

1. सिंह इन्द्रजीत, भारतीय साहित्य के निर्माता: शैलेंद्र, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 2004 पृष्ठ 7
2. कविता कोष https://kavitakosh.org
3. वहीं
4. वहीं
5. खान यूनुस, उम्मीदों के गीतकार: शैलेंद्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2025 पृष्ठ 207
6. कविता कोष https://kavitakosh.org
7. https://janchowk.com/shailendras-songs-became-slogans-of-mass-movements/

*****

 ISSN : 2581-8848

साठोत्तरी हिंदी गजल साहित्य में सामाजिक परिदृश्य
(गजलकार धूमिल, दुष्यंतकुमार जहीर कुरैशी,नीरज के संदर्भ में)

डॉ. रांजणे दयानंद शंकर
प्रभारी प्राचार्य
सौ शैलजा शिंदे आर्ट्स, कॉमर्स अँड सायन्स सिनियर
कॉलेज पेढांबे, तहसील-चिपळूण ,जिला-रत्नागिरी
संपर्क:9158563255
ई-मेल: dayanandranjane1974@gmall.com

शोध सार:
आज की गजल मे सामाजिक विषमता पर निर्देश करते हुए समाज मे प्रेम,संयोग,वियोग पीडा का अभाव दिखाई देता है। जहीर कुरैशी ने सामाजिक बुराईयो को दिखाने के साथ-साथ उनकी गजलो में एक बेहतर और अपूर्ण समाज की स्थापना की आशा और बदलाव की चाहत व्यक्त हुई है। सामाजिक मुद्दो पर सोचने और जागरूक बनने के लिए भी प्रेरित करती है मानव मूल्यों के पतन का कारण दो पीढियों में निर्माण हुआ अंतराल है जिसके कारण विचारों में दरार परिलक्षित होती है।
बीज शब्द: गजल, साहित्य, समाज, शोषण, विचार

प्रस्तावना:

अगर साहित्य में किसी एक विधा ने सबसे अधिक लोकप्रियता हासिल की है, तो वह है गजल । प्रत्येक युग मे सामाजिक चेतना का साहित्य के साथ अटूट संबंध बनता रहा है; किंतु सन साठ के बाद सारे विश्व में विशेषकर भारत मे राजनीति विज्ञान और अर्थ संबंध मे कुछ ऐसे परिवर्तन आए जिन्होने कभी मस्तिष्क को झकझोर कर रख दिया । बदलते परिवेश ने पारिवारिक संबंध मे दरार पैदा की । जीवन की विषमता नारी-पुरुष, किसान जमींदार और मजदूर-मालिक के संबंधों मे विशेष रूप से उभरी । उसी के साथ-साथ यौन भावना, व्यक्तिवादी कुंठा, मध्यम वर्गीय व्यक्ति की मानसिक बीमारिया निराशा और पलायन के साथ-साथ जन्म लेने लगी । सामाजिक विषमता स्वतंत्रता प्राप्ति के पचास साल बाद और बढती चली जा रही है । महंगाई, अशिक्षा, गरीबी, बेकारी, दहेज के कारण नारी से जुडी हुई समस्याएं पुंजीवादी समाज द्वारा निम्नवर्ग का शोषण हिंसा-परकता, भ्रष्टाचार का सिलसिला, महानगरों मे उत्पन्न अनेक समस्याओ मे खिंचा हुआ आदमी, भाषा, सीमा, परंपरा, धर्म, रूढी, आदि के नाम पर होनेवाले बल्कि कराए जानेवाले दंगे हमारे समाज के वास्तविक अंग बन चुके है। आज के दौर में इन समस्याओं ने अपनी अंतिम सीमा की हद पार कर दी है। धूमिल नागार्जुन, दुष्यंत कुमार, नीरज,जहीर कुरैशी आदि साठोत्तरी कुछ प्रमुख गजलकरों ने शोषित की आवाज बनकर समाज के भीतर पनपती इन घटनाओ,रूढी, परंपराओ मे शामिल रीतियों- कुरीतियों के साथ चलती सामाजिक दृश्यता संवेदनाओ को केंद्र मे रखा जिसकी वजह से गजल एक सशक्त सामाजिक माध्यम बन गई।

गजल काव्य की एक बहुत ही संवेदनशील और बहुत ही प्रभावी काव्य-विधा रही है। गजल शब्द मूलत: अरबी भाषा का है, फिर भी अरबी भाषा मे गजल नही मिलती। फारसी साहित्य से यह विधा भारत आकर प्रथम उर्दू मे फिर हिन्दी मे ,मराठी , गुजराती तथा धीरे-धीरे अन्य भाषाओं मे प्रचलित होने लगी है।

साहित्य और समाज दोनो का उद्देश्य एक ही है। साहित्यकार का एक सामाजिक उद्देश्य है। समाज की परख करने के साथ- साथ समाज के भावों और विचारों को सजीव और प्रभावशाली दिखाना।

हिन्दी साहित्य की सभी विधाओ मे गजल विधा बहुत ही संवेदनशील है। साहित्यकार समाज के दुख दर्द कोभलीभांति जानता ही नही बल्कि वह उस समाज का और सामाजिक परिस्थियों का वात्सव चित्रण हुआ है। गजलकार माधव कौशिक ने लिखा है- ''सामाजिक विसंगतीयो तथा विद्रुपताओ के साथ-साथ मानव मन की गहनतम भावनाओ को अभिव्यक्त करने तथा सूक्ष्म संवेदनाओ को वाणी प्रदान करने की अपार क्षमता और सामर्थ्य इस काव्य विधा मे बखूब है।''1

धूमिल की गजलो मे गहरी सामाजिक परिदृश्यता दिखाई देती है जो आजादी के बाद के भारत की लोकतांत्रिक व्यवस्था की विसंगतिया,भ्रष्टाचार, सामाजिक शोषण,अन्याय में पिसता हुआ आदमी,शिक्षा की खराब स्थिति इस तरह शोषण और आम आदमी की विवशता को उजागर करती है, जिसमें वे आम जनता की आवाज बनते हुए व्यवस्थापन पर तीखा प्रहार करते हैं। चंद

सुविधाओं के लालच के सामने झुकता समाज विकृत हो गया है। समाज की इस बेबसी पर व्यंग करते हुए गजलकार धूमिल पूरे समाज की सीवन उधेड कर रख देते हैं। समाज को भीड का नाम देते हुए धूमिल अपने तिखे शब्दों में कहते है-

"भीड के खिलाफ रुकना
एक खूनी विचार है
क्योंकि हर ठहरा हुआ आदमी
इस हिंसक भीड का अंधा शिकार है।"1

सामाजिक विषमता में शिक्षा के क्षेत्र में पनपती दुर्दशा पर भी गजलकार धूमिल ने तिखा प्रहार किया है। उन्होंने समाज की बुनियादी आवश्यकताओं मे शिक्षा क्षेत्र का होना महत्वपूर्ण माना है। जहाँ तक शिक्षा का जिक्र है, वहाँ तक शिक्षा हर व्यक्ति के लिए जरुरी है व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन मे शिक्षा का बडा अहम स्थान है। शिक्षा से ही व्यक्ति का व्यक्तित्व का निर्माण होता है। वर्तमान स्थिति में शिक्षा क्षेत्र में व्यवसायीकरण के प्रति बढती रुचि के कारण उसके पवित्रता पर काले बादल मंडरा रहे हैं। शिक्षा का स्तर गिरने के पीछे प्रमुख कारण विद्वानों के बजाय राजनीतिज्ञों का दखल देना रहा है। इसपर तीखा प्रहार करते हुए धूमिल लिखते है!

"सबसे अच्छे मस्तिष्क
आराम कुर्सी पर
चित्त पडे है।"2

दुष्यंत कुमार ने सही मायने में हिंदी गजल को हिंदी गजल का मुहवरा दिय। गजल को सामाजिक और राजनीतिक विसंगतियों से जोडकर नए आयाम दिए। संतोष कुमार तिवारी लिखते है –"दुष्यंतकुमार समाज के ऊस वर्ग विशेष के चरित्र को अच्छी तरह पहचानता है जो खून बहाने के स्थिति मे तटस्थ बनकर बैठ जाते है।" दुष्यंत कुमार की प्रतिबद्धता आज के समाज के प्रति विशेष लक्षित होती है। आज महंगाई के कारण पारिवारिक संबंधों मे दरार पडती जा रही है। इसका नतीजा समाज मे बढती गरीबी,आर्थिक विषमता के कारण आम आदमी का जीवन कठीण हुआ है। यह स्थिती पूरे भारत देश की है।
भारत के वास्तविक स्थिती को इस प्रकार दर्शाया है-

"भूख है तो सब्र कर रोटी नही तो क्या हुआ
आज कल दिल्ली में जेरे बहस ये मुद्दआ
सिर्फ हंगामा खडा करना मेरा मक्सद नही
मेरी कोशिश है कि ये सुरत बदलनी चाहिये।"3

इस पंक्ती से भारत मे आजादी के बाद बात के सामाजिक हालातों की और कटाक्ष किया है जहाँ एक और तरफ आजादी का जश्न था वही दूसरी तरफ गरीबी और लाचारी थी।

गजलकार दुष्यंतकुमार समाज की विषम स्थिति को देखकर चुप्पी साधें नही बैठेते। हर गजल सत्ता या हुकूमत खिलाफ एक बगावत और बयान बन चुकी है,जो आम आदमी की आवाज बन चुकी है आम आदमी की पीडा और सच्चाई को बता रही है। वे लिखते है-

"मुझे में रहते हैं करोडो लोग चुप कैसे रहूँ
हर गजल सल्तनत के नाम पर एक बयान है।"4

जहीर कुरैशी हिंदी के बहुचर्चित गजलकार है। उनकी अधिकांश गजलो में सामाजिक दुर्दशा का यथार्थ चित्रण मिलता है। उनकी गजलो में मध्यम और निम्नवर्ग की दुर्दशा उनके दैनिक जीवन की कठिनाइयाँ कभी व्यक्तिगत रूप से कभी सामाजिक रूप से व्यक्त होती है। आज समाज में नारी का शोषण उस पर होने वाले अत्याचारों मे अनगिनित वृद्धि हुई है इस पर तिखा व्यंग्य करते हुए वे कहते है-

" दिन दहाडे, रेप ,हत्या,रह्जनी, डाके,
हादसा है जिंदगी इन मंजरों के बीच "5

आज की गजल मे सामाजिक विषमता पर निर्देश करते हुए समाज मे प्रेम,संयोग,वियोग पीडा का अभाव दिखाई देता है। जहीर कुरैशी ने सामाजिक बुराईयो को दिखाने के साथ-साथ उनकी गजलो में एक बेहतर और अपूर्ण समाज की स्थापना की आशा और बदलाव की चाहत व्यक्त हुई है। सामाजिक मुद्दो पर सोचने और जागरूक बनने के लिए भी प्रेरित करती है मानव

ISSN : 2581-8848

मूल्यों के पतन का कारण दो पीढियों में निर्माण हुआ अंतराल है जिसके कारण विचारों में दरार परिलक्षित होती है। विचारों की जगह अहंकार का प्रभाव दिखाई देता है यही वजह है की आज वृद्धावस्था को एक बोझ माना जाता है। इस सामाजिक विकृति पर जाहीर कुरैशी लिखते है-

"जब से अफसर बना बेटा
झुक गया है पिता का स्वर
घर मे हमारे बच्चे अगर पुछते नही हमको
हम इस तरह की नि:संतान हो जाते हैं।
-----झिडकियाँ मिलती है उसको रोज आदर की जगह।"6

कवी निरज ने गझल को गीतिका का नाम दिया है उन्होने अपनी गजलों के माध्यम से समाज के यथार्थ को प्रदर्शित किया है उनकी गजलो मे गरीबी शोषण व सामाजिक असमानता के दर्द को देखा जा सकता है उन्होने मजह और इन्सानियत को अपनी गजलो मे स्थान देकर अपनी माननीय संवेदना को व्यक्त किया है-

"है बहुत अंधियारा अब सुरज निकलना चाहिए
जिस तरह से भी हो यह मौसम बदलना चाहिए "7

संदर्भ संकेत :

1. हाथ सलामत रहने दो-गजलसंग्रह माधव कौशिक भूमिका से
2. धूमिल संसद से सडक तक पटकथा पृष्ठ 122
3. कल सुनना मुझे एक कविता कुछ सूचनाए पृष्ठ 30
4. नई कविता के प्रमुख हस्ताक्षर संतोष कुमार तिवारी पृष्ठ 257
5. जहीर कुरैशी 'चांदणी का दुख ' 1986 पृष्ठ 8
6. संपादक डॉक्टर विश्वनाथ तिवारी अंक 67 अप्रैल जून 1995 पृष्ठ 15
7. धूप बहुत है (शायर राहत इंदौरी) संपादक डॉक्टर प्रवीण शुक्ल डायमंड बुक्स

*****

लोक, प्रकृति और संघर्ष: हिन्दी गीत और ग़ज़ल में आदिवासी संवेदना

प्रा. शेषराव सु. माने
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
बळीराम पाटील महाविद्यालय, किनवट, नांदेड़
Email: sheshrao.mane@gmail.com
Contact: 9765828376

शोध सारांश:

प्रस्तुत शोध-पत्र "लोक, प्रकृति और संघर्ष: हिन्दी गीत और ग़ज़ल में आदिवासी संवेदना" हिन्दी साहित्य की गीत और ग़ज़ल परंपरा में आदिवासी जीवन-बोध, सांस्कृतिक चेतना और सामाजिक संघर्ष की काव्यात्मक अभिव्यक्ति का विश्लेषण करता है। आदिवासी समाज भारतीय सभ्यता का मूल आधार रहा है, जिसकी जीवन-दृष्टि लोक-संस्कृति, प्रकृति के साथ सहजीवन और सामूहिक चेतना पर आधारित है। किन्तु औपनिवेशिक व्यवस्था, आधुनिक विकास-नीतियों और पूँजीवादी हस्तक्षेपों के कारण आदिवासी समाज विस्थापन, शोषण और अस्मिता-संकट से जूझता रहा है। इन परिस्थितियों ने साहित्य में आदिवासी विमर्श को एक सशक्त वैचारिक आयाम प्रदान किया है। हिन्दी गीत और ग़ज़ल, जो परंपरागत रूप से प्रेम, करुणा और सौंदर्य की अभिव्यक्ति के माध्यम रहे हैं, समकालीन दौर में सामाजिक यथार्थ और हाशिए के समाजों की पीड़ा को स्वर देने लगे हैं। इस शोध में यह विवेचन किया गया है कि किस प्रकार लोक-तत्त्वों, प्रकृति-बिंबों और संघर्ष के प्रतीकों के माध्यम से हिन्दी गीत और ग़ज़ल में आदिवासी संवेदना अभिव्यक्त होती है। जंगल, नदी, पहाड़ और भूमि जैसे प्रकृति-तत्त्व केवल सौंदर्य-बोध तक सीमित न रहकर आदिवासी अस्तित्व, अस्मिता और प्रतिरोध के प्रतीक बनकर उभरते हैं। इसमें यह भी स्पष्ट किया गया है कि गीत और ग़ज़ल की शिल्पगत संरचना, भाषा और लयात्मकता आदिवासी अनुभवों को व्यापक पाठक-वर्ग तक पहुँचाने में सहायक रही है, यद्यपि मुख्यधारा साहित्य में आदिवासी दृष्टि अक्सर बाहरी या सहानुभूतिपरक रूप में प्रस्तुत हुई है। निष्कर्षतः यह अध्ययन स्थापित करता है कि हिन्दी गीत और ग़ज़ल में आदिवासी संवेदना सामाजिक न्याय, सांस्कृतिक बहुलता और मानवीय मूल्यों के पुनर्स्थापन की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक हस्तक्षेप है।

कुंजी शब्द: आदिवासी विमर्श, हिन्दी गीत, हिन्दी ग़ज़ल, लोक-संस्कृति, प्रकृति-बोध, संघर्ष और प्रतिरोध, आदिवासी अस्मिता, समकालीन हिन्दी साहित्य।

प्रस्तावना:

भारतीय समाज की सांस्कृतिक संरचना में आदिवासी समुदायों का स्थान अत्यंत मूलभूत और ऐतिहासिक रहा है। आदिवासी समाज न केवल भारतीय सभ्यता की प्राचीनतम परतों का प्रतिनिधित्व करता है, बल्कि उसकी जीवन-दृष्टि लोक-संस्कृति, प्रकृति के साथ सहजीवन और सामूहिक सामाजिक चेतना पर आधारित रही है। जंगल, नदी, पर्वत और भूमि आदिवासी जीवन के लिए केवल भौगोलिक या भौतिक तत्त्व नहीं हैं, बल्कि उनकी सांस्कृतिक स्मृति, आस्था और अस्तित्व का अभिन्न अंग हैं। इसी कारण आदिवासी समाज की संवेदना में प्रकृति और लोक-तत्त्वों का विशेष महत्त्व है। आधुनिकता, औपनिवेशिक सत्ता और उत्तर-औपनिवेशिक विकास-नीतियों के प्रभाव ने आदिवासी समाज को गहरे स्तर पर प्रभावित किया है। औद्योगीकरण, खनन, वन-नीतियों और शहरीकरण के कारण आदिवासी समुदायों का व्यापक विस्थापन हुआ है, जिससे उनका पारंपरिक जीवन-संतुलन टूटता चला गया। इसके साथ ही सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक शोषण ने आदिवासी अस्मिता को निरंतर संकटग्रस्त किया है। इन्हीं ऐतिहासिक और सामाजिक परिस्थितियों से आदिवासी विमर्श का उदय होता है, जो साहित्य में हाशिए पर पड़े समाजों की आवाज़ को केन्द्र में लाने का प्रयास करता है।

हिन्दी साहित्य में आदिवासी विमर्श अपेक्षाकृत देर से उभरा, किंतु समकालीन दौर में इसने कथा, कविता, नाटक और आलोचना के क्षेत्र में एक सशक्त उपस्थिति दर्ज की है। विशेष रूप से हिन्दी गीत और ग़ज़ल, जो परंपरागत रूप से प्रेम, विरह, सौंदर्य और आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति के माध्यम रहे हैं, धीरे-धीरे सामाजिक यथार्थ और वंचित समुदायों के अनुभवों को स्वर देने लगे हैं। लोक-धुनों, सरल भाषा और भावनात्मक संप्रेषण-क्षमता के कारण गीत और ग़ज़ल व्यापक जनसमुदाय तक पहुँचने में सक्षम विधाएँ हैं। हिन्दी गीत और ग़ज़ल में आदिवासी संवेदना का स्वरूप बहुआयामी है। इसमें एक ओर लोक-संस्कृति और सामूहिक जीवन-बोध की झलक मिलती है, तो दूसरी ओर प्रकृति-विनाश, विस्थापन और शोषण के विरुद्ध प्रतिरोध की चेतना भी मुखर होती है। जंगल, नदी और धरती जैसे प्रतीक यहाँ सौंदर्य-बिंब मात्र न रहकर आदिवासी अस्मिता और संघर्ष के सशक्त प्रतीक

ISSN : 2581-8848

बन जाते हैं। यह साहित्यिक अभिव्यक्ति आदिवासी जीवन की करुणा, पीड़ा और संघर्ष को मानवीय संवेदना के स्तर पर प्रस्तुत करती है।

प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य हिन्दी गीत और ग़ज़ल के माध्यम से अभिव्यक्त आदिवासी संवेदना का विश्लेषण करना है, जिसमें लोक, प्रकृति और संघर्ष को केन्द्रीय बिंदुओं के रूप में ग्रहण किया गया है। यह अध्ययन यह समझने का प्रयास करता है कि किस प्रकार मुख्यधारा की काव्य-विधाएँ आदिवासी जीवन-बोध को आत्मसात करती हैं और किस सीमा तक वे सामाजिक न्याय, सांस्कृतिक विविधता और समावेशी चेतना को सुदृढ़ करती हैं। इस प्रकार यह शोध आदिवासी विमर्श को हिन्दी गीत और ग़ज़ल के संदर्भ में पुनर्परिभाषित करने का एक अकादमिक प्रयास है।

आदिवासी विमर्श: वैचारिक पृष्ठभूमि:

आदिवासी विमर्श आधुनिक भारतीय साहित्य और सामाजिक चिंतन का एक महत्त्वपूर्ण वैचारिक आयाम है, जिसका उद्देश्य आदिवासी समाज को हाशिए की वस्तु के रूप में नहीं, बल्कि इतिहास, संस्कृति और सत्ता-संबंधों के सक्रिय कर्ता के रूप में स्थापित करना है। आदिवासी समाज भारतीय सभ्यता की प्राचीनतम सांस्कृतिक परतों का प्रतिनिधित्व करता है, किंतु ऐतिहासिक रूप से उसे मुख्यधारा इतिहास और साहित्य में या तो उपेक्षित किया गया या विकृत रूप में प्रस्तुत किया गया। इसी पृष्ठभूमि में आदिवासी विमर्श एक प्रतिरोधात्मक चेतना के रूप में उभरता है। आदिवासी विमर्श का मूल सरोकार अस्मिता, स्वायत्तता, सांस्कृतिक अधिकार और सामाजिक न्याय से जुड़ा है। वंदना टेटे के अनुसार, “आदिवासी विमर्श केवल सहानुभूति का प्रश्न नहीं, बल्कि अपनी इतिहास-दृष्टि, अपनी भाषा और अपनी सांस्कृतिक सत्ता को पुनः प्राप्त करने का संघर्ष है” (टेटे, 2014)। यह विमर्श आदिवासियों को ‘देखे जाने वाले’ समुदाय से ‘बोलने वाले’ समुदाय में रूपांतरित करने की प्रक्रिया है।

औपनिवेशिक काल में आदिवासी समाज को ‘पिछड़ा’, ‘असभ्य’ या ‘वनवासी’ जैसे शब्दों से चिह्नित किया गया, जिससे उनके ज्ञान-तंत्र और जीवन-दर्शन को हीन सिद्ध करने का प्रयास हुआ। उत्तर-औपनिवेशिक भारत में भी विकास की एकांगी अवधारणा—जैसे खनन, औद्योगीकरण और बड़े बाँध—ने आदिवासी समाज को विस्थापन और शोषण की स्थिति में धकेल दिया। वीरभारत तलवार स्पष्ट करते हैं कि “आदिवासी प्रश्न मूलतः विकास की उस अवधारणा पर सवाल है, जो मनुष्य और प्रकृति के सहजीवी संबंध को नष्ट करती है” (तलवार, 2011)। साहित्य में आदिवासी विमर्श का उदय दलित विमर्श के समानांतर हुआ, किंतु दोनों की ऐतिहासिक और सामाजिक स्थितियाँ भिन्न हैं। जहाँ दलित विमर्श जातिगत उत्पीड़न के विरुद्ध संघर्ष का स्वर है, वहीं आदिवासी विमर्श भूमि, जंगल और सांस्कृतिक स्वायत्तता के प्रश्नों को केंद्र में रखता है। महादेव टोप्पो के अनुसार, “आदिवासी विमर्श का केंद्रीय बिंदु जल-जंगल-ज़मीन है, क्योंकि यही आदिवासी अस्तित्व की आधारशिला है” (टोप्पो, 2010)।

हिन्दी साहित्य में प्रारंभिक दौर में आदिवासी जीवन को रोमानी या करुणा-प्रधान दृष्टि से देखा गया, परंतु समकालीन विमर्श इस दृष्टि को अपर्याप्त मानता है। यह विमर्श साहित्य से अपेक्षा करता है कि वह आदिवासी जीवन को बाहरी दृष्टि से नहीं, बल्कि उनके अनुभवों और दृष्टिकोण से प्रस्तुत करे। गजानन माधव मुक्तिबोध के शब्दों में, “सच्चा साहित्य वही है जो जीवन के अंधेरे कोनों तक पहुँचने का साहस करता है”—और आदिवासी विमर्श इसी साहस की मांग करता है। इस प्रकार आदिवासी विमर्श एक वैचारिक हस्तक्षेप है, जो इतिहास, समाज और साहित्य—तीनों स्तरों पर आदिवासी चेतना को पुनर्स्थापित करने का प्रयास करता है। हिन्दी गीत और ग़ज़ल में जब यह विमर्श अभिव्यक्त होता है, तो वह केवल साहित्यिक संवेदना नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा भी बन जाता है।

लोक-संस्कृति और आदिवासी जीवन:

आदिवासी समाज की जीवन-पद्धति को समझने के लिए लोक-संस्कृति उसका सबसे सशक्त और विश्वसनीय माध्यम है। लोक-संस्कृति केवल मनोरंजन या परंपरा का रूप नहीं, बल्कि आदिवासी समाज की सामूहिक चेतना, जीवन-दर्शन और ऐतिहासिक अनुभवों की अभिव्यक्ति है। आदिवासी जीवन में लोकगीत, लोकनृत्य, लोककथाएँ, मिथक, पर्व-त्योहार और अनुष्ठान सामाजिक एकता और सांस्कृतिक निरंतरता के वाहक हैं। इस संदर्भ में महादेव टोप्पो का कथन उल्लेखनीय है— “आदिवासी लोक-संस्कृति उनके जीवन का अनुष्ठानिक रूप नहीं, बल्कि उनका जीवित इतिहास है” (टोप्पो, 2010)। लोक-संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता उसकी सामूहिकता है। आदिवासी समाज में व्यक्ति की पहचान समुदाय से पृथक नहीं होती। गीत, नृत्य और पर्व सामूहिक श्रम, सामूहिक आनंद और सामूहिक दुःख की अभिव्यक्ति हैं। वंदना टेटे स्पष्ट करती हैं कि “आदिवासी लोकगीतों में ‘मैं’ नहीं, ‘हम’ बोलता है; यही उनकी सामाजिक दृष्टि की मूल संरचना है” (टेटे, 2014)। यह सामूहिक चेतना आधुनिक व्यक्तिवादी संस्कृति के विपरीत एक वैकल्पिक जीवन-मूल्य प्रस्तुत करती है।

आदिवासी लोक-संस्कृति का प्रकृति से गहरा और आत्मीय संबंध है। जंगल, नदी, पहाड़, पशु-पक्षी और ऋतुएँ लोकगीतों और कथाओं में जीवंत पात्रों की तरह उपस्थित रहती हैं। यह संबंध केवल उपयोगितावादी नहीं, बल्कि सहजीवी और नैतिक है। वीरभारत तलवार के अनुसार, "आदिवासी लोक-संस्कृति में प्रकृति संसाधन नहीं, बल्कि संबंध है" (तलवार, 2011)। यही कारण है कि आदिवासी जीवन में पर्यावरण-विनाश को सांस्कृतिक विनाश के रूप में देखा जाता है। हिन्दी गीतों और ग़ज़लों में जब लोक-संस्कृति का समावेश होता है, तो वह आदिवासी जीवन की इसी सहजीवी दृष्टि को अभिव्यक्त करता है। लोक-धुनों, सरल शब्दावली और प्रतीकात्मक बिंबों के माध्यम से गीत आदिवासी जीवन की सहजता, श्रमशीलता और संघर्षशीलता को स्वर देते हैं। यह लोक-तत्त्व हिन्दी गीतों को जनसाधारण से जोड़ता है और आदिवासी संवेदना को व्यापक सामाजिक संदर्भ प्रदान करता है।

आधुनिकता और बाज़ारवाद के प्रभाव से आदिवासी लोक-संस्कृति संकटग्रस्त हुई है। विस्थापन, शहरीकरण और मीडिया-संस्कृति ने लोकजीवन की निरंतरता को बाधित किया है। इस संदर्भ में गजानन माधव मुक्तिबोध का कथन सार्थक है— "जब संस्कृति का संबंध जीवन से टूटता है, तब वह केवल सजावट बनकर रह जाती है"। समकालीन साहित्य में लोक-संस्कृति की पुनर्स्थापना इसी टूटन के प्रतिरोध का प्रयास है। इस प्रकार लोक-संस्कृति आदिवासी जीवन की आत्मा है, जो उनके सामाजिक संगठन, प्रकृति-बोध और संघर्ष-चेतना को अभिव्यक्त करती है। हिन्दी गीत और ग़ज़ल में लोक-तत्त्वों की उपस्थिति आदिवासी जीवन को केवल विषय नहीं बनाती, बल्कि उसे एक जीवंत सांस्कृतिक अनुभव के रूप में प्रस्तुत करती है। यही लोक-संस्कृति आदिवासी विमर्श को भावनात्मक गहराई और सामाजिक प्रामाणिकता प्रदान करती है।

प्रकृति-बोध और आदिवासी संवेदना:

आदिवासी जीवन-दृष्टि में प्रकृति केवल भौतिक संसाधन नहीं, बल्कि जीवन की सहचर और सांस्कृतिक सत्ता है। आदिवासी समाज का अस्तित्व जंगल, नदी, पर्वत और भूमि के साथ एक सहजीवी संबंध पर आधारित रहा है। यही कारण है कि आदिवासी संवेदना में प्रकृति का स्थान केन्द्रीय है और उसकी अभिव्यक्ति साहित्य में एक विशिष्ट रूप ग्रहण करती है। वेरियर एल्विन के शब्दों में, "आदिवासी जीवन को समझने का अर्थ है प्रकृति के साथ उनके आत्मीय संबंध को समझना" (Elwin, 1943)। आदिवासी समाज में प्रकृति केवल बाहरी संसार नहीं, बल्कि आंतरिक अनुभूति का विस्तार है। जंगल सुरक्षा, आजीविका और आध्यात्मिक शांति का प्रतीक है; नदी जीवन और निरंतरता का संकेतक है; और भूमि पहचान तथा अस्मिता का आधार है। वंदना टेटे का कथन इस संदर्भ में महत्वपूर्ण है— "आदिवासी संवेदना में प्रकृति का विनाश स्वयं के अस्तित्व पर आघात है" (टेटे, 2014)। यही संवेदना हिन्दी गीतों और ग़ज़लों में प्रकृति-बिंबों को नया अर्थ प्रदान करती है।

हिन्दी गीत परंपरा में प्रकृति का प्रयोग लंबे समय से सौंदर्य-बोध के लिए होता रहा है, किंतु आदिवासी संदर्भ में यह प्रयोग सामाजिक और वैचारिक अर्थ ग्रहण कर लेता है। जंगल और पहाड़ केवल रमणीय स्थल नहीं, बल्कि विस्थापन, शोषण और प्रतिरोध के साक्षी बन जाते हैं। समकालीन गीतों में धरती 'माँ' के रूप में नहीं, बल्कि अधिकार और संघर्ष के प्रतीक के रूप में उभरती है। वीरभारत तलवार के अनुसार, "आदिवासी प्रकृति-बोध रोमानी नहीं, ऐतिहासिक और संघर्षशील है" (तलवार, 2011)। ग़ज़ल परंपरा में भी प्रकृति-बोध का स्वरूप बदला है। पारंपरिक ग़ज़लों में जहाँ गुल, सहर, चाँद और गुलशन जैसे प्रतीक प्रेम और सौंदर्य के वाहक थे, वहीं समकालीन ग़ज़लों में जंगल, नदी और मिट्टी जैसे बिंब सामाजिक यथार्थ से जुड़ते हैं। यह परिवर्तन ग़ज़ल को सामाजिक विमर्श से जोड़ता है और आदिवासी संवेदना को वैचारिक गहराई प्रदान करता है। गजानन माधव मुक्तिबोध का यह कथन यहाँ प्रासंगिक है— "प्रकृति का सही चित्रण वही है, जो मनुष्य के सामाजिक सत्य को उद्घाटित करे।"

आधुनिक विकास-परियोजनाओं—खनन, बाँध और औद्योगीकरण—ने आदिवासी समाज के प्रकृति-संबंध को गहरे संकट में डाल दिया है। साहित्य में प्रकृति-विनाश की यह पीड़ा केवल पर्यावरणीय चिंता नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और मानवीय संकट की अभिव्यक्ति है। वेरियर एल्विन ने बहुत पहले चेताया था कि "जब जंगल उजड़ते हैं, तब केवल पेड़ नहीं, एक पूरी संस्कृति उजड़ जाती है" (Elwin, 1943)। इस प्रकार प्रकृति-बोध आदिवासी संवेदना का मूल आधार है। हिन्दी गीत और ग़ज़ल में प्रकृति-बिंब आदिवासी जीवन की पीड़ा, संघर्ष और अस्मिता को स्वर देते हैं। यह साहित्यिक अभिव्यक्ति न केवल सौंदर्य-बोध को विस्तृत करती है, बल्कि सामाजिक न्याय और पर्यावरणीय चेतना के प्रति पाठक को संवेदनशील भी बनाती है।

संघर्ष, प्रतिरोध और अस्मिता:

आदिवासी समाज का इतिहास संघर्ष, प्रतिरोध और अस्मिता की निरंतर प्रक्रिया का इतिहास है। भूमि, जंगल और जल पर अधिकार के प्रश्न ने आदिवासी जीवन को सदैव संघर्षशील बनाए रखा है। औपनिवेशिक काल से लेकर उत्तर-औपनिवेशिक

आधुनिक राज्य तक, आदिवासी समाज को विस्थापन, शोषण और सांस्कृतिक दमन का सामना करना पड़ा है। इस ऐतिहासिक अनुभव ने आदिवासी चेतना में प्रतिरोध को एक स्थायी मूल्य के रूप में स्थापित किया है। महादेव टोप्पो के शब्दों में, "आदिवासी जीवन में संघर्ष कोई आकस्मिक स्थिति नहीं, बल्कि अस्तित्व की शर्त है" (टोप्पो, 2010)। संघर्ष की यह चेतना साहित्य में केवल करुणा या पीड़ा के रूप में नहीं, बल्कि प्रतिरोध की सक्रिय भावना के रूप में अभिव्यक्त होती है। आदिवासी विमर्श साहित्य से यह अपेक्षा करता है कि वह शोषण के यथार्थ को उजागर करने के साथ-साथ प्रतिरोध की संभावनाओं को भी रेखांकित करे। वंदना टेटे स्पष्ट करती हैं कि "आदिवासी साहित्य पीड़ित होने की कथा नहीं, बल्कि संघर्ष करते हुए जीवित रहने की घोषणा है" (टेटे, 2014)। यही दृष्टि हिन्दी गीत और ग़ज़ल में आदिवासी संवेदना को वैचारिक दृढ़ता प्रदान करती है।

हिन्दी गीतों में संघर्ष और प्रतिरोध प्रायः सामूहिक स्वर में व्यक्त होते हैं। लोकधुनों और सरल भाषा के माध्यम से गीत विस्थापन, श्रम-शोषण और सत्ता-हिंसा के विरुद्ध आवाज़ उठाते हैं। गीत का 'हम' आदिवासी समुदाय की सामूहिक अस्मिता का प्रतिनिधित्व करता है। यह सामूहिक स्वर आदिवासी जीवन की मूल संरचना को प्रतिबिंबित करता है, जहाँ व्यक्तिगत पीड़ा भी सामूहिक अनुभव बन जाती है। ग़ज़ल परंपरा में संघर्ष और प्रतिरोध की अभिव्यक्ति अपेक्षाकृत प्रतीकात्मक और व्यंग्यात्मक होती है। ग़ज़ल का 'मैं' जब सामाजिक यथार्थ से जुड़ता है, तो वह व्यक्तिगत वेदना से आगे बढ़कर सामूहिक प्रतिरोध का स्वर बन जाता है। समकालीन ग़ज़लों में सत्ता, बाज़ार और विकास की आलोचना के माध्यम से आदिवासी अस्मिता के प्रश्न को उठाया गया है। वीरभारत तलवार के अनुसार, "ग़ज़ल की शक्ति उसकी प्रतीकात्मकता में है, जो दमन के विरुद्ध प्रतिरोध को कलात्मक रूप देती है" (तलवार, 2011)।

आदिवासी अस्मिता संघर्ष और प्रतिरोध से ही निर्मित होती है। यह अस्मिता केवल सांस्कृतिक पहचान तक सीमित नहीं, बल्कि राजनीतिक और सामाजिक अधिकारों की चेतना से भी जुड़ी हुई है। साहित्य में जब आदिवासी अस्मिता मुखर होती है, तो वह मुख्यधारा की एकांगी राष्ट्रवादी और विकासवादी अवधारणाओं को चुनौती देती है। गजानन माधव मुक्तिबोध का कथन यहाँ प्रासंगिक है— "साहित्य का काम सत्ता की सुविधा नहीं, बल्कि सत्य की खोज है।" आदिवासी विमर्श इसी सत्य की खोज का साहित्यिक रूप है। इस प्रकार हिन्दी गीत और ग़ज़ल में संघर्ष, प्रतिरोध और अस्मिता की अभिव्यक्ति आदिवासी संवेदना को करुणा के दायरे से बाहर निकालकर वैचारिक और सामाजिक हस्तक्षेप में परिवर्तित करती है। यह साहित्य न केवल आदिवासी समाज की पीड़ा को दर्ज करता है, बल्कि उनके संघर्ष को गरिमा और अर्थ प्रदान करता है। परिणामस्वरूप, हिन्दी गीत और ग़ज़ल आदिवासी विमर्श को व्यापक समाज के समक्ष प्रस्तुत करने का सशक्त माध्यम बनते हैं।

हिन्दी गीत और ग़ज़ल: शिल्प और संवेदना:

हिन्दी गीत और ग़ज़ल काव्य की ऐसी विधाएँ हैं, जिनकी पहचान उनकी लयात्मकता, संप्रेषणीयता और भावात्मक गहनता से होती है। दोनों विधाएँ अपने-अपने शिल्पगत स्वरूप में भिन्न होते हुए भी मानवीय संवेदना की अभिव्यक्ति में समान रूप से सक्षम हैं। आदिवासी विमर्श के संदर्भ में हिन्दी गीत और ग़ज़ल का महत्व इसलिए भी बढ़ जाता है, क्योंकि ये विधाएँ लोक-जीवन से निकटता रखते हुए हाशिए पर स्थित समाजों की पीड़ा, संघर्ष और अस्मिता को व्यापक पाठक और श्रोता-वर्ग तक पहुँचाने का सामर्थ्य रखती हैं। हिन्दी गीत का शिल्प लोकधुनों, सरल शब्दावली और भावात्मक प्रवाह पर आधारित होता है। इसकी भाषा सहज, संप्रेषणीय और सामूहिक अनुभूति से जुड़ी होती है। आदिवासी संवेदना की अभिव्यक्ति के लिए यह शिल्प विशेष रूप से अनुकूल है, क्योंकि आदिवासी जीवन स्वयं लोक-संस्कृति और सामूहिक चेतना पर आधारित है। भोलानाथ तिवारी का मत है कि "हिन्दी गीत की शक्ति उसकी लोक-निकटता में निहित है, जो उसे जनता की संवेदना से जोड़ती है" (तिवारी, 2015)। आदिवासी संदर्भ में गीत विस्थापन, श्रम और संघर्ष की अनुभूतियों को सहज और प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करता है।

इसके विपरीत, ग़ज़ल का शिल्प अधिक अनुशासित और संरचनात्मक होता है। बहर, क़ाफ़िया और रदीफ़ जैसी तकनीकी विशेषताएँ ग़ज़ल को एक विशिष्ट काव्य-रूप प्रदान करती हैं। परंपरागत रूप से ग़ज़ल प्रेम और आत्मानुभूति की विधा मानी जाती रही है, किंतु समकालीन हिन्दी ग़ज़ल ने सामाजिक यथार्थ और राजनीतिक प्रश्नों को अपने कथ्य में सम्मिलित किया है। आदिवासी विमर्श के संदर्भ में ग़ज़ल की प्रतीकात्मक भाषा और व्यंग्यात्मक स्वर विशेष महत्त्व रखते हैं। वीरभारत तलवार के अनुसार, "समकालीन ग़ज़ल ने निजी पीड़ा को सामाजिक सच में रूपांतरित करने की क्षमता अर्जित की है" (तलवार, 2011)। संवेदना के स्तर पर गीत और ग़ज़ल में एक मौलिक अंतर दिखाई देता है। गीत की संवेदना सामूहिक और प्रत्यक्ष होती है, जबकि ग़ज़ल की संवेदना आत्मगत होते हुए भी संकेतात्मक और बहुअर्थी होती है। आदिवासी संवेदना जब गीत में व्यक्त होती है, तो वह समुदाय की सामूहिक पीड़ा और आशा का स्वर बन जाती है; वहीं ग़ज़ल में वही संवेदना बिंबों और प्रतीकों के माध्यम से

वैचारिक गहराई प्राप्त करती है। गजानन माधव मुक्तिबोध का यह कथन यहाँ प्रासंगिक है— "कविता की सच्ची संवेदना वही है, जो व्यक्ति से समाज तक की यात्रा करे।"

हिन्दी गीत और ग़ज़ल दोनों ही आदिवासी विमर्श को अलग-अलग स्तरों पर सशक्त बनाते हैं। गीत भावात्मक संप्रेषण के माध्यम से सहानुभूति और चेतना का निर्माण करता है, जबकि ग़ज़ल वैचारिक हस्तक्षेप के रूप में पाठक को सोचने और प्रश्न उठाने के लिए प्रेरित करती है। इस प्रकार शिल्प और संवेदना का यह द्वंद्व नहीं, बल्कि पूरक संबंध है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि हिन्दी गीत और ग़ज़ल का शिल्प आदिवासी संवेदना को केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि सामाजिक संवाद का रूप प्रदान करता है। दोनों विधाएँ मिलकर आदिवासी जीवन की पीड़ा, संघर्ष और अस्मिता को मुख्यधारा साहित्य में एक सशक्त और अर्थपूर्ण स्थान दिलाती हैं।

समकालीन परिप्रेक्ष्य:

इक्कीसवीं सदी का समकालीन दौर भारतीय समाज में तीव्र सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों का साक्षी है। वैश्वीकरण, उदारीकरण और निजीकरण की नीतियों ने विकास की नई अवधारणाएँ प्रस्तुत की हैं, किंतु इन नीतियों का प्रभाव समाज के सभी वर्गों पर समान रूप से नहीं पड़ा है। आदिवासी समाज इस असमान विकास का सबसे अधिक प्रभावित वर्ग रहा है। भूमि अधिग्रहण, खनन परियोजनाएँ, औद्योगिक विस्तार और पर्यावरणीय विनाश ने आदिवासी जीवन की आधारशिला को संकट में डाल दिया है। इस पृष्ठभूमि में समकालीन साहित्य, विशेषतः हिन्दी गीत और ग़ज़ल, आदिवासी प्रश्नों को नए वैचारिक संदर्भों में प्रस्तुत करता है। समकालीन हिन्दी गीतों में आदिवासी जीवन की समस्याएँ—विस्थापन, बेरोज़गारी, सांस्कृतिक विघटन और पहचान का संकट—अधिक स्पष्टता के साथ उभरती हैं। आज का गीत केवल भावुकता तक सीमित नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना का माध्यम बन चुका है। लोकधुनों के साथ-साथ आधुनिक संगीतात्मक प्रयोग गीतों को नई पीढ़ी से जोड़ते हैं, जिससे आदिवासी संवेदना व्यापक श्रोतावर्ग तक पहुँचती है। इस संदर्भ में यह कहना उचित है कि समकालीन गीत आदिवासी विमर्श को लोकप्रिय संस्कृति के क्षेत्र में स्थापित करने का कार्य कर रहा है।

समकालीन हिन्दी ग़ज़ल भी सामाजिक और राजनीतिक हस्तक्षेप का सशक्त माध्यम बनकर उभरी है। आज की ग़ज़ल में सत्ता, बाज़ार और विकास की आलोचना के स्वर अधिक मुखर हैं। प्रतीकात्मक भाषा के माध्यम से ग़ज़लकार आदिवासी समाज के संघर्ष और अस्मिता-संकट को अभिव्यक्त करते हैं। ग़ज़ल का पारंपरिक 'मैं' अब सामाजिक 'हम' में परिवर्तित होता दिखाई देता है, जो आदिवासी संवेदना को सामूहिक स्वर प्रदान करता है। यह परिवर्तन ग़ज़ल को समकालीन विमर्श से गहरे स्तर पर जोड़ता है। समकालीन परिप्रेक्ष्य में पर्यावरणीय संकट एक केंद्रीय मुद्दा बनकर उभरा है। जलवायु परिवर्तन, वनों की कटाई और प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन ने आदिवासी जीवन को गंभीर रूप से प्रभावित किया है। हिन्दी गीत और ग़ज़ल में प्रकृति-विनाश की यह पीड़ा केवल पर्यावरणीय चिंता नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और मानवीय संकट के रूप में व्यक्त होती है। इस प्रकार समकालीन साहित्य आदिवासी विमर्श को पर्यावरणीय विमर्श से जोड़कर एक व्यापक मानवीय संदर्भ प्रस्तुत करता है।

डिजिटल मीडिया और सोशल प्लेटफ़ॉर्म ने भी समकालीन परिदृश्य को प्रभावित किया है। आज गीत और ग़ज़ल केवल मुद्रित माध्यमों तक सीमित नहीं, बल्कि यूट्यूब, सोशल मीडिया और डिजिटल मंचों के माध्यम से तेजी से प्रसारित हो रहे हैं। इससे आदिवासी संवेदना को नई दृश्यता और अभिव्यक्ति के नए रूप प्राप्त हुए हैं। हालाँकि बाज़ारीकरण का खतरा भी मौजूद है, फिर भी यह माध्यम आदिवासी आवाज़ को मुख्यधारा समाज तक पहुँचाने की संभावनाएँ प्रदान करता है। समकालीन परिप्रेक्ष्य में हिन्दी गीत और ग़ज़ल आदिवासी विमर्श के सशक्त वाहक के रूप में उभरते हैं। वे न केवल आदिवासी समाज की समस्याओं को रेखांकित करते हैं, बल्कि सामाजिक न्याय, पर्यावरणीय चेतना और सांस्कृतिक बहुलता के पक्ष में वैचारिक हस्तक्षेप भी करते हैं। इस प्रकार समकालीन साहित्य आदिवासी संवेदना को वर्तमान समय के प्रश्नों से जोड़कर उसे अधिक प्रासंगिक और प्रभावशाली बनाता है।

निष्कर्ष:

प्रस्तुत शोध-पत्र "लोक, प्रकृति और संघर्ष: हिन्दी गीत और ग़ज़ल में आदिवासी संवेदना" के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि हिन्दी गीत और ग़ज़ल जैसी लोकप्रिय और लयात्मक काव्य-विधाएँ आदिवासी जीवन-बोध, सांस्कृतिक चेतना और सामाजिक संघर्ष की अभिव्यक्ति के लिए अत्यंत सशक्त माध्यम सिद्ध हुई हैं। आदिवासी विमर्श के संदर्भ में यह अध्ययन स्थापित करता है कि लोक-संस्कृति, प्रकृति-बोध और संघर्ष-चेतना केवल विषय-वस्तु नहीं, बल्कि आदिवासी संवेदना की मूल संरचना हैं, जिन्हें गीत और ग़ज़ल ने अपने शिल्प में आत्मसात किया है। लोक-संस्कृति आदिवासी समाज की सामूहिक स्मृति और जीवन-

ISSN : 2581-8848

दर्शन की वाहक है। हिन्दी गीतों में लोक-तत्त्वों की उपस्थिति आदिवासी जीवन की सहजता, सामूहिकता और श्रमशीलता को अभिव्यक्त करती है, वहीं ग़ज़ल में लोक-संवेदना प्रतीकात्मक और वैचारिक रूप ग्रहण करती है। इस प्रकार लोक-संस्कृति साहित्य में केवल सांस्कृतिक विरासत के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना के सक्रिय घटक के रूप में उभरती है। यह अध्ययन दर्शाता है कि लोक-तत्त्वों के माध्यम से गीत और ग़ज़ल आदिवासी जीवन को भावनात्मक गहराई और सामाजिक प्रामाणिकता प्रदान करते हैं।

प्रकृति-बोध आदिवासी संवेदना का केन्द्रीय आधार है। जंगल, नदी, पर्वत और भूमि हिन्दी गीत और ग़ज़ल में केवल सौंदर्य-बिंब नहीं रह जाते, बल्कि अस्तित्व, अस्मिता और प्रतिरोध के प्रतीक बनकर उभरते हैं। आधुनिक विकास-नीतियों और पर्यावरणीय संकटों के संदर्भ में यह प्रकृति-बोध एक वैचारिक हस्तक्षेप का रूप ले लेता है। साहित्य के माध्यम से प्रकृति-विनाश के प्रति जो संवेदनशीलता उत्पन्न होती है, वह आदिवासी समाज की पीड़ा को व्यापक मानवीय संदर्भ से जोड़ती है। संघर्ष और प्रतिरोध की चेतना इस अध्ययन का एक महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष है। हिन्दी गीत और ग़ज़ल में आदिवासी संघर्ष करुणा की सीमा से आगे बढ़कर सामाजिक न्याय और अधिकार की मांग के रूप में प्रस्तुत होता है। गीत का सामूहिक स्वर और ग़ज़ल की प्रतीकात्मक भाषा मिलकर आदिवासी अस्मिता को गरिमा और दृढ़ता प्रदान करती हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि साहित्य केवल यथार्थ का प्रतिबिंब नहीं, बल्कि परिवर्तन की आकांक्षा का माध्यम भी है। समकालीन परिप्रेक्ष्य में यह शोध यह भी दर्शाता है कि वैश्वीकरण, बाज़ारवाद और डिजिटल माध्यमों के विस्तार ने आदिवासी विमर्श को नई चुनौतियाँ और नई संभावनाएँ प्रदान की हैं। हिन्दी गीत और ग़ज़ल आज केवल साहित्यिक विधाएँ नहीं, बल्कि सामाजिक संवाद के प्रभावशाली उपकरण बन चुके हैं। हालाँकि मुख्यधारा साहित्य में आदिवासी दृष्टि की सीमाएँ अभी भी विद्यमान हैं, फिर भी गीत और ग़ज़ल के माध्यम से आदिवासी संवेदना को व्यापक समाज तक पहुँचाने की संभावनाएँ निरंतर बढ़ रही हैं। कहा जा सकता है कि हिन्दी गीत और ग़ज़ल में अभिव्यक्त आदिवासी संवेदना सामाजिक न्याय, सांस्कृतिक बहुलता और मानवीय मूल्यों के पुनर्स्थापन की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक हस्तक्षेप है। यह अध्ययन भविष्य के शोध के लिए यह संकेत देता है कि आदिवासी विमर्श को केवल विषय के रूप में नहीं, बल्कि दृष्टि और पद्धति के रूप में अपनाए जाने की आवश्यकता है, ताकि साहित्य अधिक समावेशी, संवेदनशील और सामाजिक रूप से उत्तरदायी बन सके।

संदर्भ सूची:

टेटे, वंदना. (2014). आदिवासी साहित्य: विमर्श और दृष्टि. नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन।

टोप्पो, महादेव. (2010). आदिवासी दर्शन और साहित्य. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन।

तलवार, वीरभारत. (2011). साहित्य और समाज. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।

तिवारी, भोलानाथ. (2015). हिन्दी गीत परंपरा. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।

मुक्तिबोध, गजानन माधव. (2012). एक साहित्यिक की डायरी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।

शुक्ल, रामचन्द्र. (2012). हिन्दी साहित्य का इतिहास. वाराणसी: नागरी प्रचारिणी सभा।

हंस, राजेन्द्र यादव (संपा.). (2003). हाशिये का साहित्य: विमर्श और चुनौती. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।

Elwin, V. (1943). The Aboriginals. Bombay: Oxford University Press.

Xaxa, V. (2008). State, Society and Tribes: Issues in Post-Colonial India. New Delhi: Pearson Longman.

Ekka, J. (2016). Adivasi Literature and Cultural Identity. New Delhi: Orient Black swan.

Guha, R. (1989). The Unquiet Woods: Ecological Change and Peasant Resistance in the Himalaya. Delhi: Oxford University Press.

Xaxa, V. (1999). Tribes as indigenous people of India. Economic and Political Weekly, 34(51), 3589–3595.

Guha, R. (2000). Environmentalism: A global history. Social Scientist, 28(7–8), 3–21.

*****

ISSN : 2581-8848

हिंदी सिनेमा एवं गजल एक परिदृश्य

प्रो.डॉ.अजयकुमार कृष्णा कांबळे
अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
कला, वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय
कोवाड,तहसिल-चंदगड,जि.कोल्हापुर,
मोबा.9421114709

सारांश –

हिंदी सिनेमा की गजलों में प्रेम, सौंदर्य एवं यौवन की सुकोमल तथा मधुर अभिव्यक्ति मिलती है। यही गजलें जनसामान्य को आकर्षित करके उनके दिलो- दिमाग पर प्रभाव डालती है। स्वर्गीय कुंदनलाल सहगल जी को गजल को जनसामान्य तक पहूँचाने का श्रेय जाता है। कहरवा, दादरा, रूपक तथा पश्तो आदि तालों ने गजल का रूप निखर दिया। साहिर लुधियानवी, हसरत जयपुरी, शकील बदायुनी, राजेंद्र कृष्ण, राजा मेहंदी अली खान, कमर जलालाबादी तथा कैफी आजमी आदि गजलकारों ने गजलों को समृद्ध बनाया। शंकर जयकिशन, नौशाद, मदनमोहन, कल्याणजी- आनंदजी, रवि तथा लक्ष्मीकांत प्यारेलाल आदि संगीतकारों ने अपने मनमोहक धूनों से गजल को संगीतबद्ध किया । साथ ही कुंदनलाल सहगल, नूरजहाँ , शमशाद बेगम, सुरैया, लता मंगेशकर, बेगम अख्तर, खुर्शीद, मुहम्मद रफी, तलत महमूद, मन्नाडे , मुकेश, आशा भोंसले, तथा जगजीत सिंह आदि महान गायकों ने गजल को अपनी आवाज के जरिए चार चाँद लगाये। गजलों के सजीव, शाश्वत संगीत ने बडी मात्रा में लोकप्रियता को हासिल किया । इनके गायन में मार्मिक अभिव्यक्ति होती थी फलस्वरूप श्रोताओं के दिलों में इनकी आवाज गहरी उतरती थी। परवर्ती काल में भी 'उमराव जान', 'निकाह'आदि सिनेमा में गजलों का स्तरीय रूप दृष्ट्यव्य होता है। हिंदी सिनेमा की गजलों में प्रेम, सौंदर्य, विरह, समर्पण तथा त्याग आदि भावों की तीव्र अनुभूति दृष्टिगोचर होती है।

बीज शब्द- गजल, महफिल, कहरवा, दादरा, आलमआरा, नौनिहाल, जहाँआरा, अंजुमन, अरमाँ, तनहाई, शायराना, शानो-शौकत तथा इनायत आदि

प्रस्तावना:

एक लोकप्रिय काव्य विधा के रूप में गजल का नाम लिया जाता है लेकिन वह गायन की एक सुमधूर शैली भी मानी जाती है उर्दू एवं फारसी भाषा की संपन्नता को विभूषित करने के पश्चात हिंदी में अपने सौंदर्य, प्रेम एवं यौवन की सरल तथा चरम अभिव्यक्ति बन गई। सुकोमल तथा मृदुल भावों के उत्कट अविष्कार के रूप में भी गजल ने अमिट छाप छोडी है। गझल की यही लोकप्रियता सिनेमा का अभिन्न अंग नहीं बनती तो आश्चर्य हो जाता। संगीत के मधूर तथा मोहक स्वरों का संगम गजल में देखा जा सकता है इसका सीधा प्रवाह जनमानस पर पडा हुआ है । मनुष्य स्वभाव से ही माधूर्य, प्रेम तथा सौंदर्य का उपासक रहा है मनुष्य के हर्ष एवं अवसाद में, गरीबी तथा अभाव में गजल की स्वरलहरियों ने उसे शांति के असीम पल प्रदान किए हैं। एक समय था जब गजल दरबारों कथा महफिलों की शान हुआ करती थी। मदिरा और सुंदरियों की प्रेमपरक अनुभूतियों से ओतप्रोत गजल गायिकाओं के कोकिल कंठ से निकलकर जनसामान्य को आकर्षित करती रही परिणामस्वरूप भारतीय सिनेमा में गजल को महत्व देते हुए, उसके रूप के द्वारा जनसामान्य को मोहित करते हुए लोगों के दिलो- दिमाग में अपना आकर्षण भर दिया था । एक दौर ऐसा भी आया जब गजल हिंदी सिनेमा का महत्वपूर्ण तथा प्रमुख अंग बन गया।

स्व कुंदनलाल सहगल जी को गजल गायन को जनसामान्य तक पहूँचाने का श्रेय दिया जाता है उन्होने गजल गायन को एक नई दिशा एवं शैली प्रदान करने का काम ग्रामोफोन रेकॉर्ड के द्वारा किया है। सहगल जी की गायन शैली में पंजाब का रंगीलापन, बंगाल का भोलापन और अयोध्या का संध्या सौंदर्य आदि का मिला- जुला रूप दृष्टव्य होता है । गजलकार मीर की सरलता तथा मिर्जा गालिब की गंभीरता के दर्शन उनकी गजलों में मिलते हैं। गजल गायन के क्षेत्र में उनके परवर्ती गजलकारों के लिए नई-नई संभावनाओं के द्वारउन्होने खोले हैं। डॉ. रोहिताश्व अस्थाना कहते है,"संगीत के क्षेत्र में गजलों की बढती हुई लोकप्रियता ने चलचित्र-जगत को अपनी ओर आकर्षित किया। संगीत निर्देशकों, गजलकारों तथा सिने गायकों ने इस क्षेत्र में पदार्पण करके सिने-गीतों के साथ- साथ गजलों को भी स्थान देना आरंभ किया। कहरवा, दादरा, रूपक और पश्तो जैसी चपल तथा सरल तालों में गाये जाने के कारण हिंदी चलचित्रों में गजल का रूप निखरा तो निखरता ही चला गया। "1

 ISSN : 2581-8848

यहाँ स्पष्ट होता है कि चलचित्र में गाई गई गजलों ने लोकप्रियता हासिल करके संगीत निर्देशकों तथा नये गायक-गायिकाओं को सिनेमा के क्षेत्र में कदम रखने के लिए बडी मात्रा में आकर्षित किया। सिनेमा में गाये- गये विभिन्न तालों के कारण गजल का रूप दिन-ब-दिन निखरता ही चला गया।

हिंदी सिनेमा जगत में राजा मेहंदी अली खाँ, शकील बदायुनी, कमर जलालाबादी, हसरत जयपुरी, साहिर लुधियानवी, कैफी आजमी तथा राजेंद्र कृष्ण आदि गजलकारों ने हिंदी गजल को संपन्न तथा समृद्ध बनाया। जिन संगीतकारों ने गजल को स्थान देकर भारतीय सिनेमा को अमर बनाया वे शंकर जयकिशन, नौशाद, मदनमोहन कल्याणजी- आनंदजी, रवि तथा लक्ष्मीकांत प्यारेलाल प्रमुख संगीतकार माने जाते हैं। अपनी मनमोहक धूनों और मधूर स्वरों के द्वारा गजल को श्रोताओं के दिलों में उतारने का पूरा श्रेय जिन गायक-गायिकाओं हो जाता है उनमे प्रमुख हैं-कुंदनलाल सहगल, नूरजहाँ , शमशाद बेगम, सुरैया, बेगम अख्तर, खुर्शीद, लता मंगेशकर, मुकेश, मुहम्मदरफी, तलतमहमूद,मन्नाडे, आशाभोंसले, जगजीतसिंह तथा चित्रासिंह आदि।

गजल के क्षेत्र में तलत महमूद का नाम महत्वपूर्ण है क्योंकि तलत के कंठ से निकली सुमधूर गजल सुंदर एवं भावविभोर करनेवाली होती थी। नर्म और कोमल सुगंध के फूलों की महक के समान उनकी गजलें थी। उनके गायन में विरह एवं पीडा की अनुभूतियों को भी मधूरतम तथा कोमल ढंग से सीधे श्रोताओं के दिल में उतारने की अद्भुत क्षमता थी।

'आलमआरा' हिंदी सिनेमा में बोलती हुई पहली फिल्म है, जिसमें हिंदी गीतों के साथ- साथ गजलों को भी शामिल किया गया । यह फिल्म सभी मामलों में सफल हो गयी थी पर गजलों को लेकर सिनेमा ने बडी मात्रा में लोकप्रियता बटोरी । कुछ काल के पश्चात नौनिहाल, काजल, जहाँआरा, फिर बहार आई, दो बदन, ताजमहल, दिल ही तो है, ममता, चांदी की दीवार, मिर्जा गालिब, मैं नशे में हूं, अदालत, जाल, दिल्लगी, पहली नजर, लाल किला, हम दोनों, अमर, पाकीजा, दस्तक, आँखे, आदि सिनेमाओं में आई गजलों के सजीव तथा शाश्वत संगीत ने बहुत बडी लोकप्रियता प्राप्त की, इसकी देखा देखी में कुछ स्तरीय गजलों का रूप दृष्टिगोचर होता है।

हिंदी सिनेमा के लोकप्रिय शायर साहिर लुधियानवी जी ने अपने स्वाभिमान तथा शायराना अंदाज से फिल्मों की चमक-दमक तथा झूठी शानो शौकत से स्वयं को दूर रखा । ऐश्वर्य के पीछे न भागते हुए उन्होने गजल की अदब को हमेशा महत्त्व दिया । उनकी 'आँखे 'फिल्म की एक गजल ने बहुत ही लोकप्रियता हासिल की । प्रेम की कोमलतम, मार्मिकता तथा अनुभूतियों से भरी उनकी गजल जिसे रवि ने संगीतबद्ध करते हुए एक नई रसानुभूति श्रोताओं को कराई थी-

'मिलती है जिंदगी में मुहब्बत कभी- कभी ।
'होती है दिलबरों की इनायत कभी- कभी। '2

सुप्रसिद्ध गायिका लता मंगेशकर जी ने इस गजल को स्वर साज देकर चार चाँद लगाये थे ऐसा प्रतित होता है । इस गजल का शाश्वत और अमर संगीत श्रोताओं के दिलों में उतरता जाता है । गजल की वियोग से भरी तथा मार्मिक अभिव्यक्ति 'अदालत' सिनेमा के गीत जिसके गीतकार राजेंद्र कृष्ण तथा मदनमोहन के संगीत निर्देशन में लता जी की आवाज में प्रस्तुत है, जो विरह की तीव्र अनुभूति और पीडा को मुखर करता प्रतित होता है-

'उनको ये शिकायत है कि हम कुछ नहीं कहते
अपनी तो आदत है हम कुछ नहीं कहते। '3

यहाँ प्रेम की मूक संवेदना के दर्शन होते हैं । शकील बदायुनी की गजल, रवि के संगीत से सजी हुई, मुहम्मद रफी ने जिसे गाया, जो गजल' दो बदन'फिल्म का हिस्सा थी, प्रेम की असफलता पर मार्मिकता टिपणी करती है,'भरी दुनिया में आखिर दिल को समझाने कहा जाये' इसमे प्रेम की पराकाष्ठा एवं अवसाद के दर्शन होते हैं। 'जाने वाले से मुलाकात न होने पायी। ' 'अमर 'फिल्म की एक गजल, जिसके गीतकार राजेंद्र कृष्ण थे, नौशाद ने इसे संगीत से सजाया था, लता मंगेशकर जी की आवाज में विरह की पीडा को सहज ढंग मे व्यक्त किया गया है । इस गीत में श्रोताओं का हृदय लता जी की स्वर की वेदना से तादात्म्य अनुभव करता प्रतित होता है और श्रोता भी उनकी आवाज में आवाज मिलाकर गाते हुए भाव विभोर होने लगते है, इतनी क्षमता इन गजलों में दृष्टव्य होती है । इसके साथ ही 'दिल ही तो है फिल्म की रोशन के संगीत से सजी गजल 'आप दौलत के तराजू में दिल को तौले' हो चाहे 'ताजमहल' फिल्म की गजल जिसे रोशन ने संगीतबद्ध किया है, लता मंगेशकर और मुकेश ने अपने स्वरों से सजाया है, 'तुम्ही को देखने की दिल में आरजूएँ हैं' जिसमे प्रेम की महानता एवं समर्पण का सुख दृष्टिगोचर होता है

। ऊपर उल्लेखित गजलों के साथ ही कुछ स्तरीय गजलों का रूप उसके पश्चात के दौर में कुछ अनूठी फिल्मों में भी नजर आता है। इन फिल्मों में 'उमराव जान','निकाह' तथा 'रजिया सुलतान' आदि शामिल हैं। पाश्चात्य संगीत की कर्ण कठोरता को

ISSN : 2581-8848

त्यागकर कुछ फिल्मों में सुगमता लाने के लिए कुछ गजलकार गजल लिखते दृष्टयव्य होते हैं, तथा संगीतकार इन्हे संगीत से नवाजते हैं। 'उमराव जान' की गजल जिसे शहरियार जी ने लिखा है, खय्याम जी ने संगीत दिया है, तथा इस गजल को रेखा जी पर फिल्माकर चार चाँद लगाये हैं जिसे कोई भी गुनगुनाए बगैर नहीं रह सकता-

'इस अंजुमन में आपको आना है बार- बार,
दीवारों-दर को गौर पहचान लीजिए। 4 '

यहाँ नायिका के द्वारा नायक को यह समझाने की कोशिश की गई है कि इस महफिल में आपको बार- बार आते रहना है तो यहाँ की हर एक छोटी- बडी चीज आपको समझनी ही चाहिए।

'निकाह' फिल्म में भी गजलों का बडा सुंदर एवं मनोरम रूप मिलता है । इस गजल को हसन कमाल जी ने लिखा है, तथा गुलाम अली खाँ जी ने साथ ही रवि ने इसे संगीतबद्ध किया है-

दिल के अरमाँ आँसूओं में बह गये,
हम वफा करके भी तनहा रह गये'। 5

यहाँ स्पष्ट होता है कि दिल के सारे अरमान, सपने तथा उम्मीदें आँसूओं में बह जाती हैं क्योंकि वफा के बदले वफा नहीं मिलती तथा तनहाई का सामना करना पडता है। इसके बाद परवर्ती गजलकारों में बशीर बद्र, हसन कमाल तथा निदा फाजली आदि गजलकारों ने गझल की अस्मिता, सजीवता, शाश्वतता, मार्मिकता, अनुभूति की तीव्रता, कोमलता, सरसता तथा संवेदनशीलता को बरकरार रखा।

निष्कर्ष-

हिंदी सिनेमा में गजल एक लोकप्रिय विधा तथा गायन की सुगम एवं सुमधूर शैली है। प्रेम, सौंदर्य और यौवन की अनुभूति इसमे दृष्टव्य होती है। निराशा के क्षणों में गजल अपनी स्वरलहरियों के द्वारा शांति प्रदान करती है। स्वर्गीय कुंदनलाल सहगल जी ने ग्रामोफोन रेकॉर्ड के माध्यम से गजल को नयी शैली प्रदान की। इन्होने ही गजल को जनसामान्य तक पहूँचाने का कार्य किया है तथा गजल के क्षेत्र में नई संभावनाओं के द्वार खोले हैं। हिंदी सिनेमा के गजल में पीडा की मधूरतम अभिव्यक्ति मिलती है। साहिल लुधियानवी, हसरत जयपुरी, शकील बदायुनी, राजेंद्र कृष्ण, राजा मेहंदी अली खाँ आदि गजलकार तथा शंकर जयकिशन, नौशाद, मदनमोहन, रवि, कल्याणजी- आनंदजी, लक्ष्मीकांत प्यारेलाल आदि संगीतकार इसके साथ ही विभिन्न दौर के पुराने-नये गायक- गायिकाओं ने सिनेमा की गजल में चार चाँद लगाये थे। ' आलमआरा' पहली बोलती फिल्म है, इसमे भी गजल का चरम रूप नजर आया था । इस दौर की गजलों में शाश्वत, अमर तथा सजीव प्रेम का रूप दृष्टव्य होता है। परवर्ती गजलकारों ने भी कुछ स्तरीय गजलों का सृजन किया है, जिसमे शहरियार, हसन कमाल, बशीर बद्र, तथा निदा फाजली प्रमुख हैं । इन गजलों में उक्ति वैचित्र्य के माध्यम से कथ्य को व्यापक आयाम प्रदान किया है तथा विरहजन्य मार्मिक अनुभूतियों एवं संगीत की उपलब्धियों का मणिकांचन संयोग दिखाई देता है। इन गजलों की विशेषता है कि इनकी मार्मिकता के कारण यह गजलें श्रोताओं के हृदय से तादात्म्य स्थापित करने के कारण गायक- गायिकाओं के स्वर में स्वर मिलाकर श्रोता गुनगुनाने लगते हैं। इन गजलों का रूप सदाबहार रखने में उस दौर के सभी कलाकारों का असीम योगदान दृष्टिगोचर होता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. डॉ. रोहिताश्व अस्थाना -हिंदी गजल: उद्भव और विकास, सामायिक प्रकाशन, दिल्ली पृष्ठ -347
2. संगीत (फिल्मी अंक गजल) अंक 1971 साहिर लुधियानवी पृष्ठ -105
3. वही, राजेंद्र कृष्ण, पृष्ठ-61
4. फिल्म 'उमराव जान' से
5. फिल्म 'निकाह' से

*****

ISSN : 2581-8848

गुलज़ार के गीत और ग़ज़लों में सामाजिक, आर्थिक, राजकीय और सांस्कृतिक प्रवृत्तियाँ

डॉ देवीदास क बामणे 'संघर्ष'
अध्यक्ष,हिंदी विभाग
भाऊसाहेब नेने कला विज्ञान और वाणिज्य
महाविद्यालय पेण, जि.रायगड - ४०२१०७
मो.९६२३८६३२७०
drdkbamane1972@gmail.com

शोध सार:

गुलज़ार का साहित्य केवल गीत नहीं वह समाज का सांस्कृतिक दस्तावेज़ है। उन्होंने अपने शब्दों से मनुष्य के भीतर छिपे दुःख, प्रेम, असमानता और आशा को अभिव्यक्त किया। उनके गीतों में समाज की पीड़ा, राजनीति की विसंगति, अर्थव्यवस्था की असमानता और संस्कृति की गहराई सब एक साथ गूँजते हैं। इसलिए कहा जा सकता है — "गुलज़ार की कविता केवल सुनने के लिए नहीं, महसूस करने और जीने के लिए होती है।" इस प्रकार गुलजार के गीत और गजलों में सामाजिक, आर्थिक राजकीय सांस्कृतिक प्रवृत्तीयों पर संक्षेप प्रकाश डाला है।

बीज शब्द: गुलजार, गीत, समाज, साहित्य, आर्थिक, राजकीय, संस्क्रुति

गुलज़ार : जीवन परिचय:

गुलजार जी का पूरा नाम संपूर्ण सिंह कालरा है।गुलज़ार जी का प्रसिद्ध नाम याने कलम का नाम गुलज़ार है। गुलज़ार जी का जन्म १८ अगस्त १९३४ को दीना गांव, जिला झेलम में सुख था। (अब पाकिस्तान में) ब्रिटिश शासन काल था। गुलज़ार का जन्म एक सिख परिवार में हुआ। उनके पिता का नाम मख़न सिंह कालरा और माता का नाम सुझान कौर था।भारत विभाजन (1947) के बाद उनका परिवार दिल्ली में आकर बस गया।

गुलज़ार ने प्रारंभिक शिक्षा दिल्ली में प्राप्त की। विभाजन के बाद उन्होंने मुंबई का रुख किया और वहाँ साहित्यिक व फ़िल्मी जगत से जुड़े। जीवनयापन के लिए उन्होंने शुरुआत में एक गैरेज में कारों को रंगने (पेंट करने) का काम किया।

गुलज़ार का विवाह प्रसिद्ध फ़िल्म अभिनेत्री राखी गुलज़ार से हुआ था। उनकी एक बेटी है - मेघना गुलज़ार, जो आज जानी-मानी फ़िल्म निर्देशक हैं (राज़ी, छपाक, तलवार आदि फ़िल्में)।

गुलज़ार जी साहित्यिक शुरुआत किए। वैसे गुलज़ार बचपन से ही उर्दू और हिंदी कविता से प्रभावित थे।
उन्होंने 1950 के दशक में प्रगतिशील लेखक संघ से जुड़कर कविताएँ और नज़्में लिखना शुरू किया। फ़िल्मी दुनिया में उन्हें पहला अवसर बिमल रॉय की फ़िल्म "बंदिनी" (1963) में गीत लिखने को मिला। गीत: "मोरा गोरा अंग लै ले"
(संगीत: एस. डी. बर्मन, स्वर: लता मंगेशकर) यह गीत बेहद लोकप्रिय हुआ और गुलज़ार रातोंरात प्रसिद्ध हो गए।

गुलज़ार जी को मुख्य गीतकार के रूप में योगदान शुरू हुआ।

गुलज़ार ने हिंदी सिनेमा को अनगिनत कवित्वपूर्ण, भावनात्मक और दार्शनिक गीत दिए हैं।
उनकी लेखनी में प्रेम, वेदना, प्रकृति और मानवीय संवेदनाएँ गहराई से झलकती हैं। जैसे उनकी प्रमुख गीत निम्न लिखित हैं --
"तेरे बिना ज़िंदगी से कोई शिकवा तो नहीं" — आंधी (1975), "दिल ढूंढता है फिर वही फुर्सत के रात दिन" — मौसम (1975),
"चुपके-चुपके रात दिन आँसू बहाना याद है", "छोटी सी बात में बड़ी सी बात", "मुस्कुराने की वजह तुम हो"
"जय हो" — (फ़िल्म Slumdog Millionaire, ऑस्कर विजेता गीत) आदि प्रसिद्ध फिल्मी गीत हैं।

कविता, ग़ज़ल और नज़्म संग्रह

गुलज़ार ने उर्दू और हिंदी दोनों भाषाओं में कविताएँ, नज़्में और ग़ज़लें लिखी हैं।

गुलज़ार के प्रमुख काव्य संग्रह इस प्रकार हैं --

रावी पार, पुखराज,चांद पुखराज का
त्रिवेणी, यारा सिली सिली,एक बूँद चाँद की, पल भर की पहचान

'त्रिवेणी' उनकी प्रसिद्ध काव्य शैली है — जहाँ तीन पंक्तियों की कविता में तीसरी पंक्ति पहले दो पंक्तियों का नया अर्थ खोल देती है।

उदाहरण:

"बारिश में भीगते हुए वो बोली —
अच्छा लगता है भीगना,
शायद आँखों के आँसू कोई देख नहीं पाता।"

निर्देशक और लेखक के रूप में भी उनका योगदान है। गुलज़ार ने कई अर्थपूर्ण और संवेदनशील फ़िल्में निर्देशित कीं हैं -- आंधी (1975), मौसम (1975), मेरे अपने (1971), किनारा (1977), लिबास (1988), इजाज़त (1987), लेकिन (1991) इन फ़िल्मों में उन्होंने समाज, रिश्तों और भावनाओं को अत्यंत सूक्ष्मता से प्रस्तुत किया है।

गुलज़ार को साहित्य और सिनेमा, दोनों क्षेत्रों में अनेक सम्मान प्राप्त हुए हैं पुरस्कार विवरण आगे दिया है -- 1971 फ़िल्मफ़ेयर **अवॉर्ड**

आंधी के गीतों के लिए,

1975 राष्ट्रीय पुरस्कार, मौसम फ़िल्म के लिए। 2002 साहित्य अकादमी पुरस्कार त्रिवेणी के लिए।

2004 पद्म भूषण भारत सरकार द्वारा, 2009 ऑस्कर (Academy Award) Slumdog Millionaire के गीत “जय हो” 2009 ग्रैमी अवॉर्ड उसी गीत के लिए 2013

दादा साहेब फाल्के पुरस्कार

भारतीय सिनेमा का सर्वोच्च सम्मान प्राप्त।

गुलज़ार की लेखन शैली की विशेषताएँ हैं --

सरल, संवेदनशील और गूढ़ प्रतीकात्मक भाषा

हिंदी-उर्दू का अद्भुत सम्मिश्रण

प्रेम, विरह, स्मृति और आत्मसंवाद के भाव रोज़मर्रा के शब्दों में गहरी दार्शनिकता आदि।

गुलज़ार के कुछ प्रसिद्ध उद्धरण

“शब्द बहुत छोटे होते हैं,
मगर भाव जब उनमें उतरते हैं, तो वे अमर हो जाते हैं।”

“ज़िंदगी शायद इसी का नाम है —
थोड़ा रुकना, थोड़ा चलना, और मुस्कुराते रहना।"

“गुलज़ार के साहित्य में सामाजिक, आर्थिक, राजकीय और सांस्कृतिक प्रवृत्तियाँ” निम्न लिखित हैं -- आधुनिक हिंदी-उर्दू साहित्य के अध्ययन में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

नीचे प्रस्तुत है विस्तृत, सोदाहरण विवेचन —

'गीतकार गुलज़ार के साहित्य में सामाजिक, आर्थिक, राजकीय और सांस्कृतिक प्रवृत्तियाँ' --

प्रस्तावना:

गुलज़ार केवल गीतकार या कवि नहीं, बल्कि मानव समाज के संवेदनशील व्याख्याकार हैं।

उनकी रचनाओं में समाज का यथार्थ, आर्थिक विषमता, राजनीतिक विडंबना, सांस्कृतिक विविधता और मानवीय संबंधों की जटिलता गहराई से दिखाई देती है।

उनका लेखन फ़िल्मी गीतों, नज़्मों, ग़ज़लों और त्रिवेणियों के रूप में आम आदमी की संवेदनाओं का दर्पण है।

१. सामाजिक प्रवृत्तियाँ (Social Themes):

गुलज़ार का साहित्य मानवीय समाज की वास्तविकता, रिश्तों, स्त्री-जीवन, शहरी अकेलेपन और वर्ग-संघर्ष को बड़े ही संवेदनशील ढंग से प्रस्तुत करता है।

(क) रिश्तों और परिवार की बदलती संरचना:

उनकी फ़िल्म “मौसम”, “आंधी”, “इजाज़त”, “मेरे अपने” में परिवार, स्त्री और समाज के रिश्तों में बदलाव दिखता है।

उदाहरण (गीत – इजाज़त)

“मेरा कुछ सामान तुम्हारे पास पड़ा है...”

यह गीत केवल प्रेम-विरह नहीं, बल्कि स्त्री की पहचान और उसकी आत्म-सत्ता की बात करता है।

यह नई सामाजिक चेतना का प्रतीक है जहाँ स्त्री अपने अस्तित्व को स्वयं परिभाषित करती है।

(ख) शहरी जीवन और अकेलापन:

गुलज़ार महानगरों में जी रहे व्यक्ति के भीतर के एकाकीपन, खोखलेपन और भीड़ में अकेलेपन को अभिव्यक्त करते हैं। उदाहरण (गीत – आंधी)

"तेरे बिना ज़िंदगी से कोई शिकवा तो नहीं..."

यह गीत केवल प्रेम-वियोग नहीं, बल्कि शहरी मनुष्य के आधुनिक विखंडन की प्रतीकात्मक व्याख्या है — जहाँ व्यक्ति रिश्तों में होकर भी अकेला है।

(ग) मानवीय करुणा और सामाजिक समरसता:

गुलज़ार के साहित्य में जाति, वर्ग, धर्म से परे मानवता का संदेश है।
फ़िल्म "माचिस" में उन्होंने पंजाब के आतंकवाद काल के युवाओं की पीड़ा और सामाजिक तंत्र की अन्यायपूर्ण व्यवस्था को उजागर किया। जैसे गीत उदाहरण:

"छोड़ आए हम — वो गलियाँ..."

यह गीत घर, गाँव और शांति से दूर हुए नौजवानों की सामाजिक त्रासदी का प्रतीक है।

२. आर्थिक प्रवृत्तियाँ (Economic Themes):

गुलज़ार के कई गीत और पटकथाएँ गरीबी, श्रम, वर्ग-संघर्ष, और आर्थिक विषमता को उजागर करती हैं।

(क) गरीबी और श्रमिक जीवन का यथार्थ:

उनकी फ़िल्म "हुतूतू", "मेरे अपने" और "माचिस" में निम्नवर्गीय व्यक्ति की संघर्षमय ज़िंदगी दिखाई देती है।
गीत उदाहरण:
"मेरे अपने" में –

"कभी कभी अपने दिल में ख़याल आता है,
कि ज़िंदगी तेरी महफ़िल में क्यों नहीं।"

यहाँ आम आदमी की वंचना और असमानता की पीड़ा छिपी है।

(ख) शहर बनाम गाँव की आर्थिक खाई:

गुलज़ार की कविताओं में गाँव की मिट्टी की खुशबू और शहर की कृत्रिमता का अंतर बार-बार दिखता है।
उनकी रचना "रावी पार" में यह अंतर बहुत सूक्ष्म रूप में आता है —
जहाँ गाँव की मासूमियत और शहर की आर्थिक लालच के बीच व्यक्ति खो जाता है।
त्रिवेणी उदाहरण:

"मिट्टी की खुशबू थी,
अब धूल सी उड़ती है,
शायद अब गाँव शहर बन गया है।"

यह त्रिवेणी आर्थिक विकास के साथ भावनात्मक शून्यता का प्रतीक है।

३. राजकीय प्रवृत्तियाँ (Political Themes):

गुलज़ार ने प्रत्यक्ष राजनीति नहीं की, परंतु उनके लेखन में राजनीतिक चेतना और व्यवस्था की आलोचना स्पष्ट रूप में दिखती है।

(क) राजनीतिक अन्याय और व्यक्ति की त्रासदी:

फ़िल्म "आंधी" राजनीति के माध्यम से व्यक्तिगत जीवन और सार्वजनिक उत्तरदायित्व के संघर्ष को दिखाती है।
गीत उदाहरण:

"तेरे बिना ज़िंदगी से कोई शिकवा नहीं..."

यह गीत 'राजनीतिक संघर्ष और मानवीय रिश्तों' के टकराव का दार्शनिक प्रतीक बन गया।

(ख) युद्ध, हिंसा और आतंकवाद पर संवेदना:

फ़िल्म "माचिस" में उन्होंने राज्य और विद्रोह के बीच फँसे निष्कपट युवाओं की कहानी लिखी।
यहाँ राजनीति एक हिंसक व्यवस्था के रूप में उभरती है, जो इंसान को कठोर बना देती है।

गीत उदाहरण:

“छोड़ आए हम वो गलियाँ…”

— यह गीत युद्ध और आतंक से त्रस्त मानवीय आत्मा की पुकार है।

(ग) राजनीतिक प्रतीकवाद:

गुलज़ार की कई नज़्मों में ‘दीवार’, ‘दरवाज़ा’, ‘धूल’, ‘ख़ामोशी’ जैसे प्रतीक राज्य और समाज की दमनकारी चुप्पी का रूपक हैं।

उदाहरण:

“दीवारें बोलती नहीं,
मगर सुनाई देती हैं।”

— यह पंक्ति सत्ता की मौन हिंसा और जनता की मजबूरी का बिंब है।

४. सांस्कृतिक प्रवृत्तियाँ (Cultural Themes):

गुलज़ार का साहित्य भारतीय संस्कृति की आत्मा से जुड़ा हुआ है — जहाँ परंपरा, आधुनिकता, लोक और वैश्विकता — सब एक साथ प्रवाहित हैं।

(क) भारतीय लोक-संवेदना और परंपरा:

उनके गीतों में भारतीय मौसम, त्योहार, रिश्ते और भावनाएँ अपनी सादगी के साथ उपस्थित हैं।

उदाहरण:

“दिल ढूंढता है फिर वही फुर्सत के रात दिन…”

— यह गीत भारतीय मानस की ‘छुट्टी’, ‘आँगन’ और ‘गाँव’ की संस्कृति का प्रतीक है।

(ख) सांस्कृतिक समन्वय : हिंदी–उर्दू संगम

गुलज़ार की भाषा में हिंदी की मिठास और उर्दू की नज़ाकत का अद्भुत संगम है। वे भाषा, धर्म या मज़हब से परे एक संवेदनशील भारतीय संस्कृति का प्रतीक बनते हैं।

उदाहरण:

“मुस्कुराने की वजह तुम हो,
ज़िंदा होने की सज़ा तुम हो।”

इस पंक्ति में उर्दू की नज़ाकत और हिंदी की आत्मीयता — दोनों का मेल है।

(ग) वैश्विक दृष्टि और आधुनिकता:

गुलज़ार ने भारतीय संस्कृति को वैश्विक संदर्भ में प्रस्तुत किया। Slumdog Millionaire के लिए लिखा गीत “जय हो” भारतीय लोक-संगीत, संस्कृत शब्दावली और आधुनिक विश्व-संगीत — तीनों का सुंदर संयोजन है।

५. मानवतावादी दृष्टिकोण (Humanism)

गुलज़ार का पूरा साहित्य मानव केंद्रित है —
वह न किसी विचारधारा का प्रचार करते हैं, न किसी संप्रदाय का।
उनकी कविता मनुष्य की आत्मा को जगाती है।

“ज़िंदगी शायद इसी का नाम है —
थोड़ा रुकना, थोड़ा चलना,
और मुस्कुराते रहना।”

यह उनकी जीवन-दृष्टि का सार है —
एक संवेदनशील, आशावादी और समरस मानववाद।

६. सारांश (संकलित रूप में)

प्रवृत्ति: विषयवस्तु,उदाहरण,सामाजिक-
रिश्तों का विघटन, स्त्री की स्वायत्तता, शहरी अकेलापन

"मेरा कुछ सामान तुम्हारे पास पड़ा है"।
आर्थिक -वर्ग-विभाजन, शहर-गाँव का अंतर, श्रमिक जीवन
"रावी पार", "मेरे अपने"
राजकीय -सत्ता की विडंबना, आतंकवाद की पीड़ा
"आंधी", "माचिस"
सांस्कृतिक-
लोक जीवन, परंपरा–आधुनिकता का समन्वय
"दिल ढूंढता है…", "जय हो"
मानवतावादी
करुणा, प्रेम, सहअस्तित्व
"तेरे बिना ज़िंदगी…"

निष्कर्ष:

गुलज़ार का साहित्य केवल गीत नहीं वह समाज का सांस्कृतिक दस्तावेज़ है। उन्होंने अपने शब्दों से मनुष्य के भीतर छिपे दुःख, प्रेम, असमानता और आशा को अभिव्यक्त किया। उनके गीतों में समाज की पीड़ा, राजनीति की विसंगति, अर्थव्यवस्था की असमानता और संस्कृति की गहराई सब एक साथ गूँजते हैं। इसलिए कहा जा सकता है — "गुलज़ार की कविता केवल सुनने के लिए नहीं, महसूस करने और जीने के लिए होती है।" इस प्रकार गुलजार के गीत और गजलों में सामाजिक, आर्थिक राजकीय सांस्कृतिक प्रवृत्तीयों पर संक्षेप प्रकाश डाला है।

संदर्भ सूची :

१. 'कुछ और नज्में' - गुलजार
प्रकाशक: राधाकृष्ण प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड, ७/३१, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली - ११०००२
पहला संस्करण: १९८०
२. 'त्रिवेणी' - गुलजार (काव्य संग्रह)
रूपा पब्लिकेशंस इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, ७/१६, अंसारी रोड, दरियागंज नई दिल्ली - ११०००२
प्रकाशन - २००१
३. 'छैंया-छैंया' - गुलजार (गीत संग्रह)
प्रकाशक: राधाकृष्ण प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड, ७/३१, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली - ११०००२
पहला संस्करण: २००२
४. 'माचिस' - गुलजार (पटकथा)
प्रकाशक: राधाकृष्ण प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड, ७/३१, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली - ११०००२
५. फिल्म :२०१२
आंधी (1975), मौसम (1975), मेरे अपने (1971), किनारा (1977), लिबास (1988), इजाज़त (1987), लेकिन (1991) इन फ़िल्मों का भी संदर्भ दिले हैं।

*****

हिंदी ग़ज़ल : प्रतिरोध और चेतना

गुलामगौस फिरोज तांबोळी,
छात्र, हिंदी विभाग,
शिवाजी विद्यालय कोल्हापुर।
मो. नं . 7058629215
tamboligulamgaus@gmail.com

सारांश :

हिंदी ग़ज़ल केवल प्रेम, विरह और आत्मानुभूति की काव्यात्मक अभिव्यक्ति तक सीमित नहीं रही है। समय के साथ-साथ यह विधा सामाजिक यथार्थ, सत्ता-संरचना, लोकतांत्रिक मूल्यों और राजनीतिक विसंगतियों की सशक्त आवाज़ बनकर उभरी है। प्रस्तुत शोध-आलेख में हिंदी ग़ज़लों में चित्रित राजनीतिक परिदृश्य का गंभीर विश्लेषण किया गया है। विशेष रूप से उन ग़ज़लों को आधार बनाया गया है जो सत्ता के दमन, नैतिक पतन, अवसरवाद, भ्रष्टाचार और जनता की उपेक्षा को बेनक़ाब करती हैं। ये ग़ज़लें केवल विरोध दर्ज नहीं करतीं, बल्कि सामाजिक चेतना को झकझोरते हुए परिवर्तन की आकांक्षा भी व्यक्त करती हैं। शोध का निष्कर्ष यह स्थापित करता है कि हिंदी ग़ज़लें लोकतांत्रिक समाज में वैचारिक हस्तक्षेप का प्रभावी माध्यम हैं और इन्हें सामाजिक-नीतिगत विमर्श में सम्मिलित किया जाना चाहिए।

बीज शब्द : हिंदी ग़ज़ल, राजनीति, सत्ता, सामाजिक चेतना, प्रतिरोध, लोकतंत्र, वैचारिक परिवर्तन

उद्देश्य :

1) हिंदी ग़ज़लों में राजनीति की बातें समझना।
2) ग़ज़लों में सत्ता और समाज की परेशानियों को देखना।
3) ग़ज़लों के ज़रिये उठाए गए सवालों को पहचानना।
4) ग़ज़ल से लोगों में जागरूकता कैसे बढ़ती है, यह समझना।
5) हिंदी ग़ज़ल को समाज में बदलाव का साधन मानना।

प्रस्तावना :

किसी भी समाज की राजनीति उसके नैतिक स्तर, संवेदनशीलता और मानवीय सरोकारों का जीवंत प्रतिबिंब होती है। राजनीति केवल सत्ता-प्राप्ति की प्रक्रिया नहीं, बल्कि समाज को दिशा देने वाली नैतिक चेतना भी है। जब राजनीति अपने मूल उद्देश्यों से भटकती है, जब सत्ता जन-कल्याण के स्थान पर स्वार्थ और वर्चस्व का माध्यम बन जाती है, तब साहित्य समाज की अंतरात्मा बनकर सामने आता है। वह प्रश्न करता है, टोकता है और समय को आईना दिखाता है। हिंदी साहित्य की परंपरा में कविता, कहानी और उपन्यास के साथ-साथ ग़ज़ल ने इस भूमिका को अत्यंत प्रभावी ढंग से निभाया है। ग़ज़ल की संक्षिप्तता, प्रतीकात्मकता और व्यंजना-शक्ति उसे राजनीतिक यथार्थ को अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम बनाती है। कुछ पंक्तियों में वह वह कह देती है, जिसे कहने के लिए लंबे भाषण भी कम पड़ जाते हैं। सत्ता की संवेदनहीनता, लोकतंत्र की खोखली संरचना, आम आदमी की पीड़ा और नैतिक पतन जैसे प्रश्न ग़ज़लों में अत्यंत तीव्र और मार्मिक रूप में सामने आते हैं आधुनिक हिंदी ग़ज़लकारों ने अपने समय की राजनीति को बहुत निकट से देखा है। उन्होंने अनुभव किया कि सत्ता और व्यवस्था के बीच आम आदमी की आवाज़ लगातार दबाई जा रही है, नैतिक मूल्य खोखले होते जा रहे हैं और लोकतंत्र धीरे-धीरे केवल एक औपचारिक ढाँचा बनकर रह गया है। इसी संदर्भ में डॉ. आलोक वर्मा का यह कथन अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है कि, "जब जनता की आवाज दब जाती है या उसे अनसुना किया जाता है, तब ग़ज़लें विसंगति पर प्रश्नचिह्न लगाती हैं।"[1] यह कथन ग़ज़ल की सामाजिक भूमिका को स्पष्ट करता है और उसे केवल साहित्यिक विधा न मानकर वैचारिक हस्तक्षेप के रूप में स्थापित करता है। ऐसे समय में ग़ज़ल केवल सौंदर्य या भावुकता की वस्तु नहीं रह जाती, बल्कि वह प्रतिरोध का औज़ार बन जाती है। वह सत्ता से सीधे टकराए बिना भी सत्ता की नींव हिला देती है। प्रतीकों, व्यंग्य और संकेतों के माध्यम से ग़ज़लकार राजनीति के उस चेहरे को उजागर करता है जिसे अक्सर छिपाया जाता है।

मुख्य विश्लेषण :

हिंदी ग़ज़लों में चित्रित राजनीतिक परिदृश्य केवल तत्कालीन घटनाओं, सरकारों या व्यक्तियों की आलोचना भर नहीं है, बल्कि यह सत्ता, समाज और व्यक्ति के बीच मौजूद उन गहरे अंतर्विरोधों को उजागर करता है जो समय के साथ और अधिक

जटिल होते गए हैं। ग़ज़ल अपने स्वभाव में ही संवादात्मक होती है। वह न तो आदेश देती है, न ही उपदेश, बल्कि प्रश्न खड़े करती है। यही प्रश्न राजनीतिक चेतना को जन्म देते हैं। ग़ज़ल की सबसे बड़ी शक्ति यह है कि वह कम शब्दों में अधिक कहती है और सीधे टकराव के बजाय प्रतीकों, व्यंग्य और संकेतों के माध्यम से सत्ता की संरचना को चुनौती देती है। राजनीतिक ग़ज़लें भाषण नहीं बनतीं, क्योंकि भाषण सत्ता की भाषा होती है, जबकि ग़ज़ल जनता की भाषा है। ग़ज़लकार सत्ता से उसी भाषा में बात करता है, जिसे आम आदमी समझता है। इसी कारण राजनीतिक ग़ज़लें जनता के भीतर असंतोष, प्रश्न और चेतना का संचार करती हैं। जैसे कि दुष्यंत कुमार जी अपने इन पंक्तियों में रहते हैं कि,

“मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही,
हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिए”[2]

जैसी पंक्ति आधुनिक राजनीतिक चेतना की आधारभूमि को स्पष्ट रूप से सामने रखती है। यहाँ ‘आग’ किसी हिंसक क्रांति का प्रतीक नहीं, बल्कि नैतिक असंतोष, वैचारिक बेचैनी और अन्याय के विरुद्ध जागरूकता का प्रतीक है। यह ग़ज़ल उस मानसिकता पर गहरा प्रहार करती है जो अन्याय को देखकर भी तटस्थ बने रहना चाहती है। ग़ज़लकार मानता है कि सामाजिक निष्क्रियता भी अन्याय का एक रूप है। लोकतंत्र तभी जीवित रहता है जब नागरिकों के भीतर प्रश्न करने की आग जलती रहे। यह पंक्ति नागरिक चेतना को व्यक्तिगत सीमाओं से बाहर निकालकर सामूहिक जिम्मेदारी का बोध कराती है।

सत्ता और अपराध के गठजोड़ को हिंदी ग़ज़लें अत्यंत मार्मिक और व्यंजक रूप में उजागर करती हैं। लोकतांत्रिक व्यवस्था में यह अपेक्षा की जाती है कि सत्ता नैतिकता, कानून और सामाजिक मर्यादा की संरक्षक होगी, किंतु जब यही सत्ता उन लोगों के हाथों में पहुँच जाती है जिनका अतीत नियमों और सीमाओं को तोड़ने से जुड़ा रहा हो, तब लोकतंत्र का वास्तविक संकट सामने आता है। ग़ज़लकार इस विडंबना को सीधे आरोप के रूप में नहीं, बल्कि प्रतीकात्मक भाषा में प्रस्तुत करता है, जिससे उसकी बात और अधिक गहरी तथा प्रभावशाली हो जाती है। जैसे की अदम गोंडवी जी अपनी ग़ज़ल में लिखते हैं कि,

“दीवार फाँदने में यूँ जिनका रिकॉर्ड था,
वे चौधरी बने हैं उम्र के उतार में”[3]

इस पंक्ति में ‘दीवार’ केवल भौतिक अवरोध नहीं, बल्कि कानून, नैतिकता और सामाजिक मर्यादा का सशक्त प्रतीक है। जो लोग जीवन भर इन दीवारों को लांघने में निपुण रहे, वही समय के साथ समाज के संरक्षक और नेतृत्वकर्ता बन जाते हैं। यह स्थिति लोकतंत्र की उस त्रासदी को उजागर करती है जहाँ अपराध, राजनीति और सामाजिक प्रतिष्ठा एक-दूसरे में घुल-मिलकर एक विकृत सत्ता-संरचना का निर्माण करते हैं। यह विसंगति केवल शासन-तंत्र की विफलता नहीं, बल्कि समाज की सामूहिक चेतना के पतन का भी संकेत देती है। जब समाज स्वयं ऐसे नेतृत्व को स्वीकार करने लगता है, तब अपराध केवल व्यक्तिगत कृत्य नहीं रह जाता, बल्कि सामाजिक स्वीकृति प्राप्त कर लेता है। ग़ज़लकार इस स्थिति को सामान्य या अपरिहार्य घटना के रूप में स्वीकार नहीं करता, बल्कि इसे एक गंभीर सामाजिक चेतावनी के रूप में प्रस्तुत करता है। यह चेतावनी केवल सत्ता के लिए नहीं, बल्कि उस समाज के लिए भी है जो नैतिकता और मर्यादा के स्थान पर शक्ति और प्रभाव को महत्व देने लगता है।

समकालीन राजनीति में नैतिकता के क्षरण और अवसरवाद के वर्चस्व को हिंदी ग़ज़लें अत्यंत तीखे व्यंग्य के साथ सामने लाती हैं। विचारधाराएँ सत्ता-सुख और लाभ के आगे गौण हो जाती हैं, और मूल्य केवल उपयोग की वस्तु बनकर रह जाते हैं। इसके संदर्भ में गजलकार संजय चतुर्वेदी जी अपनी ग़ज़ल में कहते हैं,

“जिसके पास मिले चिकनाई वही पार्टी अच्छी है
लेनिन से ऊँचा है लालू दानिश वाले ग़ौर करें”[4]

यह पंक्ति स्पष्ट करती है कि राजनीति अब सिद्धांतों से नहीं, बल्कि सुविधा और स्वार्थ से संचालित हो रही है। ‘चिकनाई’ यहाँ धन, सत्ता और अवसरवाद का प्रतीक है, जबकि लेनिन जैसे वैचारिक संदर्भ यह दर्शाते हैं कि विचारधाराएँ परिवर्तन के साधन के बजाय सत्ता-प्राप्ति का औज़ार बन चुकी हैं। ग़ज़ल इस प्रवृत्ति को विचारधारात्मक राजनीति के पतन और अवसरवादी राजनीति के उदय के रूप में रेखांकित करती है।

इन सभी ग़ज़लों के समग्र पाठ से यह स्पष्ट होता है कि राजनीतिक ग़ज़ल का उद्देश्य केवल सत्ता-विरोध या क्षणिक उत्तेजना पैदा करना नहीं है। ग़ज़लकार व्यवस्था की विसंगतियों को उजागर करते हुए समाज को वैचारिक रूप से तैयार करना चाहता है, ताकि परिवर्तन केवल नारे में नहीं, चेतना में घटित हो। वह अराजकता के पक्ष में नहीं, बल्कि विवेकपूर्ण और नैतिक हस्तक्षेप के माध्यम से लोकतंत्र को सुदृढ़ बनाने की आकांक्षा व्यक्त करता है। इसके संदर्भ में गजलकार अपनी ग़ज़ल में लिखते हैं,

 ISSN : 2581-8848

“सिर्फ़ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं,
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए।”[5]

यह पंक्ति राजनीतिक हिंदी ग़ज़लों का वैचारिक निष्कर्ष बनकर उभरती है। यह स्पष्ट करती है कि ग़ज़ल विरोध की नहीं, बल्कि रचनात्मक परिवर्तन की पक्षधर है। ग़ज़लकार चेतना को अपना हथियार बनाता है और व्यवस्था को बाहर से नहीं, भीतर से बदलने का स्वप्न देखता है। यही कारण है कि हिंदी ग़ज़लें लोकतांत्रिक संवाद का सशक्त और विश्वसनीय माध्यम बन जाती हैं।

हिंदी ग़ज़लों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे आम आदमी की भाषा में सत्ता से सवाल करती हैं। इनमें न कठिन विचार है और न दिखावटी ज्ञान का बोझ। यही सरलता उन्हें जन-आंदोलन की मानसिक भूमि से जोड़ती है। राजनीतिक ग़ज़लें जनता को यह एहसास कराती हैं कि सत्ता प्रश्नों से डरती है और प्रश्न करना नागरिक का अधिकार ही नहीं, बल्कि उसका नैतिक कर्तव्य भी है। इसी कारण यदि इन ग़ज़लों को शैक्षणिक पाठ्यक्रमों, सामाजिक संवादों और सांस्कृतिक अभियानों से जोड़ा जाए, तो वे केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति नहीं रह जाएँगी, बल्कि लोकतांत्रिक चेतना, नैतिक पुनर्निर्माण और समाज-सुधार की जीवंत शक्ति बन सकती हैं। इसलिए हिंदी ग़ज़लों में चित्रित राजनीतिक परिदृश्य को केवल साहित्यिक अध्ययन तक सीमित नहीं रखा जाना चाहिए, बल्कि इसे समाज-परिवर्तन के एक प्रभावी और उत्तरदायी माध्यम के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।

निष्कर्ष :

हिंदी ग़ज़लों में राजनीति का स्वर यह सिद्ध करता है कि यह विधा अब केवल भावनात्मक अभिव्यक्ति तक सीमित नहीं रही, बल्कि सामाजिक चेतना और वैचारिक प्रतिरोध का सशक्त माध्यम बन चुकी है। समकालीन ग़ज़लें सत्ता, व्यवस्था और आम जन के बीच गहरे होते अंतर को संवेदनशील और प्रतीकात्मक भाषा में उजागर करती हैं। इनमें व्यक्त असंतोष किसी क्षणिक प्रतिक्रिया का परिणाम नहीं, बल्कि सामाजिक अनुभव और विवेक से उपजा हुआ रचनात्मक हस्तक्षेप है। यह अध्ययन स्पष्ट करता है कि हिंदी ग़ज़लें सत्ता के दंभ, नैतिक पतन और लोकतांत्रिक मूल्यों के क्षरण पर प्रश्न उठाती हैं। ग़ज़लकार प्रत्यक्ष आरोप के स्थान पर व्यंग्य, संकेत और बिंबों के माध्यम से व्यवस्था की विडंबनाओं को सामने लाता है, जिससे पाठक सोचने और आत्ममंथन के लिए प्रेरित होता है। इसी प्रक्रिया में ग़ज़लें समाज और सत्ता के बीच संवाद की भूमिका निभाती हैं। जनसुलभ भाषा और संवेदनात्मक गहराई हिंदी ग़ज़लों की प्रमुख शक्ति है। वे आम आदमी की पीड़ा और आकांक्षाओं को स्वर देती हैं तथा प्रश्न करने की लोकतांत्रिक चेतना को जीवित रखती हैं। इस दृष्टि से राजनीतिक हिंदी ग़ज़लें केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि अपने समय का सजीव दस्तावेज़ और सामाजिक जागरण की प्रभावी शक्ति हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1) डॉ. आलोक वर्मा, समकालीन गजलों में राजनीतिक चित्रण, स्वरूप प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2019, पृ. क्र. 92
2) दुष्यंत कुमार, साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृ. क्र. 30
3) संपा. ओम निश्चल, अदम गोंडवी, धरती की सतह पर, अनुज प्रकाशन, 2023
4) https://share.google/b1wHx1VYxTaQx9T21
5) दुष्यंत कुमार, साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृ. क्र. 30

*****

दुष्यंतकुमार के गजलों में सामाजिक विमर्श

डॉ. एकनाथ श्रीपती पाटील
हिंदी विभाग प्रमुख,
राधानगरी महाविद्यालय,
राधानगरी, जिला-कोल्हापुर।
दूरभाष : 7758814856

शोध सार:

दुष्यंतकुमार का पूरा व्यक्तित्त्व सामाजिक रहा है। उर्दू गजलों की तरह प्रिय के सौंदर्य का गुणगान करना उनका उद्देश्य नहीं रहा है। गजल का उन्होंने हथियार की तरह इस्तेमाल किया है। साथ में मेहबूब के साथ बातें करने का जरिया भी दिखाया है। उनकी विद्रोह वृत्ति गजलों में कूटकूट कर भरी है। भ्रष्ट नेता तथा समाजव्यवस्था का मुखौटा खोलकर वे नई समाजव्यवस्था रचना चाहते हैं, जो शोषणमुक्त हो। यथार्थ के साथ आम जनता की व्यथा को उन्होंने गजलों का विषय बनाया है। शोषकों के हर हथकंडे को बेनकाब करनेवाले तथा शोषितों के दुःखों-कष्टों को उजागर करनेवाले सामाजिक गजलकार के रूप में दुष्यंतकुमार सामने आते हैं।

बीज शब्द: गज़ल, दुष्यंत, व्यवस्था, समाज, विमर्श, विरोध।

आज हिंदी कविता में गजल युग को असाधारण महत्त्व है। यह अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। जैसे उर्दू, फारसी में इसका प्राबल्य है, उसीप्रकार अन्य भाषाओं में भी इसकी सफलता छा रही है। 'गजल' शब्द मूलतः अरबी का है लेकिन गजल विधा अरबी में नहीं पाई जाती है। इस विधा का जन्म प्रथम फारसी में हुआ है। अरबी में 'गजला' का अर्थ है हिरन का बच्चा। इसी 'गजला' शब्द से गजल शब्द बना है। कुछ विद्वानों ने गजल के फारसी शब्द का तात्पर्य प्रणय प्रधान गीत माना है। "गजल ऐसी पद्यात्मक रचना है जिसमें नायिका के सौंदर्य एवं उसके प्रति उत्पन्न प्रेम का वर्णन हो।"[1] इसीतरह उर्दू शायर लिखते हैं-"जब कोई शिकारी जंगल में फुलों के साथ हिरन का पीछा करता है और हिरन भागते-भागते किसी ऐसी झाड़ी में फँस जाता है यहाँ से वह निकल नहीं पाता। उस समय कंठ से एक दर्दभरी आवाज निकलती है। उसी करुण स्वर को गजल कहते है।"[2] हिंदी के सशक्त गजलकार दुष्यंतकुमार का गजल साहित्य हमें एक अलग ऊँचाई पर ले जाता है। उनकी गजलें पूर्णतः सामाजिक, यथार्थवादी चित्रण का बोध कराती है। गाँव की धूल से लेकर शहर की ऊँची मकानों का सामान्य से असामान्य, जनता से नेता तक का चित्रण उनके साहित्य में मिलता है। प्रेम, विरह, मिलन, सौंदर्य के साथ भूख, पीड़ा, भ्रष्टाचार, शोषण, अत्याचार का भी वे सुंदर ढंग से चित्रण करते हैं। वे खुद कहते हैं-"मैं ऐसे हवाई पाठक की कल्पना नहीं करता जिसके बौद्धिक आयाम मेरे सोच से मेल नहीं खाते हों। मैं तो खुद पाठक के रूप में उस कविता की खोज में हूँ जो हर व्यक्ति की कविता हो और कंठ से फूटे।"[3] उनके गजलों के विषयों में आम आदमी की अभावग्रस्तता, पीड़ा, द्वंद्व, तनाव और उत्पीड़न होने से उनकी गजलों के केंद्र में आम आदमी हमेशा रहा है। अपनी गजल के लिए दुष्यंतजी ने स्वानुभूति से नई जमीन बनाई है। दुष्यंतकुमार की गजलों में सामाजिकता को महत्त्व दिया है। सामाजिक स्थिति, भ्रष्टता, पिछड़ी जनता, भूखी जनता, नंगे बच्चे, सुस्त राजव्यवस्था, गंदी राजनीति, भ्रष्ट व्यवस्था, मानवी अजनबीपन, महंगाई, शहरों में बदलती मानवीयता, बेकारी, देशप्रेम उनके गजलों के विषय हैं। यथार्थ की भावभूमि पर लिखी उनकी गजलों में आक्रोश व्यक्त हुआ दिखाई देता है। समाज की विषमता, विद्रुपता और विपन्नता का चित्रण करते लिखते है-

"कहाँ तो तय था चिरागाँ हरेक घर के लिए
कहाँ चिराग मय्यसर नहीं शहर के लिए।"[4]

आजादी के बाद आम आदमी का मोहभंग हुआ। जो सपने दिखाए गये वे पूरे नहीं हुए। नेतृत्व से दिखाए गये सपने और अनुभूत सत्य में स्पष्ट अंतर दिखाई देने लगा। आम आदमी तो जी नहीं रहा है बल्कि जिंदगी ढो रहा है। हर कोई अपनी जिम्मेदारी के बोझ तले झुका हुआ है। लेकिन लोग तो कुछ अलग ही समझ लेते है। इसी भ्रष्ट समाज में जो पकड़ा जाता है वही चोर है और जो पकड़ा नहीं जाता वह सभ्य है। भ्रष्ट लोगों पर अपनी लेखनी चलाते हुए वे कहते है-

"हर सड़क पर कदर कीचड़ बिछा है,
हर किसी का पाँव घूटनों तक सना है।"[5]

हर क्षेत्र में भ्रष्टाचार दिखाई देने लगा है। भ्रष्टाचार करता नहीं ऐसा व्यक्ति दिखाई नहीं देता। सत्ता पक्ष और विपक्ष में भेद दिखाई नहीं देता। जो दिख रहा है वैसा नहीं है। जो जैसा है वैसा भी नहीं है। आदमी हर पल बदलता है। उसका दिखाने का और खाने का अलग-अलग मुँह है।

"यह जिस्म बोझ से दुहरा हुआ होगा,
मैं सजदें में नहीं था आपको धोखा हुआ होगा।"[6]

आर्थिक विषमता और अभाव के बोझ से आम जनता दबकर दुहरी हो गई है। भ्रष्ट शासन-व्यवस्था समाज को खोखला बना रही है। ऐसी व्यवस्था पर लिखी गजलें समाज के मुँह पर तमाचा मारती है। खुद कीचड़ में सने लोग नीति और अनीति पर ज्यादा भाषण देते है। स्वयंम् भ्रष्ट और अनीति के जाल में फँसकर लोगों को कानून समझाने लगते है। उनपर व्यंग्य कसते हुए वे लिखते हैं-

"वो सलीबा के करीब आये तो हमको,
कायदे कानून समझाने लगे है।"[7]

आम आदमी लोगों की कुनीति में फँसता जा रहा है। अंधेरे के साम्राज्य उजाले को निगल रहे है। मशालें बुझ गई है, रोशनी भी सुरक्षित नहीं। इसपर टिपण्णी करते वे लिखते है-

"कैसा मशाल ले के चले तीरगी में आप
जो रोशनी थी वह भी सलामत नहीं रही।"[8]

जनता को सत्य तथा न्याय-प्रिय राजव्यवस्था की अपेक्षा थी। आजादी के बाद नेताओं ने अपनी सत्ता बनाए रखने निरंकुश अन्याय-अत्याचार का सहारा लेकर सत्य को दबाया है। जिम्मेदार लोग तथा समाज इस अनीति की ओर अनदेखा करने लगता है, वैसे-वैसे समाज मृत-सा बनता है। लेकिन गजलकार का तन-मन तड़पता रहता है। मृत समाज में कोई चेतना नहीं होती। ऐसे समाज के चंद लोग अपने मर्जी के अनुसार चलने लगते है।

"यहाँ तो सिर्फ गूँगे और बहरे लोग बसते हैं,
खुदा जाने यहाँ पर किस तरह जलसा हुआ होगा।"[9]

लेकिन गजलकार निराश नहीं है। वे परिवर्तन चाहते है, वे परिवर्तन में परिवर्तन में विश्वास रखते हैं। परिवर्तन धीरे-धीरे होने लगता है। समाज अपनी करवट बदलने लगता है तब बेहोश होकर लिखते है-

"कैसे मंजर सामने आने लगे हैं,
गाते-गाते लोग चिल्लाने लगे हैं।
अब तो इस तालाब का पानी बदल दो,
ये कमल के फुल कुम्हलाने लगे है।"[10]

इस देश की व्यवस्था ने बुराइयों जन्म हो चुका है। इन बुराइयों ने आम आदमी का जीना हराम किया है। का जो लोग भूल-से सुख का गाना गा रहे थे उन्हें धोखे का पता चला है। वे अपने हक के लिए चिल्लाने लगते हैं। तब गजलकार इसी व्यवस्था-रूपी तालाब का गंदा पानी बदलना चाहते हैं। क्योंकि ऐसा नहीं हुआ तो समाजरूपी कमल कुम्हला जाएंगे। दुष्यंतकुमार सामाजिक समस्या की तरफ ऊँगली उठाकर चूप नहीं रहते। वे सामाजिक विषमता में बदलाव चाहते हैं। उनकी गजल सिर्फ हंगामा खड़ा नहीं करती। जो भ्रष्ट, पुराना है उसकी जगह पर नयापन लाना चाहती है। इस देश में भ्रष्टाचार तथा आम आदमी के दुख पहाड़ जैसे बन गये हैं। पहाड़ जैसा दुख तथा भ्रष्टाचार अब खत्म होना चाहिए। इसके लिए देश के हर व्यक्ति ने इसके विरोध में लड़ना चाहिए। दुष्यंतकुमार सामान्य लोगों में चेतना जगाते हुए लिखते हैं-

"मेरे सीने में नहीं तो तरे सीने में सही,
हो कही भी आग लेकिन जलनी चाहिए।
सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं,
मेरी कोशिश है कि सूरत बदलनी चाहिए।"[11]

आम जनता के विकास के लिए सरकार द्वारा योजनाएँ पारित की जाती है लेकिन यह आम जनता तक कहाँ पहुँचती है। वह तो बीच में ही गायब होती है। इसी भ्रष्ट राजनेताओं ने आम जनता को कुछ दिया नहीं है। योजनाएँ जिस उद्देश्य को लेकर चलाई गई उसमें हम कामयाब नहीं हुए। तब वे दुःख से लिखते है-

"यहाँ तक आते-आते सूख गई कई नदियाँ,
मुझे मालूम है पानी कहाँ ठहरा हुआ होगा।"[12]

 ISSN : 2581-8848

आगे वे स्वीकार करते है, हमारे लोग राजनीतिक हो गए हैं; वे हमारे नहीं रहे हैं; वे पराए हो गए हैं। जिन्हें हमने जिताया वे लोग हमारे नहीं रहे हैं। रोटी की समस्या से घीरे आम आदमी को अपना देश; अपना राज की स्थिति झूठी लगने लगी है। इस बात का जिक्र करते वे लिखते हैं-

"हमको पता नहीं था हमें अब पता चला,
इस मुल्क में हमारी हुकूमत नहीं रही।"[13]

ऐसे राजनेता पर वे कड़ा प्रहार करते हैं। स्वार्थी नेता खाली कुर्सी सँभालते हैं। उन्हें वे जनता के सामने नंगा करते हैं। समाज को नई क्रांति के लिए प्रेरित करते हैं। लोग इतने स्वार्थी और डरपोक हो गए हैं कि वे घर से बाहर आकर बात करने के लिए डरते हैं। कायर दुर्बल जनता अपने बंद कमरों में छिपी हैं। तब गजलकार नेताओं से पंगा लेते हैं। जनता के लिए भाषण देते हुए वे कहते हैं-

"लोग मंत्रियों के वक्तव्य पढ़ते हैं,
देश पर अब कोई संकट नहीं हैं।
और खुशी से उछल पड़ते हैं,
मुनाफे की मूर्तियाँ गढ़ते हैं।
आह! कल्पना पर भी मंत्रियों और
व्यापारियों का एकाधिपत्य हैं।"[14]

वैसे तो दुष्यंतकुमार की ज्यादातर गजलें देश की समस्या, आम आदमी की वेदना को ही अभिव्यक्त करती हैं। देशप्रेम की भावना उनके रग-रग में दिखाई देती है। स्वतंत्रता के बाद देश की स्थिति से वे चिंताग्रस्त होते हैं। इस देश के नेताओं ने आम आदमी के सपनों के साथ खिलवाड़ किया है। गरीबी हटाओ का नारा दिया, मगर गरीबी हटी नहीं। तथा दूसरी ओर अच्छे दिन के सपने दिखाए लेकिन अच्छे दिन नहीं आए। इस दशा को अभिव्यक्त करते हुए लिखते हैं-

"इस तरह टूटे हुए चेहरे नहीं है
जिस तरह टूटे हुए ये आईने हैं।
जिस तरह चाहो बजाओ इस सभा में
हम नहीं है आदमी, हम झूनझूने है।"[15]

कभी-कभी उनके साहित्य में आंतरिक संघर्ष, कुंठा व्यक्त होती है। आधुनिक युग का मानव अभिमन्यु जैसा समस्याओं के चक्रव्यूह में फँस गया है। वह कुंठित बना है। इस कुंठा से वह मुक्त होने के लिए तिलमिला रहा है। अपनी इच्छाओं को इस तरह शब्दों में व्यक्त करते है-

"मेरी कुंठा
रेशम की कीड़ों-सी
ताने-बाने बुनती
तड़प-तड़प कर
बाहर आने का सिर धुनती है।"[16]

दुष्यंतकुमार ने कई जगह पर अपनी व्यक्तिगत बातें कहीं है, पर वे बाते सामाजिक बनती हैं। उनकी वेदना समाज की है, पीड़ा सामान्य जनता की है। उनके काव्य में अतिशयोक्ति नहीं है। यथार्थ की भावभूमि रखने का प्रयास वे करते हैं। अपनी जन्म व्यथा को प्रकट करते वे लिखते हैं-

"मेरा जन्म
एक नैसर्गिक विवशता थी :
दुर्घटना :
आत्म-हत्यारी स्थितियों का समवाय
मुझे अनुभव के नाम पर परिस्थिति ने
कोडों से पीटा।"[17]

हमारा जन्म एक नैसर्गिक विवशता तथा दुर्घटना है। हमें इस समाज से मिले कटु अनुभव कोडों से पीटने के समान है। टूटता, बिखरता और फिर मार्गक्रमित होता व्यक्तित्व सफलता प्राप्त करने लगता है। कई लोग गलत राह तथा अनीति के मार्ग को अपना यात्रा पथ स्वीकारते हैं। क्या इस सफलता को सहज स्वीकारना व्यक्ति को सहज सुलभ है। सृष्टि के अनाथालय में मित्र छूटते, मर्यादा बिलखती रही और मिली सफलता अनास्था से युक्त है। सफलता के लिए निरर्थक उपाय खोजता व्यक्ति जीवन में तकलीफदेह भोगता है। ऐसी विचित्र स्थिति को जन्म देनेवाली स्वार्थी वृत्ति अपने कर्म पर लज्जित नहीं है।

"सृष्टि के अनाथालय में मैंने
जीने के बहाने तलाशने में
मित्रों को खो दिया!
भूखे बालकों-सी बिलखती मर्यादाएँ देखी,
बाजारू लड़कियों-सी सफलताएँ सीने से चिपटा ली,
मुझमें दहकती रही एकसाथ कई चिताएँ।"[18]

दुष्यंतकुमारजी अपने दोहरेपन को स्वीकारते हैं। जहाँ उन्होंने स्वार्थों की वेदी पर नरबलियाँ दी है, वही तीर्थों में दान भी दिया है। वे स्वयंम् स्वीकारते कहते हैं-मुझमें भ्रूण हत्याएँ भी हुई है और दूसरी ओर मैंने मूर्तियों पर जल भी चढ़ाया। उनकी गजलें यंग्य भरी हैं। यह व्यंग्य राजनीति, शासन-प्रणाली, शिक्षा-प्रणाली पर कड़ा प्रहार करता है। देश की दुर्दशा पर वे लिखते हैं-

"कल नुमाईश में मिला वो चिथड़े पहने हुए
मैंने पूछा नाम तो बोला कि हिंदुस्तान है।"19

निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि दुष्यंतकुमार का पूरा व्यक्तित्त्व सामाजिक रहा है। उर्दू गजलों की तरह प्रिय के सौंदर्य का गुणगान करना उनका उद्देश्य नहीं रहा है। गजल का उन्होंने हथियार की तरह इस्तेमाल किया है। साथ में मेहबूब के साथ बातें करने का जरिया भी दिखाया है। उनकी विद्रोह वृत्ति गजलों में कूटकूट कर भरी है। भ्रष्ट नेता तथा समाजव्यवस्था का मुखौटा खोलकर वे नई समाजव्यवस्था रचना चाहते हैं, जो शोषणमुक्त हो। यथार्थ के साथ आम जनता की व्यथा को उन्होंने गजलों का विषय बनाया है। शोषकों के हर हथकंडे को बेनकाब करनेवाले तथा शोषितों के दुःखों-कष्टों को उजागर करनेवाले सामाजिक गजलकार के रूप में दुष्यंतकुमार सामने आते हैं।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. डॉ. हरदेव बाहरी, राजपाल हिंदी शब्दकोश, राजपाल एंड सन्स दिल्ली, पृ.159
2. प्रा. मधु खराटे, हिंदी गजल के प्रमुख हस्ताक्षर, विद्या प्रकाशन, कानपुर, पृ.29
3. डॉ. रोहिताश्व अस्थाना, हिंदी गजल : उद्भव और विकास, सामायिक प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, प्र.सं. 1987, पृ. 140
4. दुष्यंतकुमार, सारिका स्मृति अंक, पृ.36
5. दुष्यंतकुमार, साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1983, पृ.27
6. वही, पृ.15
7. वही, पृ.14
8. वही, पृ.18
9. वही, पृ.17
10. वही, पृ.14
11. वही, पृ.30
12. वही, पृ.15
13. वही, पृ.12
14. दुष्यंतकुमार, जलते हुए वन का वसंत, अनादि प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.23
15. वही, पृ.43
16. दुष्यंतकुमार, सुर्य का स्वागत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1957, पृ.11
17. दुष्यंतकुमार, जलते हुए वन का वसंत, अनादि प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.10
18. वही, पृ.11
19. दुष्यंतकुमार, साये में धूप, पृ.57

हिंदी फ़िल्मों में गीत और ग़ज़ल का महत्व

प्रा. डॉ. सतीश दत्तात्रय पाटील
सहयोगी प्राध्यापक, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग,
धनाजी नाना महाविद्यालय, फैजपुर (महाराष्ट्र)
ई-मेल - padmajsp319@gmail.com
मो.नं.8698348854

सारांश:

हिंदी फ़िल्मों में गीत और ग़ज़ल कथा–निर्माण तथा भाव–अभिव्यक्ति के अत्यंत महत्वपूर्ण साधन हैं। भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में संगीत और काव्य गहराई से जुड़े रहे हैं, और फ़िल्मों ने इसी विरासत को आधुनिक माध्यम से लोकप्रिय बनाया। फ़िल्मी गीत न केवल कथा को आगे बढ़ाते हैं, बल्कि वे चरित्रों की भावनाओं, सामाजिक संदेशों और सांस्कृतिक मूल्यों को भी संवेदनात्मक रूप से व्यक्त करते हैं।

ग़ज़ल, जो उर्दू काव्य–परंपरा से निकली एक सूक्ष्म काव्य–शैली है, हिंदी फ़िल्मों में विशेष स्थान रखती है। 1950–80 के दशक में फ़िल्मी ग़ज़लों ने संगीत को साहित्यिक और भावनात्मक ऊँचाई प्रदान की। तलत महमूद, रफ़ी, जगजीत सिंह, लता मंगेशकर जैसे कलाकारों ने ग़ज़ल को व्यापक जन–स्वीकार्यता दिलाई।

उत्तर–आधुनिक और डिजिटल युग में जहाँ पॉप–संस्कृति और तेज़ संगीत ने फ़िल्मी ग़ज़लों की संख्या घटाई है, वहीं स्वतंत्र संगीत–निर्माण और डिजिटल मंचों पर ग़ज़ल का पुनरुत्थान भी दिखाई देता है।

समग्र रूप से, गीत और ग़ज़ल हिंदी सिनेमा की पहचान हैं; वे केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि सामाजिक–सांस्कृतिक विरासत, भावनात्मक अभिव्यक्ति और साहित्यिक सौंदर्य के संवाहक भी हैं।

बीज शब्द - गीत, ग़ज़ल, हिंदी फ़िल्में, संगीत–काव्य, भाव–अभिव्यक्ति, सांस्कृतिक परंपरा, फ़िल्मी ग़ज़ल (1950–80), डिजिटल युग, पुनरुत्थान।

प्रस्तावना:

भारतीय सिनेमा, विशेष रूप से हिंदी फ़िल्में, अपनी विशिष्ट संगीत परंपरा के कारण विश्वभर में पहचानी जाती हैं। अन्य देशों के फ़िल्म उद्योगों में जहाँ गीत-संगीत फ़िल्म का एक छोटा भाग होते हैं, वहीं हिंदी सिनेमा में गीत, संगीत, काव्य–संवेदना और भाव–अभिव्यक्ति कहानी का अनिवार्य अंग माने जाते हैं। गीत और ग़ज़ल न केवल मनोरंजन का साधन हैं, बल्कि वे फ़िल्म की कथा, चरित्र निर्माण और भावनात्मक वातावरण को भी गहराई प्रदान करते हैं।

इस आलेख का उद्देश्य हिंदी फ़िल्मों में गीत और विशेष रूप से ग़ज़ल की परंपरा, उनका विकास, उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक भूमिका तथा आज के संदर्भ में उनके महत्व का विश्लेषण करना है।

1. भारतीय सिनेमा का संगीत–काव्य परंपरा से संबंध

भारतीय समाज में संगीत और काव्य प्राचीन काल से ही जीवन का अभिन्न हिस्सा रहे हैं—चाहे वह वैदिक मंत्र हों, भक्तिकाल के पद, सूफ़ी संगीत, ध्रुपद, ठुमरी या लोकगीत। फ़िल्में, एक आधुनिक माध्यम होने के बावजूद, इस संगीतमय परंपरा को न केवल आगे बढ़ाती हैं, बल्कि उसे लोकप्रिय संस्कृति तक विस्तारित करती हैं।

जब 1931 में भारत की पहली बोलती फ़िल्म 'आलम आरा' आई, तो उसके साथ ही फ़िल्मों में गीतों का युग प्रारंभ हो गया। उस समय तकनीकी सीमाएँ थीं; संवाद और दृश्य के माध्यम से कथा को पूरी तरह व्यक्त करना कठिन था, इसलिए गीतों का सहारा लिया गया। लेकिन धीरे–धीरे गीत कथानक का स्वाभाविक और सशक्त अंग बन गए।

2. फ़िल्मी गीत: कथा–निर्माण और भाव–अभिव्यक्ति का माध्यम

2.1 कथा की प्रगति में योगदान

फ़िल्मी गीत केवल मनोरंजन नहीं करते; वे कहानी को आगे बढ़ाते हैं, घटनाओं और भावों को संक्षेप में प्रस्तुत करते हैं।

उदाहरण के लिए:

किसी प्रेम–कथा में गीत दो पात्रों के बीच विकसित होते रिश्ते को सहज रूप में प्रस्तुत करता है।

किसी सामाजिक मुद्दे वाली फ़िल्म में गीत व्यंग्य या चेतना का माध्यम बन सकता है।

भाव–परिवर्तन या चरित्र–विश्लेषण को भी गीत के माध्यम से बेहद प्रभावी ढंग से दिखाया जाता है।

2.2 भावनात्मक वातावरण का निर्माण

गीतों का संगीत, राग–रचना, शब्द–चयन और गायकी—ये सभी मिलकर एक ऐसा भाव–जगत रचते हैं जिससे दर्शक गहरे स्तर पर जुड़ पाता है।

उदाहरणतः विरह-गीतों में धीमी गति, कोमल सुरों और दर्दभरी आवाज़ का संयोजन दर्शकों के भीतर गहन सहानुभूति उत्पन्न करता है।

3. फ़िल्मी गीतों का काव्य–बोध और भाषा–संवेदना

हिंदी फ़िल्मों के गीतों ने हिंदी–उर्दू कविता को एक व्यापक मंच दिया। शायर और कवि—जैसे साहिर लुधियानवी, शकील बदायूंनी, मजरूह सुल्तानपुरी, गुलज़ार, आनंद बख्शी, नजीर अकबराबादी और जावेद अख़्तर—ने फ़िल्म गीतों को साहित्यिक ऊँचाई प्रदान की।

गीतों में प्रयुक्त भाषा केवल साधारण बोलचाल की नहीं होती; उसमें लय, चित्रात्मकता, भावनात्मक गहराई और साहित्यिक सौंदर्य उपस्थित रहता है।

यह गीतों को सामान्य जन–संस्कृति और साहित्य के बीच एक सेतु बनाता है।

4. हिंदी फ़िल्मों में ग़ज़ल परंपरा

4.1 ग़ज़ल की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

ग़ज़ल मूलतः अरबी–फ़ारसी परंपरा से विकसित होकर भारतीय उपमहाद्वीप में उर्दू ज़बान के माध्यम से फली–फूली। ग़ज़ल की विशेषता उसकी बहर (छंद), क़ाफ़िया, रदीफ़ और भाव–गहनता है।

प्रेम, विरह, दर्द, दर्शन, समाज—इन सभी विषयों को ग़ज़ल ने एक अनोखी शालीनता और सूक्ष्मता के साथ अभिव्यक्त किया है।

4.2 हिंदी फ़िल्मों में ग़ज़ल का प्रवेश

1950 और 60 के दशक में ग़ज़ल शैली गंभीर रूप से फ़िल्मों में स्थापित हुई। तलत महमूद, मुकेश, मोहम्मद रफ़ी, मन्ना डे और बाद में जगजीत सिंह तथा पंकज उधास जैसे कलाकारों ने फ़िल्मी ग़ज़लों को लोकप्रियता की ऊँचाइयों पर पहुँचाया।

उनकी आवाज़ की नफ़ासत, नज़ाकत और शब्दों की तहदार प्रस्तुति ने फ़िल्मी ग़ज़लों को एक अलग पहचान दी। उदाहरण के रूप में अनेक क्लासिक फ़िल्मों में ग़ज़लें केवल गीत नहीं, बल्कि कथानक की संवेदनशीलता का महत्वपूर्ण हिस्सा बनीं।

5. फ़िल्मी ग़ज़लों का सौंदर्य और सांगीतिक विशेषताएँ

5.1 शब्द–सौंदर्य और शेरियत

फ़िल्मी ग़ज़लों में शायरी को इस तरह ढाला जाता है कि वह फ़िल्म की कथा–प्रस्तुति के अनुकूल रहे। इसमें प्रयुक्त भाषा अक्सर उर्दू की नज़ाकत और हिंदी की सरलता का मेल होती है, जिससे ग़ज़ल व्यापक जन–समुदाय तक पहुँच पाती है।

5.2 राग–आधारित संगीत

ग़ज़लें प्रायः रागों पर आधारित होती हैं—जैसे पीलू, यमन, दरबारी, भीमपलासी—जो उनके भाव–विलास को और अधिक प्रभावी बनाते हैं।

संगीत–निर्देशक ग़ज़ल के पारंपरिक ढाँचे को बनाए रखते हुए फ़िल्मी संदर्भ के अनुरूप उसकी लय और गति को अनुकूलित करते हैं।

5.3 गायकी की विशेष भूमिका

ग़ज़ल गायकी में स्वर की कोमलता, मुरकियों की महीनता और उर्दू अदायगी की शैली अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। तलत महमूद की ‘कोमल कंपायमान आवाज़’, रफ़ी की मधुरता, लता मंगेशकर की नफ़ासत और जगजीत सिंह की गहराई—इन सबने ग़ज़ल को भावनात्मक ऊँचाई दी।

6. सामाजिक–सांस्कृतिक प्रभाव

6.1 जन–चेतना और भाव–संवेदना का विस्तार

फ़िल्मी ग़ज़लों और गीतों ने आम जनता को साहित्यिक भाषा से परिचित कराया।

कई ऐसे शब्द—जैसे "ग़म", "वफ़ा", "सबा", "निगाह", "ख़याल"—जनमानस की भाषा में स्थायी हो गए क्योंकि वे फ़िल्मी ग़ज़लों के माध्यम से लोकप्रिय हुए।

6.2 प्रेम और भावनाओं की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति

भारत में प्रेम की अभिव्यक्ति में गीतों और ग़ज़लों का प्रभाव अत्यंत गहरा है।
प्रेम, विरह, तड़प, समर्पण जैसे भाव फ़िल्मी गीतों के माध्यम से एक संतुलित, सांस्कृतिक और सौम्य रूप में अभिव्यक्त होते हैं।
इससे समाज में प्रेम–अभिव्यक्ति की एक शालीन परंपरा विकसित हुई।

6.3 विविधता और साझा संस्कृति

हिंदी फ़िल्मी संगीत ने हिंदी, उर्दू, संस्कृत, फ़ारसी और लोकभाषाओं के शब्दों को एक साथ जोड़ा।
इसने भारतीय समाज की विविधता को एकता के भाव में पिरोने का कार्य किया।
फ़िल्मी ग़ज़लें खासकर हिंदी–उर्दू सांझी संस्कृति की प्रतीक हैं।

7. उत्तर–आधुनिक काल: गीतों और ग़ज़लों की बदलती भूमिका

7.1 1990 के बाद का परिवर्तन

उदारीकरण के बाद फ़िल्मों का सौंदर्यशास्त्र बदला। तेज़ रफ़्तार जीवन, पॉप–संस्कृति और बाज़ारवाद के प्रभाव से गीतों की संरचना में भी बदलाव आया।
कई फ़िल्मों में गीत अब केवल प्रमोशनल तत्व बन गए, न कि कथा की अनिवार्यता।

7.2 ग़ज़ल परंपरा का क्षरण

फ़िल्मों में पारंपरिक ग़ज़लें कम होती गईं। इसका कारण है—
संगीत की पॉप–डिस्को प्रवृत्ति
युवा दर्शकों की तेज़ धुनों की ओर बढ़ती रुचि
ग़ज़ल के लिए आवश्यक भाषा–शैली और काव्य–संवेदना में कमी

फिर भी, कुछ फ़िल्मों में ग़ज़ल शैली का पुनरागमन देखा गया है। आधुनिक संगीत–निर्देशक और गीतकार नई व्याख्याओं के माध्यम से ग़ज़ल को पुनर्जीवित कर रहे हैं।

8. डिजिटल युग में गीत और ग़ज़ल का भविष्य

OTT प्लेटफॉर्म और यूट्यूब की लोकप्रियता ने फ़िल्मी संगीत को पुनः केंद्रबिंदु बनाया है।
आज ग़ज़लें फ़िल्मों में कम सही, पर स्वतंत्र एल्बम, लाइव कॉन्सर्ट और डिजिटल रिलीज़ के रूप में व्यापक लोकप्रियता पा रही हैं।
कई युवा कलाकार—जैसे निधि नारायण, प्रणव चावला, रफाकत अली खान आदि—नवाचार करते हुए ग़ज़ल को नई पीढ़ी तक पहुँचा रहे हैं।

डिजिटल स्पेस ने दर्शकों को विकल्प दिया है कि वे फ़िल्मी गीतों से आगे बढ़कर अलग–अलग शैलियों के संगीत का आनंद ले सकें। इससे ग़ज़ल का पुनरुत्थान संभव हुआ है।

निष्कर्ष

हिंदी फ़िल्मों में गीत और ग़ज़ल का महत्व केवल मनोरंजन तक सीमित नहीं है। वे भारतीय सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन के दर्पण हैं; प्रेम, पीड़ा, संघर्ष, संवेदना और मानवीय संबंधों की सूक्ष्मतम भावनाओं को व्यक्त करने का माध्यम हैं। ग़ज़ल ने जहाँ फ़िल्म गीतों को साहित्यिक ऊँचाई दी, वहीं गीतों ने फ़िल्मी कहानी को भावनात्मक आधार प्रदान किया।
यद्यपि आधुनिक काल में संगीत–रुझानों में परिवर्तन हुआ है, फिर भी गीत और ग़ज़ल की परंपरा हिंदी फ़िल्मों का हृदय बनी हुई है।
उनकी साहित्यिकता, सौंदर्य और भाव–गहनता उन्हें सदैव प्रासंगिक बनाती रहेगी। भविष्य में भी, चाहे किसी भी रूप में, गीत और ग़ज़ल हिंदी सिनेमा के सांस्कृतिक पहचान–चिन्ह बने रहेंगे।

संदर्भ सूची

1. चटर्जी, गोविंद. भारतीय सिनेमा का इतिहास. नई दिल्ली: राष्ट्रीय पुस्तक न्यास।
2. देसाई, मीना. हिंदी फिल्म संगीत: परंपरा और परिवर्तन. मुंबई: राजकमल प्रकाशन।

ISSN : 2581-8848

3. त्रिपाठी, रश्मि. उर्दू ग़ज़ल और भारतीय फिल्म संगीत. दिल्ली: आधार प्रकाशन।
4. कपूर, आनंद. Indian Film Songs and their Cultural Influence. Oxford University Press.
5. नज़ीर, शाहिद. The Urdu Ghazal Tradition in Modern Media. अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय।
शोध–पत्र / आलेख
6. शर्मा, अमिता (2015). "हिंदी फिल्मों में संगीत की कथा–भूमिका". भारतीय जनसंचार समीक्षा, 12(3), 45–60.
7. खान, ताहिर (2017). "फ़िल्मी ग़ज़लें: सांस्कृतिक सौंदर्य और परिवर्तन". उर्दू अध्ययन पत्रिका, 8(1), 90–107.
8. Verma, P. (2019). "Narrative Functions of Songs in Bollywood Cinema". Journal of South Asian Media Studies, 4(2), 122–139.
वेब स्रोत
9. Indian Cinema Heritage Foundation. "Evolution of Hindi Film Music."
10. Sangeet Natak Akademi Archives. "Ghazal and Its Adaptation in Film Music."
11. FTII Documentation Centre. "Role of Poets and Lyricists in Hindi Cinema."
फ़िल्में (उद्धरण योग्य उदाहरण के रूप में)
12. पाकीज़ा (1972) – निर्देशन: कमाल अमरोही।
13. मिर्ज़िया (2016) – जिसमें आधुनिक शैली में ग़ज़ल–तत्व प्रयुक्त हैं।
14. आशिकी (1990) – कथानक–आधारित गीतों की लोकप्रिय मिसाल।
15. सरफ़रोश (1999) – फ़िल्मी ग़ज़ल "होशवालों को खबर क्या" (जगजीत सिंह)।

*****

ISSN : 2581-8848

लोकगीत, साहित्य और संस्कृति

प्रा. डॉ. ऐनुर एस. शेख
हिंदी विभागाध्यक्षा,
कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय, राहाता
तहसील: राहाता, जिला: अहिल्यानगर
भ्रमणध्वनि: 9011449636
Email: ainurinamdar28@gmail.com

शोध आलेख सारांश:

लोगगीत का अर्थ लोगों के गीत। घर, नगर, गाँव के लोगों के अपने गीत होते है। लोकगीतों में प्राचीन परंपराएँ, रीतिरिवाज, धार्मिक एवं सामाजिक जीवन के साथ अपनी संस्कृति दिखाई देती है। लोगगीतों में ऋतु संबंधीगीत, संस्कार गीत, शादी गीत, जनगीत आदि आते हैं। साहित्य की प्रमुख विधाओं में लोगगीतों का स्थान सर्वोपरि है। लोगगीत को किसी समाज की आत्मा माना जाता है। साहित्य की अन्य विधा की भाँति लोक गीत भी संस्कृति के निर्माण और संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। लोकगीत भाषा, लय और प्रतीकों के माध्यम से सामुदायिक एकता तथा सांस्कृतिक पहचान को सशक्त करते हैं। लोकगीत साहित्य और संस्कृति के बीच सेतु का कार्य कराते है।

भारतीय लोकजीवन की आत्मा उसके लोकगीतों में बस्ती है। लोकगीतों का साहित्यिक स्वरुप मौखिक परंपरा से विकसित हुआ है, इसलिए इसमें भाषा की सरलता, भाव की गहराई और सामूहिक, सृजनशीलता का अनुष्ठा संगम देखने को मिलता है। सांस्कृतिक दृष्टि से लोकगीत समाज के धार्मिक अनुष्ठानों, सामाजिक प्रथाओं, कृषि परंपराओं, स्त्री जीवन, प्रेम-विरह और लोकआस्था से जुडे हैं। वे लोकजीवन की संस्कृति को संरक्षित करने के साथ-साथ उसे अगली पीढियों तक पहुँचाने का कार्य करते हैं। लोकगीत न केवल संस्कृति के संवाहक है, बल्कि स्वयं साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा के रुप में सांस्कृतिक इतिहास को जीवंत बनाए रखते है।

बीज शब्द: लोकगीत, साहित्य, संस्कृति, लोकजीवन, दस्तावेज, कलात्मक, आस्मिता आदि

प्रस्तावना:

भारतीय संस्कृति का मूल स्वर लोकजीवन में निहित है, और लोकजीवन की आत्मा उसके लोकगीतों में अभिव्यक्त होती है। लोकगीत किसी समाज की भावनाओं, परंपराओं, रति-रिवाजों तथा जीवन-दर्शन का सजीव चित्र प्रस्तुत करते हैं। ये गीत उस समाज की सामूहिक चेतना के प्रतीक हैं, जो पीढी-दर-पीढी या मौखिक रस से संप्रेषित होकर आज की जनमानस में जीवित हैं। ''लोकसाहित्य वो साहित्य है, जिसे लोकजीवन ने अपने दीर्घ अनुभव, आस्था और सांस्कृतिक विश्वासों के आधार पर गढा है।''1

लोकगीत केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं, बल्कि सांस्कृतिक दस्तावेज भी हैं। इसमें जीवन के प्रत्येक प्रसंग जन्म, विवाह, उत्सव, श्रम, प्रेम, विरह और मृत्यु का कलात्मक व आत्मीय चित्रण मिलता है। लोकगीतों के माध्यम से हम किसी समुदाय की सांस्कृतिक एकता, सामाजिक संरचना और नैतिक मूल्यों की झलक प्राप्त कर सकते हैं। साहित्य और संस्कृति का हमेशा घनिष्ठ संबंध रहा है। जहाँ साहित्य समाज की संवेदनाओं को शब्द देता है, वही संस्कृति इन संवेदनाओं को रुप और दिशा प्रदान करती है। इस दृष्टि से लोकगीत साहित्य का वह स्वरुप हैं जो समाज की आत्मा को सबसे निकट से स्पर्श करता है।

भारतीय संस्कृति की जडे उसकी लोकपरंपराओं में गहराई तक पैठी हुई है। भारत जैसे विविधता पूर्ण देश में लोकजीवन और लोकसंस्कृति समाज की वास्तविक पहचान हैं। लोकगीतों में मानव जीवन के हर रंग-खुशी, दुख, श्रम, प्रेम, करुणा, आस्था और विश्वास की सहज अभिव्यक्ति होती है। साहित्य जहाँ समाज की चेतना को शब्दों में ढालता है, वहीं संस्कृति उस चेतना का आचरणिक रुप प्रस्तुत करती है। लोकगीत इस संबंध का सर्वाधिक प्रामाणिक उदाहरण है, क्योकि ये उस समाज की अस्मिता, भावनात्मक एकता और सांस्कृतिक निरंतरता के प्रतीक हैं।

लोकगीत:

लोकगीत 'आर्येत्तर सभ्यता की वेदश्रुति', समूची संस्कृति के पहरेदार, किसी भी राष्ट्र की संस्कृति को प्रदीप्त करनेवाली सुरीली बानगी है। राष्ट्रजीवन की सत्यकथा जानने का सबसे प्रामाणिक मार्ग लोकगीत ही है। लोकगीत मनुष्य की जटायु वृत्तियों

 ISSN : 2581-8848

को जगाकर जीवन के अकृत्रिम और सहज आन्तरिक सौंदर्य से उसे जोडता है, बुध्दि को हृदय का आधार देता है, जीवन के गुलमर्ग को कश्मीर बनाता है। बुध्दि की बारुद गन्ध लोकगीत में आकर फूल छन्द बनकर महकने लगती है।

प्रसिध्द युरोपीय विद्वान गेटे ने ''लोकगीतों को उच्चकोटि की कविता मानते हुए इसे सत्य और वास्तविक कविता कहा है।'' 2

लोकगीत का शाब्दिक अर्थ है – जनमानस का गीत, जन-जन का गीत, जन-मानस की आत्मा में रचा-बसा गीत। अर्थात् जो गीत सम्पत्ति की तरह विरासत में मिले, वहीं लोकगीत हैं। मौखिक परम्परा का अवगाहन करते सहजानुभूति से सम्पन्न ये लोकगीत किसी भी जात, समुदाय, राष्ट्र की सबसे बडी पहचान हैं। लोकगीत वास्तव में आत्मबल से अनुप्राणित होने से संस्कृति के प्रतीक है।

लोकगीतों का सभी दृष्टियों में अक्षुण्ण महत्व है। ऐतिहासिक दृष्टि हो या पौराणिक अथवा सांस्कृतिक, राजनीतिक हो या सामाजिक, भौगोलिक, आर्थिक, धार्मिक, भाषा तात्विक, मनोवैज्ञानिक, नैतिक सभी दृष्टियों से लोकगीत भारतीय मानस का गतिशील रक्त है। लोकगीतों के माध्यम से राष्ट्रीय एकता का सन्देश जन-जन तक पहुँचता रहा ।

लोकगीत की परिभाषा :

''लोकगीत किसी क्षेत्र विशेष की जनता के सामूहिक अनुभवों के सहज और स्वाभाविक गीत है। इनमें कृत्रिमता नहीं होती; यह लोक की चेतना और संस्कृति के दर्पण है।''3

''लोकगीत लोकसमाज की सामूहिक सृजना है। इसका रचयिता कोई व्यक्ति नहीं, बल्कि संपूर्ण समाज होता है। लोकजीवन, श्रम, उत्सव और संस्कृति का प्रतिबिंब इनमें मिलता है।''4

लोकगीत और साहित्य का संबंध:

लोकगीतों ने भारतीय साहित्य को गहराई से प्रभावित किया है। विशेषत: हिंदी साहित्य के भक्ति, रीतिकाल और आधुनिक काल में लोकधारा की स्पष्ट छाप देखी जा सकती है। भक्तिकाल में कबीर, सूर, तुलसी, मीराबाई जैसे कवियों ने लोकभाषा और लोकजीवन को साहित्य का सौंदर्य पक्ष विकसित हुआ जबकि आधुनिक काल में कवि नागार्जुन, शमशेर, केदारनाथ अग्रवाल और रमेश रंजन जैसे रंचनाकारों ने लोकभाषा और लोकसंवेदना को आधुनिक चेतना से जोडा है। ''लोकगीत वे गीत है जो किसी क्षेत्र विशेष के सामान्य लोगों द्वारा सामूहिक रुप से रचे जाते है, पीढी दर पीढी मौखिक परंपरा से चले आते हैं तथा समाज की सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक अनुभूतियों को अभिव्यक्त करते हैं।''5

लोकगीतों की भाषा, लय और बिंब साहित्यिक सृजन के लिए, प्रेरणा, स्त्रोत रहे हैं। साहित्य ने लोकगीतों के सौंदर्य संगीतात्मकता और आत्मीयता को आत्मसात कर समाज की व्यापक अभिव्यक्ति के नया आयाम दिया है। लोकगीत साहित्य को जीवन की सच्चाइयों से जोडते हैं, जबकि साहित्य लोकगीतों का विचार और कलात्मकता प्रदान करता है। हिंदी साहित्य ने लोकगीतों से प्रेरणा ली है। लोकगीत समाज का सांस्कृतिक धरोहर हैं। ऐसा कहा जाता है, ''लोकगीतों में समाज के जीवन-मूल्यों की जडे बहुत गहरी है, ये लोक के आत्मा के स्पंदन हैं।''6 लोकगीतों के माध्यम से सामूहिक एकता, नैतिकता और सामाजिक चेतना का प्रसार होता है। लोकगीत और साहित्य दोनों एक दूसरे के पूरक हैं –लोकगीत साहित्य को जीवंतता देते है और साहित्य लोकगीतों का दायित्व प्रदान करता है।

संस्कृति:

भारतीय संस्कृति कायिक-दैहिक संस्कृति नहीं है, आन्तरिक संस्कृति है – आत्मा की संस्कृति है। संस्कृति के कल्प बीजों में यहाँ भारतीय लोक मानस अपना सहज विकास करता है। लोक चैतन्य लोक संस्कृति को सदैव रसीय और सुवासि रखता है। लोकसंस्कृति के अन्तर्गत वे सभी देव-देवता, धार्मिक विधि-विधान अथवा अनुष्ठान, विश्वास, ज्ञान-विज्ञान, कला साहित्य, संगीत कहावतें, मुहावरे, लोककथाएँ, नाटक आदि आते हैं। डॉ. नगेन्द्र की दृष्टि में, ''संस्कृति मानव जीवन की वह आत्मा है जहाँ उसके प्राकृत राग-द्वेषों का परिमार्जन हो जाता है।''7

लोकगीत और संस्कृति का संबंध:

संस्कृति किसी समाज की जीवन पध्दति, विश्वास, आचार-विचार और परंपराओं का प्रतिबिंब होती है। लोकगीत इस संस्कृति के जीवंत वाहक है। इनमें धार्मिक आस्था, नैतिक मूल्य, सामाजिक संबंध, स्त्री-पुरुष के भावनात्मक आयम तथा प्रकृति और ऋतु के प्रति संवेदनाएँ व्यक्त होती है। ''लोकगीत केवल मनोरंजन नहीं सामाजिक अनुशासन और सांस्कृतिक धरोहर के संवाहक है।''8 लोकगीतों के माध्यम से हमें समाज के सामाजिक ढाँचे जातीय एकता, स्त्री की भूमिका और समुदाय की

 ISSN : 2581-8848

सामूहिकता की आत्मा का स्वर होते हैं। लोकगीत और संस्कृति का रिश्ता अत्यंत गहरा और बहुआयामी है। लोकगीत समाज के जीवन का दर्पण हैं। लोकगीतों में लोक आस्था और धार्मिक विश्वासों की झलक मिलती है। भारतीय दुख, प्रेम-विरह और सामाजिक स्थिति का सजीव चित्रण है। लोकगीत सांस्कृतिक एकता और सामूहिकता की भावना को सुदृढ करते हैं। नैतिक और जीवनमूल्यों की शिक्षा देते हैं। आधुनिकता के युग में सांस्कृतिक अस्मिता के प्रतीक बनते हैं।

निष्कर्ष:

भारतीय साहित्य, लोकगीत और संस्कृति एक घने वृक्ष की तरह है। लोकसाहित्य किसी भी राष्ट्र और सार्वभौम मानव संस्कृति की कालतीत धरोहर है। लोकसाहित्य, लोकगीत और लोक संस्कृति ने भारतीय जन-मानस में सदा सूर्य दीपों को प्रज्वलित रखा है, उनके अन्धकार पूर्ण पथों को अलोकमय बनाया है, जिनके रोशनी सत्रों को थामकर हर भारतीय अपनी संस्कृति और अस्मिता की रक्षा में सन्नध्द रहा और तमाम तरह के अन्धकारों के बावजूद मन से कभी परास्त नहीं हुआ। लोकसाहित्य में व्यक्त संस्कृति के अभिधान ही तो किसी भी राष्ट्र की अस्मिता का मेरुदण्ड होते हैं।

लोकगीत, साहित्य और संस्कृति का अभिन्न संबंध है। लोकगीतों में उस युग की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थिति का सजीव चित्रण मिलता है। लोकगीत केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं, बल्कि लोकमानस के इतिहास का दस्तावेज हैं। लोकगीत संस्कृति के संवाहक और लोकजीवन के दर्पण के रुप में देखा जा सकता है। लोकगीत आज भी हमारे जडो को जोडने का कार्य कर हैं। ये गीत हमें स्मरण कराते हैं कि हमारी पहचान केवल आधुनिकता में नहीं, बल्कि लोकमूल्यों में भी निहित है। जिन्होंने समाज को मानवीयता, सहयोग, प्रेम और समरसता का संदेश दिया। साहित्य के क्षेत्र में भी लोकगीतों ने अमिट प्रभाव छोडा है। इस प्रकार लोकगीत न केवल संस्कृति के संवाहक है, बल्कि साहित्यिक परंपरा की नींव भी हैं।

लोकगीत जहाँ संस्कृति को जीवंत बनाए रखते हैं, वहीं साहित्य इन लोकभावनाओं को स्थायित्व प्रदान करता है। दोनों मिलकर भारतीय समाज की सांस्कृतिक एकता, विविधता और मानवीय मूल्यों की रक्षा करते हैं।

संदर्भ:

1. हिंदी लोकसाहित्य- डॉ. नगेंद्र, पृष्ठ क्र.15
2. लोकसाहित्य – डॉ. सुरेश गौतम, पृष्ठ 67
3. लोकसाहित्य की भूमिका- हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ 38
4. भारतीय लोकसाहित्य- डॉ. रामविलास शर्मा, पृष्ठ 52
5. हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ 123-124
6. आलोक पर्व, प्रयाग : डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ 112
7. लोकसाहित्य- डॉ. सुरेश गौतम, पृष्ठ 235
8. भारतीय लोकसंस्कृति का स्वरुप – डॉ. जगदिश गुप्त, पृष्ठ 89

*****

डॉ ज़हीर कुरैशी की गजलों में सामाजिक चेतना

प्रा. शौकत आतार
हिंदी विभाग प्रमुख,
आर्टस, कॉमर्स ॲण्ड सायन्स कॉलेज,
नागठाणे, जि.सातारा
मोबाईल- 8806527758

शोध आलेख सारांश :

दुष्यंतकुमार के बाद हिंदी गजल परंपरा को आगे बढ़ाने में जिन गजलकारों ने प्रयास किए उनमें डॉ जहीर कुरैशी का नाम अग्रगण्य है। समसामयिक विभिन्न समस्याओं को उन्होंने अपनी गजलों में अभिव्यक्त किया है। उनकी रचनाओं में सामाजिक समस्याओं एवं राष्ट्रीय चेतना का स्वर मुखर हुआ है। मानवता के विभिन्न बिंदुओं को उनकी गजल छूती है। वे गहरी मानवीय निकटता और व्यापक सरोकारों के गझलकार है। डॉ जहीर कुरैशी जी ने अपनी गजलों के माध्यम से आधुनिक जीवन की विडंबना, मनुष्य की स्वार्थ केंद्रित प्रवृत्ति, आधुनिक सभ्यता से उपजी समस्याएँ, सामाजिक विषमता, सर्वहारा की पीड़ा, बेकारी, मूल्यहीनता अशिक्षा, नारी की दयनीय स्थिति, दलित,वंचित तथा पीड़ितों की वेदना, रिश्तों में आयी संवेदनहीनता, पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव सामाजिक विसंगतियों आदि को प्रामाणिकता से अभिव्यक्त किया है। उनकी गजलें आम आदमी की पीड़ा को, व्यथा, वेदना को संवेदनशीलता के साथ व्यक्त करती है।

बीज शब्द : स्वार्थकेंद्रित प्रवृत्ति, सामाजिक विसंगतियाँ, विद्रूपताएँ, प्रेम, दया, सहनुभूति, ममता आदि।

हिंदी गजल सिर्फ प्रेम का आलाप नहीं बल्कि समाज का दु:ख, दर्द उसके कथ्य का विषय रहा है। विशेषत: दुष्यंतकुमार ने इस प्रकार की परंपरा का प्रारंभ किया। दुष्यंतकुमार के बाद हिंदी गजल परंपरा को आगे बढ़ाने में जिन गजलकारों ने प्रयास किए उनमें डॉ जहीर कुरैशी का नाम अग्रगण्य है। समसामयिक विभिन्न समस्याओं को उन्होंने अपनी गजलों में अभिव्यक्त किया है। डॉ. जहीर कुरैशी के 'लेखनी के स्वप्न'(1975), ''एक टुकड़ा धूप'(1979), 'चाँदनी का दु:ख'(1986), 'समंदर ब्याहने आया नहीं है'(1992), 'भीड़ में सबसे अलग'(2003), 'पेड़ तन कर भी नहीं टूटा'(2010) आदि गजल संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। उनकी रचनाएं अंग्रेजी, मराठी, गुजराती, पंजाबी आदि विभिन्न भाषाओं में अनूदित हो चुकी है। उनकी रचनाओं में सामाजिक समस्याओं एवं राष्ट्रीय चेतना का स्वर मुखर हुआ है। मानवता के विभिन्न बिंदुओं को उनकी गजल छूती है। वे गहरी मानवीय निकटता और व्यापक सरोकारों के गझलकार है।

साहित्यकार समाज से संपृक्त होता है। समाज में घटित घटनाओं से उसका संवेदनशील मन प्रभावित होता है। वह घटनाएं, प्रसंग उसे अंदर से अस्वस्थ करती हैं। वह अस्वस्थता लेखन के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। इस संदर्भ में डॉ. जहीर कुरैशी कहते हैं, "कविता मेरी उस तलमिलाहट की अभिव्यक्ति है, जो वर्तमान परिवेश में बिखरी हुई विसंगतियों-विद्रुपताओं के कारण मुझमें बूँद बूँद जमा होती रही है। ऐसा ही जीवन क्षणों का स्पंदन ये मेरी गजलें हैं।"1 अर्थात वर्तमान परिवेश से उद्भूत तिलमिलाहट उनकी गजल का कारण है। वर्तमान में मनुष्य सिर्फ अपने लिए सोच रहा है। जंगली जानवर की तरह उसकी स्वार्थकेंद्रित प्रवृत्ति बढ़ रही है। मनुष्य की इसी पाशविकता की वृत्ति पर वे कहते हैं-

"जंगलों से चले जंगली जानवर
शहर में आ बसे जंगली जानवर
आदमी के मुखौटे लगाए हुए
एक औरत अकेली मिली जिस जगह
मर्द होने लगे जंगली जानवर।"2

औद्योगिक क्रांति के कारण नगरीकरण हुआ। मनुष्य रोजी रोटी की तलाश में शहर में आ बसा। मनुष्य आर्थिक सक्षम हुआ लेकिन स्वार्थी भी बना। उसमें संवेदनशीलता की जगह संवेदनहीनता बढ़ गई। वह आत्मकेंद्रित हुआ। इसी शहरीकरण के परिणामों को रेखांकित करते हुए वे कहते हैं-

"शहरों की पहचान स्वार्थ केंद्रितता
अपना है और अपनों से अनजान है शहर
सच पूछिए तो चेहरों की पहचान है शहर

रिश्तो के आईने में जहां टूटे हैं बार-बार
स्वार्थ की एक बेरहम चट्टान है शहर।" 3

नारी सदियों से अन्याय, अत्याचार का शिकार होती आयी है। पुरुषप्रधान संस्कृति में आज भी नारी को भोग वस्तु के रूप में देखा जा रहा है। जिस प्रकार भेड़िया हिंसा,लालच और धोके का प्रतीक है उसी प्रकार मनुष्य में भी भेड़िये जैसी प्रवृत्तियाँ दृष्टव्य होती है। वर्तमान की मनुष्य की नारी की ओर देखने की प्रवृत्ति के बारे में वे कहते हैं,

"औरतों के चरित्र को लेकर
मर्द का सोचना पुराना है
मौका मिलते ही सिर उठाएगा
आदमी भेड़िया पुराना है
आज के युग में 'कॉल गर्ल' सही,
तन का पेशा बड़ा पुराना है।"4

दलित, नारी एवं निर्बल पर सदियों से सबल वर्ग शोषण और अत्याचार करते आएं हैं। इन निर्बलों की मानसिक स्थिति, अंतर्मन का द्वंद्व, उनकी पीड़ा को व्यथा-वेदना को व्यक्त किया है। ताकतवर वर्ग के इस अंत्याचार को शब्दबद्ध करते हुए कहते हैं,

"निर्बल कोई भी हो -औरत, हरिजन अथवा शीश महल
निर्बल पर ताकतवर ने, हर युग में अत्याचार किया।"5

पद, प्रतिष्ठा और भौतिक जीवन की सुख-सुविधा में व्यक्ति अपनों को भूल जाता है। जिसमें उसे अपने माता-पिता भी याद नहीं आते-

"धूप मिट्टी हवा को भूल गए
बीज़् अपनी धरा को भूल गए
पद प्रतिष्ठा ने इतना बौराया
पुत्र अपने पिता को भूल गए।"6

अर्थात मनुष्य लालच, अहंकार और आधुनिक जीबनशैली के कारण रिश्तों को भूल जाता है। पुत्र ने अपने माता पिता के प्रति कृतघ्न हो जाना यह नैतिक मूल्यों का पतन है। जब पति पत्नी में कुछ कारणवश अलगाव हो जाता है तब उनके मासून तथा बेगुनाह बच्चों की जिंदगीपर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। उनमें भावनात्मक असुरक्षितता उत्पन्न होती है। इसका जिक्र करते हुए वे कहते हैं-

"हो गए जिस रोज पति-पत्नी अलग
मूक बचपन के कई टुकड़े हुएँ।"7

भारत में एक पुरानी कुप्रथा के रूप में सती प्रथा थी। जिसके कारण नारी उसका शिकार हो रही थी। राजाराम मोहन राय ने इस प्रथा के खिलाफ अभियान चलाकर उसे समाप्त करने में अहम भूमिका निभाई। लेकिन आज भी हम देखते हैं की नारी पर अन्याय अत्याचार का सिलसिला जारे है। वह आज भी अपने पति द्वारा पीड़ित होती है, जलाई जाती है। इस बारे में डॉ कुरैशी कहते हैं-

"कल सती होकर जली थी, आज पति के हाथ
बन गई जीवित जलाने की 'प्रथा' औरत।"8

पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव में आकर भारत के युवा अंधानुकरण कर रहे हैं। पश्चिमी सभ्यता बाहरी दिखावा है। लेकिन अंदरूनी खालीपन बढ़त ही जाता है। इसके बारे में वे कहते हैं,

"'शांति' को छोड़कर सभी कुछ है
पश्चिमी सभ्यता की आंख में।"9

वास्तव में शांति तो भारतीय संस्कृति में मूल्य के रूप में हैं। लेकिन दुर्भाग्य से युवाओं का उधर ध्यान नहीं है। डॉ. जहीर कुरैशी जी की गजलों के बारे में डॉ मधु खराटे जी के विचार दृष्टव्य हैं, "जहीर कुरैशी की गजलों में सामाजिक विसंगतियाँ, विद्रूपताएँ आम आदमी की जिंदगी आदि का चित्रण दिखाई देता है। नए प्रतीकों एवं बिंबों के माध्यम से उन्होंने आम आदमी की जिंदगी को व्याख्यायित करने का प्रयास किया है।"10 मकान, गाड़ी आदि अपनी इच्छाओं की पूर्ति हेतु मनुष्य कर्ज निकालत है।

 ISSN : 2581-8848

लेकिन वह किश्तों के बोझ से,ब्याज से वह आर्थिक दृष्टि से तंग आकर परेशान होता है। यही तंगी उसके जीवन में विष की तरह फैल जाती है-

"विष असर कर रहा है किश्तों में
आदमी मर रहा है किश्तों में
उसने ईक मुश्त ले लिया था ऋण
ब्याज को भर रहा है किश्तों में।"11

मनुष्य की बुद्धि दिन-ब-दिन विकसित हो रही है। उसका दायरा बढ़ रहा है। ज्ञान विज्ञान के अनेक क्षेत्र में काफी आविष्कार मनुष्य ने किए हैं। अपने भौतिक जीवन को काफी हद तक समृद्ध किया है। लेकिन दुर्भाग्य से मनुष्य अंदर से खोखला होता जा रहा है। मनुष्य का दिल सिमटता जा रहा है। जिसमें से प्रेम, दया, सहनुभूति, ममता, अपनापन आदि संवेदनाएं आदि गायब हो चुकी है। इस बारे में वे कहते हैं-

"बुद्धि जितनी अधिक हुई विकसित
दायरा दिल का और तंग हुआ"12

आज हम देखते हैं की स्वस्थ्य रहने के अनेक नुस्खे विभिन्न प्रसार माध्यमों में नजर आते हैं। स्वस्थ्य रहने के लिए बहुत सारे तैयारियां भी मनुष्य करता है। लेकिन विभिन्न कारणों से मनुष्य की शारीरिक, मानसिक बीमारियों में वृद्धि हो रही है।

"स्वस्थ रहने की कड़ी तैयारियों के साथ,
लोग जीवित हैं बहुत बीमारियों के साथ।"13

निष्कर्ष :

इस प्रकार हम निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं की डॉ जहीर कुरैशी जी ने अपनी गजलों के माध्यम से आधुनिक जीवन की विडंबना, मनुष्य की स्वार्थ केंद्रित प्रवृत्ति, आधुनिक सभ्यता से उपजी समस्याएँ, सामाजिक विषमता, सर्वहारा की पीड़ा, बेकारी, मूल्यहीनता अशिक्षा, नारी की दयनीय स्थिति, दलित, वंचित तथा पीड़ितों की वेदना, रिश्तों में आयी संवेदनहीनता, पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव सामाजिक विसंगतियों आदि को प्रामाणिकता से अभिव्यक्त किया है। उनकी गजलें आम आदमी की पीड़ा को, व्यथा, वेदना को संवेदनशीलता के साथ व्यक्त करती है।

संदर्भ :

1. डॉ. जहीर कुरैशी, एक टुकड़ा धूप, इंद्रप्रस्थ प्रकाशन,दिल्ली, प्र.सं.1979 पृ.7-8
2. डॉ. जहीर कुरैशी, चाँदनी का दु:ख, पराग प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1986 पृ. 22
3. डॉ. जहीर कुरैशी, एक टुकड़ा धूप, इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं.1979 पृ.16
4. डॉ. जहीर कुरैशी, चाँदनी का दु:ख, पराग प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1986, पृ. 44
5. डॉ. जहीर कुरैशी, समंदर ब्याहने नहीं आया है, अयन प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1992 पृ.11
6. डॉ. जहीर कुरैशी, चाँदनी का दु:ख, पराग प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1986, पृ.16
7. वही, पृ. 40
8. वही, पृ.68
9. वही, पृ. 70
10. डॉ मधु खराटे, साठोत्तरी हिन्दी गजल, विद्या प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2002, पृ.67
11. डॉ. जहीर कुरैशी, चाँदनी का दु:ख, पराग प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1986, पृ.18
12. डॉ. जहीर कुरैशी, समंदर ब्याहने नहीं आया है, अयन प्रकाशन नई दिल्ली प्र.सं.1992 पृ.64
13. डॉ. जहीर कुरैशी, चाँदनी का दु:ख, पराग प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1986, पृ.110

*****

लोकगीत, साहित्य और संस्कृति : एक बहुआयामी अध्ययन

रजनी साहू
sahuaditya.2002@gmail.com
9892096034

शोध सार:

लोकसंस्कृति और लोकगीत एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित होते हुए समाज की सांस्कृतिक चेतना के संवाहक बने रहते हैं। लोकगीत न केवल संस्कृति के परिचायक हैं, बल्कि वे समाज को उसकी परंपराओं, मूल्यों और जीवन-दृष्टि से निरंतर अवगत कराते हैं। भारत जैसे बहुभाषी और बहुसांस्कृतिक देश में लोकगीतों के माध्यम से 'विविधता में एकता' का स्वरूप अत्यंत सजीव रूप में प्रकट होता है। यहाँ विभिन्न प्रदेशों, भाषाओं और समुदायों के लोकगीत अपने-अपने रंगों और स्वरूपों में विकसित होते हुए भी सांस्कृतिक एकता के सूत्र में बंधे दिखाई देते हैं। यह कहा जा सकता है कि लोकगीत हमारी संस्कृति के जीवन–प्राण हैं, जिनसे हमारी जड़ें गहराई तक जुड़ी हुई हैं। इन्हीं लोकगीतों के माध्यम से हमारी सांस्कृतिक परंपरा न केवल सुरक्षित रहती है, बल्कि निरंतर पुष्पित–पल्लवित होकर आने वाली पीढ़ियों तक पहुँचती है।

बीज शब्द: लोकगीत संस्कृति, साहित्य, प्रकृति, मानव।

भूमिका

लोकगीत किसी समाज की सामूहिक चेतना, स्मृति और संवेदना का सबसे जीवंत रूप हैं। लोक गीत कब ,कैसे, किसने लिखे यह कहना अत्यंत कठिन है बस यह कह सकते हैं यह हमारी आत्मा का स्वर है । ये गीत लिखित परंपरा से पहले के हैं और श्रुति–स्मृति के सहारे पीढ़ी दर पीढ़ी प्रवाहित होते रहे हैं। लोकगीतों में मनुष्य का दैनिक जीवन, दिन -रात ,ऋतु–चक्र,(ग्रीष्म ,वर्षा,शरद, शीत, शिशिर, बसंत)प्रेम–विरह, उत्सव–शोक, आस्था–संघर्ष, प्रकृति–मानव संबंध और सामाजिक संरचना स्वाभाविक रूप से व्यक्त होती है। साहित्य जहाँ शिल्प और संरचना से गुजरता है, वहीं लोकगीत अनगढ़ होकर भी गहन होते हैं। संस्कृति लोकगीतों में केवल विषय नहीं, बल्कि स्वर, लय, प्रतीक और सामूहिक भागीदारी के रूप में उपस्थित रहती है।

बचपन में लोरी -नन्ही परी सोने चली-जैसे गीतों से बच्चों का सुखद नर्म बिछौना और उठने पर गीतों की बौछारें -उठो लाल अब आंखें खोलो

खेल गीत पोंशंम्पा बाई पोशंम्पा

रिश्तों की मर्यादा- चंदा मामा दूर के- बालमन को संस्कारों से सींचते लोक गीत

श्रम को साधते लोक गीत, प्रेम स्नेह से परत-दर-परत रिश्तों को संजाते संवारते लोकगीत, इस तरह न इनका कोई निश्चित दायरा है ना ही कोई नियम

बस यूं गुनगुनाते स्वर कब उस क्षेत्र की पहचान बन गए और हमारी संस्कृति के प्राण बन गए। लोक गीतों को किसी निश्चित कालखंड में समेटा नहीं जा सकता है। जब से मानवीय सभ्यता आई तभी से यह संवेदनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम बनी।

लोकगीत और संस्कृति का अंतर्संबंध

लोकगीत संस्कृति के जीवित दस्तावेज हैं। किसी क्षेत्र की भूगोलिक परिस्थिति, जलवायु, आर्थिक जीवन, खान–पान, वेश–भूषा, लोकविश्वास, रीति–रिवाज और सामूहिक मूल्य लोकगीतों में सहज रूप से उतर आते हैं। इसलिए लोकगीतों का अध्ययन वस्तुतः मानव–विज्ञान, समाज–विज्ञान और मनोविज्ञान का संयुक्त अध्ययन है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से लोकगीत अवचेतन की अभिव्यक्ति हैं—जहाँ भय, आशा, कामना, प्रतीक्षा और स्मृति स्वर बनकर उभरते हैं। सामूहिक गायन व्यक्ति को समुदाय से जोड़ता है और भावनात्मक उपचार का कार्य करता है।

बुंदेलखंड के लोकगीत

बुंदेलखंड के लोकगीत सूखा, संघर्ष, वीरता और प्रेम के गीत हैं। यहाँ की कठोर भौगोलिक परिस्थिति ने गीतों में धैर्य और करुणा भर दी है।

उदाहरण -बुंदेली कजरी, वैवाहिक आयोजन में बन्ना-बन्नी ,गारी गीत,फाग, इत्यादि ।

> "बरसे बदरिया सावन की,
> पिय बिन सूनी अँगनाई…"

ISSN : 2581-8848

यहाँ वर्षा केवल प्रकृति–घटना नहीं, बल्कि विरह–भाव की प्रतीक है। स्त्री–मन की प्रतीक्षा, खेत–खलिहान की आशा और जीवन–संघर्ष एक साथ व्यक्त होते हैं।

उलाहना गीत

"दोना काय नहीं लाय
दार बगर गई....."

पत्नी अपने पति से दोना नहीं लाने पर प्रेमपूर्वक उलाहना कर रही है। इसमें दांपत्य जीवन में संवादों की प्रगाढ़ता दिखाई देती है ।

छत्तीसगढ़ के लोकगीत

छत्तीसगढ़ के लोकगीतों में वन–संस्कृति, श्रम, सामूहिकता और प्रकृति–पूजा प्रमुख है। सुआ गीत, ददरिया, करमा यहाँ की पहचान हैं।

ददरिया का भाव:

“नदी किनारे मोर साजन,
बोलत मीठा बोल…”

यहाँ प्रेम सहज और लयात्मक है—न कोई आडंबर, न दार्शनिक बोझ। बस लय है स्पंदन है और आंदोलित होते हैं भाव की तरंगें ।मनोवैज्ञानिक रूप से यह सामूहिक आनंद और सरल जीवन–दृष्टि को दर्शाता है।

राजस्थान के लोकगीत

राजस्थानी लोकगीत मरुस्थलीय जीवन, वीरता, त्याग और नारी–संवेदना के गीत हैं। पणिहारी, पाबूजी की पड़, मांड प्रसिद्ध हैं।

पणिहारी गीत:

“पानी री पनिहारी,
घूमर घाले नार…”

यहाँ स्त्री श्रम करती हुई भी उत्सवधर्मिता रचती है। पानी जीवन है और गीत जीवन–संघर्ष में सौंदर्य की खोज।

उत्तर प्रदेश के लोकगीत

सोहर -जन्म–संस्कार से जुड़ा लोकगीत

“आज अवध में बाजे बधइया,
ललना जन्मे घर–घर खुशहाली छइया…”

यह गीत नवजात शिशु के जन्म, मातृत्व–आनंद और पारिवारिक उल्लास को अभिव्यक्त करता है।

कजरी -वर्षा और विरह से जुड़ा लोकगीत)

“कजरारी बदरिया घिर आई अँगन,
पिया बिन सूना लागे सावन…”

इसमें सावन, वर्षा, प्रकृति और स्त्री–विरह का भाव अत्यंत मार्मिक रूप में व्यक्त होता है।

गुजराती लोकगीत

गुजराती लोकगीतों में उत्सव, व्यापारिक संस्कृति, भक्ति और सामुदायिक नृत्य की झलक मिलती है। गरबा, रास, विवाह–गीत प्रमुख हैं।

गरबा पंक्ति:

“हम तो जंगल के मयूर हैं,
कंकर खाकर जीते हैं…”

यह प्रतीकात्मक पंक्ति स्वाभिमान, स्वावलंबन और ऋतु–चक्र की ओर संकेत करती है। कठिन जीवन में भी नृत्य और लय आशा का संचार करती है ।

पहाड़ी (हिमालयी) लोकगीत

हिमालयी लोकगीतों में प्रकृति–मानव का सहजीवन, प्रवास–विरह, ऋतु–उत्सव और आध्यात्मिकता मिलती है।

उदाहरण:

“नीरव उदास दुपहरी हो,

या रैण की दूसरी पहर…"

यहाँ एकांत और प्रकृति मिलकर मनुष्य के अंतर्मन को स्वर देते हैं। पहाड़ की ऊँचाई गीतों के स्वरों की ऊँचाई बन जाती है।

पंजाबी लोकगीत

पंजाबी लोकगीतों में उर्जा, प्रेम, शौर्य और सामाजिक विद्रोह है। टप्पे, माहिया, हीर–रांझा इसके उदाहरण हैं।

माहिया:

"चन्ना वे घर आ जा,
रात लंबी हो गई…"

यहाँ विरह संक्षिप्त किंतु तीव्र है मन की त्वरित अभिव्यक्ति, जो पंजाबी जीवन–लय से मेल खाती है।

असमिया लोकगीत

असमिया लोकगीत प्रकृति, कृषि और उत्सव से जुड़े हैं। बिहू गीत विशेष प्रसिद्ध हैं।

बिहू गीत:

"धान की बालियाँ हँसती हैं,
नदी गुनगुनाती है…"

यहाँ कृषि–जीवन का उल्लास और प्रकृति–संगीत एकाकार है। यह सांस्कृतिक समरसता का उत्कृष्ट उदाहरण है।}

मराठी लोकगीत

मराठी लोकगीतों में संत–परंपरा, श्रम–संस्कृति और सामाजिक चेतना प्रबल है। ओवी, लावणी, भारुड उल्लेखनीय हैं।

ओवी:

"चाकावर फिरता संसार,
आईच्या ओठी गाणं…"

यह स्त्री–जीवन, श्रम और मातृत्व की मनोवैज्ञानिक गरिमा को प्रकट करता है।

दक्षिण भारत के लोकगीत

दक्षिण भारत के लोकगीत तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम भाषाओं में विकसित हुए हैं तथा इनमें भक्ति, प्रकृति, श्रम और जीवन–संघर्ष की प्रधानता दिखाई देती है। ये लोकगीत कृषि, वर्षा, समुद्र, पर्व–त्योहार और पारिवारिक जीवन से गहराई से जुड़े होते हैं। तमिलनाडु के ओप्पारी, केरल के वडक्कन पाट्टुकल, आंध्र प्रदेश के बुर्रा कथा और कर्नाटक के जनपद गीत लोकभावना के सशक्त उदाहरण हैं। इन गीतों में देवी–देवताओं के प्रति आस्था के साथ–साथ सामान्य जनजीवन की पीड़ा और आशा भी स्वर पाती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ये गीत सामूहिक भावनाओं की अभिव्यक्ति तथा सामाजिक संतुलन बनाए रखने का माध्यम हैं।

मनोवैज्ञानिक और समाजशास्त्रीय दृष्टि लोकगीत सामूहिक अवचेतन की अभिव्यक्ति हैं।

इनमें भय (प्राकृतिक आपदाएँ, विरह)

आशा (ऋतु, फसल, मिलन)

पहचान (क्षेत्रीय स्वाभिमान)

उपचार (गायन–नृत्य द्वारा तनाव–मुक्ति)

समाजशास्त्रीय रूप से लोकगीत सामाजिक भूमिकाओं, नारी–स्थिति, वर्ग–संरचना और सांस्कृतिक मूल्यों का साक्ष्य हैं। लोकगीत, भाषा और सांस्कृतिक एकता भाषावैज्ञानिक दृष्टि से लोकगीत एक शब्द यात्रा हैं ।एक ही भाव अलग–अलग भाषाओं में रूपांतरित होता है। इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय संस्कृति की आत्मा एक है, भले ही अभिव्यक्ति बहुरंगी हो।

निष्कर्ष

लोकगीत साहित्य और संस्कृति के सेतु हैं। वे अतीत की स्मृति, वर्तमान की संवेदना और भविष्य की आशा को जोड़ते हैं। कश्मीर से कन्याकुमारी तक,बुंदेलखंड से असम, राजस्थान से पंजाब और गुजरात से पहाड़ तक—लोकगीत बताते हैं कि मनुष्य का मूल भाव समान है। इसलिए लोकगीतों का अध्ययन केवल साहित्यिक नहीं, बल्कि मानव–अध्ययन है।

लोकसंस्कृति और लोकगीत एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित होते हुए समाज की सांस्कृतिक चेतना के संवाहक बने रहते हैं। लोकगीत न केवल संस्कृति के परिचायक हैं, बल्कि वे समाज को उसकी परंपराओं, मूल्यों और जीवन-दृष्टि से निरंतर

 ISSN : 2581-8848

अवगत कराते हैं। भारत जैसे बहुभाषी और बहुसांस्कृतिक देश में लोकगीतों के माध्यम से 'विविधता में एकता' का स्वरूप अत्यंत सजीव रूप में प्रकट होता है। यहाँ विभिन्न प्रदेशों, भाषाओं और समुदायों के लोकगीत अपने-अपने रंगों और स्वरूपों में विकसित होते हुए भी सांस्कृतिक एकता के सूत्र में बंधे दिखाई देते हैं।

यह कहा जा सकता है कि लोकगीत हमारी संस्कृति के जीवन–प्राण हैं, जिनसे हमारी जड़ें गहराई तक जुड़ी हुई हैं। इन्हीं लोकगीतों के माध्यम से हमारी सांस्कृतिक परंपरा न केवल सुरक्षित रहती है, बल्कि निरंतर पुष्पित–पल्लवित होकर आने वाली पीढ़ियों तक पहुँचती है। वर्तमान वैश्वीकरण और तकनीकी युग में लोकगीतों का संग्रहण, संरक्षण और अध्ययन अत्यंत आवश्यक हो गया है, ताकि लोकसाहित्य, लोकसंस्कृति और समाज की मौलिक चेतना अपने उद्देश्य में सुदृढ़ रूप से स्थापित रह सके। इस प्रकार लोकगीत साहित्य और संस्कृति के मध्य सेतु बनकर मानवीय संवेदना, सामाजिक मूल्यों और सांस्कृतिक पहचान को अक्षुण्ण बनाए रखते हैं।

लोकगीतों के संरक्षण के लिए उनका दस्तावेजीकरण अत्यंत आवश्यक है, जिसमें ऑडियो–वीडियो रिकॉर्डिंग और लिखित संकलन शामिल हों। शैक्षणिक पाठ्यक्रमों में लोकगीतों को स्थान देकर नई पीढ़ी को उनसे जोड़ा जा सकता है। स्थानीय कलाकारों, लोकगायकों और परंपरागत समुदायों को संस्थागत संरक्षण और प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। डिजिटल माध्यमों और अभिलेखागारों के माध्यम से लोकगीतों का डिजिटलीकरण किया जाना समय की आवश्यकता है। लोकमहोत्सव, कार्यशालाएँ और मंचीय प्रस्तुतियाँ लोकगीतों को जीवंत बनाए रखने में सहायक सिद्ध होती हैं। यदि हम लोकगीतों की अमूल्य धरोहर का सरंक्षित कर पाते हैं तब ही

लोक गीत साहित्य और संस्कृति पर लिखना सार्थक सिद्ध होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

1-लोक साहित्य और भारतीय संस्कृति
देवेन्द्र सत्यार्थी
अनन्य प्रकाशन
दिल्ली
आई एस बी एन: 978-81-19141-44-9
2- इंटरनेट स्रोत

*****

ISSN : 2581-8848

गुलजार: अनुभूतियों के शिल्पकार

डॉ. गीतिका तंवर
सहायक प्राध्यापिका - हिंदी
चांगू काना ठाकुर
आर्ट्स,कामर्स एंड साइंस कॉलेज
नवीन पनवेल (स्वायत्त)

शोध सारांश:

आधुनिक हिंदी–उर्दू साहित्य के परिदृश्य में गुलज़ार (संपूर्ण सिंह कालरा) एक ऐसे बहुआयामी रचनाकार के रूप में प्रतिष्ठित हैं, जिन्होंने कविता और गीत के माध्यम से मानवीय संवेदना को नई अभिव्यक्ति प्रदान की है। उनकी रचनात्मकता केवल साहित्यिक सौंदर्य तक सीमित नहीं है, बल्कि वह सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक यथार्थ की सूक्ष्म परतों को भी उद्घाटित करती है। गुलज़ार की साहित्यिक पहचान मुख्यतः एक ऐसे कवि के रूप में उभरती है, जो साधारण शब्दों में गहन अनुभूतियों को व्यक्त करने की अद्वितीय क्षमता रखते हैं।

गुलज़ार का साहित्य उत्तर-आधुनिक संवेदनात्मक चेतना से जुड़ा हुआ है, जहाँ भावनाओं की अभिव्यक्ति अलंकारिक विस्तार के बजाय संकेत, प्रतीक और मौन के माध्यम से होती है। उनकी भाषा सहज, बोलचाल के निकट और आडंबरहीन है, किंतु अर्थ की दृष्टि से अत्यंत बहुस्तरीय। यही विशेषता उन्हें समकालीन गीतकारों और कवियों से अलग पहचान देती है।

फ़िल्म गीतों की परंपरा में गुलज़ार ने गीत को केवल मनोरंजन का साधन न मानकर साहित्यिक गरिमा प्रदान की। उन्होंने गीत और कविता के बीच की दूरी को कम किया तथा फ़िल्मी गीत को संवेदनात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। उनकी रचनाएँ यह प्रमाणित करती हैं कि लोकप्रिय माध्यमों में भी गंभीर साहित्यिक मूल्य संभव हैं।

बीज शब्द - अनुभूति ,शिल्पकार, अलंकारिक विस्तार, संवेदनात्मक अभिव्यक्ति, मानवीय संवेदनाएं, सामयिक अर्थ, प्रेम विच्छेद, आध्यात्मिकता

प्रस्तावना

गुलज़ार आधुनिक हिंदी–उर्दू काव्य में संवेदना के सूक्ष्म भाषिक शिल्पकार हैं, जो साधारण शब्दों के माध्यम से मानवीय अनुभूतियों की जटिल संरचनाओं को उसी प्रकार उद्घाटित करते हैं, जैसे कोई दक्ष वैज्ञानिक सूक्ष्मदर्शी यंत्र द्वारा अदृश्य यथार्थ को दृश्य बना देता है।

गुलजार शब्दों के जादूगर हैं। ऐसे जादूगर जिन्हें शब्दों के साथ आंख- मिचौली खेलना आता है गुलजार कवि गीतकार, शायर ,लेखक ,निर्देशक आदि विभिन्न रूपों में अपनी भावनाओं का विस्तार पाते हैं। उनकी कविताएं जानम, एक बूंद चांद, कुछ नज्में, कुछ और नज्में, साइलेंसेस, पुखराज, चांद पुखराज का, ऑटम मून, त्रिवेणी, एक चांद और मैं ,रात पश्मीने की तथा यार जुलाहे में संकलित है। मेरा कुछ सामान, एवं छैंया छैंया फिल्मी गीतों का संकलन है|उनका लिखा गीत 'आस्कर पुरस्कार मंच' पर भारतवर्ष का 'जय हो' कहकर जयघोष करता है।

शोध आलेख का विश्लेषण

अगस्त 1934 को संपूर्ण सिंह कालरा के रूप में जन्मे गुलज़ार, जो अपने उपनाम से जाने जाते थे, छात्र जीवन से ही टैगोर, प्रेमचंद और उर्दू कवियों की साहित्यिक रचनाओं से मोहित थे और जो कुछ भी उन्हें पढ़ने को मिलता था, उसे पढ़ डालते थे। बॉम्बे सेंट्रल स्थित विचारे मोटर्स नामक मोटर गैराज में प्रशासक के रूप में काम करते समय, उनके मित्र रघुनाथ झालानी (जो उस समय बिमल रॉय प्रोडक्शंस में कार्यरत थे) ने उन्हें बिमल रॉय के सहायक देबू सेन से मिलवाया। देबू सेन, बसु भट्टाचार्य और सलिल चौधरी के माध्यम से गुलज़ार बंगाल फिल्म निर्माण शैली से जुड़ गए। संयोगवश, एक दिन देबू सेन उन्हें बिमल रॉय के पास ले गए, जब महान फिल्मकार बंदिनी के लिए एक गीतकार की तलाश में थे , निर्देशक बिमल रॉय निर्देशित फ़िल्म 'बंदिनी' का गुलज़ार लिखित गीत स्त्री का मन है। गुलज़ार ने उस मन को पढ़ा है–

''मोरा गोरा अंग लेई ले
मोहे श्याम रंग देई दे
कुछ खो दिया है पाई के
कुछ पा लिया गंवाई के

कहाँ ले चला है मनवा
मोहे बावरी बनाई के''

'बन्दिनी' का यह गीत नायिका की उस मनोदशा को व्यक्त करता है, जहाँ वह अपने प्रियतम के लिये थोड़ा झिझकते हुए मगर घर के आँगन से बाहर पूरे उल्लास से निकल जाती है। गीत के बोलों की पारम्परिक शब्दावली, कुछ-कुछ उन वैष्णव पदों के समकक्ष नज़र आती है, जो स्वयं कल्याणी प्रतिदिन अपने पिता से सुनती-पढ़ती रही है। अब इस गीत के बोल 'बन्दिनी' की नायिका के अभिप्रायों को बताने में सक्षम हैं ही, साथ ही यह गीत वैष्णव पृष्ठभूमि को रेखांकित करने वाला एक अमर गीत बन जाता है।

गुलजार के गीत शायरी के रूप में 'अनुभव' को प्रस्तुत करते हैं। गुलज़ार की सर्जना का एक–एक शब्द जीवन–रंग को प्रस्तुत करता शब्द है। "मसलन, शायर का मानना है कि जिस भाप की लिखावट से वो नज़्में लिख रहे हैं, इस भाप के चूल्हे पर ढेर सारी ज़ुबानों की हाँडियाँ रखी हुई हैं। ज़ाहिर है ज़िन्दगी के फ़लसफे से भी जो उबाल इन ज़ुबानो को मिलती है, उससे न सिर्फ़ दूसरी आवाज़ों और बोलियों की इबारतें पक रही हैं, बल्कि ज़िन्दगी ख़ुद भी उसी चूल्हे पर चढ़ी हुई, नज़्मों की आँच से धिक रही है। चूल्हे पर चढ़ी हुई ज़िन्दगी के बर्तन में ढ़ेरों मानवीय संवेदनाएँ कुछ अनूठा पकाने के लिए हर समय कुछ नया रच रही हैं।"१

अभी न पर्दा गिराओ, ठहरो, कि दास्तां आगे और भी है
अभी न पर्दा गिराओ, ठहरो!...
अभी सुलगते हैं रूह के गम, अभी धड़कते हैं दर्द दिल के
अभी तो एहसास जी रहा है…

गुलजार द्वारा निर्देशित फिल्म 'आंधी' 1975 में आई। गुजर कर भी शेष बचे प्रेम के स्वीकार्य की फिल्म है। गुलजार ने फिल्म की नायिका के जीवन के माध्यम से समूची व्यवस्था और स्त्री के बीच के द्वंद्व को चित्रित किया है। गीतकार के रूप में गुलजार स्त्री को समाज के समक्ष स्वीकार के मार्ग की रौशनी दिखाते हैं। स्त्री के स्वप्न का स्वीकार, उसके निर्णय का स्वागत एवं साथ- साथ चलने की गुजारिश फिल्म की सहेजने योग्य बात है। गुलजार लिखित गीत अंश में स्त्री-मन का द्वंद्व साफ-साफ परिलक्षित होता है-

"तेरे बिना ज़िन्दगी से कोई
शिकवा तो नहीं, शिकवा नहीं
शिकवा नहीं शिकवा नहीं
तेरे बिना ज़िन्दगी भी लेकिन
ज़िन्दगी तो नहीं, ज़िन्दगी नहीं
ज़िन्दगी नहीं ज़िन्दगी नहीं।"

गुलजार के गीत जो हिंदी सिनेमा के लिए लिखे गए को किसी एक अवधारणा के घेरे में नहीं बांधा जा सकता। ये गीत विभिन्न संवेदनाओं, मनोभूमियों में संचरण करते हुए अपने अर्थ को कई परतों में उजागर करते हैं ।

'खामोशी' फिल्म के गीत के द्वारा यह बात स्पष्ट होती है जो अपने शाब्दिक अर्थ के अतिरिक्त सामयिक अर्थ भी रखता है।

"हमने देखी है उन आंखों की महकती खुशबू,
प्यार से छूकर इन्हें रिश्तों का इल्जाम ना दो,
सिर्फ एहसास है ये,
रूह से महसूस करो
प्यार को प्यार ही रहने दो,
कोई नाम ना दो।"

1987 में प्रदर्शित फिल्म 'इजाजत' गुलजार द्वारा निर्देशित तो है ही, साथ ही उनके गीतों से सजी फिल्म है ।यह फिल्म एक प्रेम कविता है।

"एक सौ सोला चांद की रातें…
एक तुम्हारे कान्धे का तिल…
गीली मेहंदी की खुशबू
झूठ मूठ के शिकवे कुछ

झूठ मूठ के वादे भी सब, याद करा दो
सब भिजवा दो
मेरा वो सामान लौटा दो…''

यह गीत स्त्री-मन की संवेदनात्मक गहराई को अत्यंत सूक्ष्मता से अभिव्यक्त करता है। यहाँ स्त्री न तो शिकायत करती है और न ही संबंध को पुनः प्राप्त करने का आग्रह करती है; वह केवल स्मृतियों की वापसी चाहती है। यह दृष्टि गुलज़ार की स्त्री-चेतना की परिपक्वता को दर्शाती है, जहाँ स्त्री भावुकता की प्रतीक नहीं, बल्कि आत्मसम्मान और भावनात्मक बोध से युक्त व्यक्तित्व के रूप में उपस्थित है।

साहित्यिक दृष्टि से यह गीत मौन, रिक्ति और विराम का अद्भुत उदाहरण है। गुलज़ार यहाँ शब्दों से अधिक भावनाओं को महत्व देते हैं, जिससे यह गीत केवल सुना नहीं जाता, बल्कि अनुभूत किया जाता है। यही कारण है कि यह गीत लोकप्रिय फ़िल्मी गीत होते हुए भी गंभीर साहित्यिक विमर्श का विषय बनता है।

इस गीत की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यहाँ प्रेम की समाप्ति किसी नाटकीय विद्रोह या शिकायत के रूप में नहीं आती, बल्कि वह छोटी-छोटी स्मृतियों और प्रतीकात्मक वस्तुओं के रूप में शेष रह जाती है। 'रूमाल', 'खत', 'कुर्सी', 'संदल', और 'गुज़रे लम्हों की धूल' जैसे बिंब प्रेम को भौतिक उपस्थिति से हटाकर स्मृति के स्तर पर स्थापित करते हैं। इस प्रकार गुलज़ार प्रेम को एक जीवित अनुभव न मानकर एक संचित अनुभूति के रूप में प्रस्तुत करते हैं, जो समय के साथ मन में सुरक्षित रह जाती है।

गीत में प्रयुक्त भाषा अत्यंत सहज, बोलचाल के निकट और लगभग अलंकार-रहित है, किंतु इसके भीतर छिपी अर्थवत्ता अत्यंत गहन है। "मेरा कुछ सामान तुम्हारे पास पड़ा है" पंक्ति स्वयं में एक साधारण कथन प्रतीत होती है, किंतु उसके भीतर अधिकार, अपनत्व, दूरी और स्वीकार—चारों भाव एक साथ निहित हैं। यह पंक्ति प्रेम-विच्छेद के बाद भी संबंध की अपूर्ण समाप्ति का संकेत देती है।

गुलज़ार की रचनाओं में 'मौन' एक महत्वपूर्ण साहित्यिक उपकरण के रूप में उभरता है। उनके यहाँ अनकहा, कहा गया से अधिक प्रभावी बन जाता है। यह मौन केवल भावनात्मक रिक्ति नहीं, बल्कि संवाद की एक सशक्त विधा है। इस संदर्भ में गुलज़ार का साहित्य आधुनिक मनुष्य की आंतरिक बेचैनी, विखंडित संबंधों और स्मृति-ग्रस्त चेतना का सशक्त दस्तावेज़ कहा जा सकता है।

"तेरे बिना ज़िंदगी से शिकवा तो नहीं
तेरे बिना ज़िंदगी भी लेकिन ज़िंदगी तो नही
काश ऐसा हो तेरे क़दमों से चुनके मंज़िल चलें,
और कहीं, दूर कहीं तुम अगर साथ हो,
मंज़िलों की कमी तो नहीं
तेरे बिना ज़िंदगी से शिकवा तो नहीं।"

जीवन-यथार्थ की शिनाख्त के साथ गुलजार के यहाँ उसी यथार्थ का एक दूसरा रचनात्मक पक्ष भी देखने को मिलता है। यह यथार्थ, समाज की तमाम विडम्बनाओं का सरलीकरण न होकर, बेहद काव्यात्मक स्तर प पहुंचा हुआ जीवन-अध्यात्म है। इस आध्यात्मिकता को पाने के चक्कर में उन्होंने कुछ इतने उत्कृष्ट गीत लिम दिये हैं, जो अलग से हिन्दी सिनेमा की गीत परम्परा में लम्बे समय तक याद किए जायेंगे। गुलजार के भाव-जगत का सृजन हमें सिर्फ उनके कुछ पूर्ववर्ती गीतकारों में मिलता है, जिसमें साहिर लुधियानवी शैलेन्द्र, जाँ निसार अख्तर, नीरज और कैफ़ी आज़मी के नाम लिये जा सकते हैं।

"जिस तन को छुआ तूने
उस तन को छुपाऊँ
जिस मन को लागे नैना
वो किसको दिखाऊँ
ओ मोरे चंद्रमा तेरी चाँदनी अंग जलाए।"--

'प्रेम' हमेशा से ही हिन्दी फिल्मों का प्राण तत्त्व रहा है। हम किसी भी फिल्म की कहानी, पटकथा या गीत उठाकर देखें, तो प्रेम की शाश्वत उपस्थिति, केन्द्र स्थानीय रही है। गुलजार भी इस बात से अछूते या अपवाद नहीं रहे हैं। उनके यहाँ भी जीवन का

यह महत्त्वपूर्ण पहलू उनके सिनेमाई कद को बढ़ाने में एक प्रमुख उत्प्रेरक की तरह काम करता रहा है | यह अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि गुलज़ार आज भी प्रेम जैसी मानवीय अनुभूति को उजागर करने में ही अपना सर्वश्रेष्ठ रच पाते हैं। प्रेम के प्रति उनकी यह सहज ग्राह्यता, उन्हें एक बार फिर से उसी सूफी और भक्ति परम्परा के नजदीक ले आती है, जहाँ अपने सबसे सच्चे अर्थों में प्रेम की सार्थक व आदर्श अभिव्यक्ति होती रही है।

चाँद, शबनम, पानी, सपने, सावन की बूंदे, रात, फूल, नदी, आँसू, साहिल, समुन्दर, आग, धुआँ, बारिश, बर्फ, पहाड़, तागा, आँखें, धुंध, साँसें, कश्ती, जैसे ढेरों उपमान और जीवन से जुड़े हुए सौन्दर्यवादी प्रतीक कहीं न कहीं से गुलज़ार का प्रेम के प्रति बाँकपन ही व्यक्त करते हैं, जब वे अपनी नयी अर्थसम्भवा व्याप्ति के साथ उनके किसी प्रेम गीत में उपस्थित होते हैं।

इन गीतों के संस्कार तले हम कुछ बेहद लोकप्रिय उन गीतों को भी पढ़ सकते हैं, जहाँ लोकगीतों की अनुगूंजे स्पष्ट सुनी जा सकती हैं। चप्पा-चप्पा चरखा चले' (माचिस), चल छैया-छैया' (दिल से), वारी जावाँ सौ-सौ बार वारी जावाँ (फ़िलहाल), वतना वे' (पिंजर) एवं 'बरसो रे मेघा-मेघा' (गुरु) जैसे गीतों में अद्भुत तरीके से लोक-लय स्पन्दित होती हुई देखी जा सकती है।

फिल्मी सरोकार से अलग गुलजार के रचनात्मक जीवन का एक कोना वह है ,जो निहायत घरेलू एवं व्यक्तिगत है।वह बच्चों की दुनिया,उनके बचपन और उस बचपन की जीवंत संवेदनाओं से संबंधित है।

"जंगल जंगल बात चली है
पता चला है,
चड्डी पहन के फूल खिला है
फूल खिला है।"

गीतों को सुनते हुए ऐसा लगता है कि गुलजार इन गीतों में अपना खोया हुआ बचपन ढूंढ रहे हैं या बच्चों के लिए खुले हुए आसमान के नीचे पूरे संसार को खेल का मैदान बना देना चाहते हैं ,जहां सभी का बचपन सुरक्षित है। उनका "मासूम" फिल्म का यह बाल गीत बेहद प्रसिद्ध हुआ।

"लकड़ी की काठी काठी पे घोड़ा
घोड़े की दुम पे जो मारा हथौड़ा
दौड़ा दौड़ा दौड़ा, घोड़ा
दुम उठा के दौड़ा घोड़ा था घमंडी,
पहुँचा सब्जी मंडी सब्जी मंडी बरफ पड़ी थी,
बरफ में लग गई ठंडी दौड़ा दौड़ा दौड़ा,
घोड़ा दुम उठा के दौड़ा।"

'मासूम' के इस गीत के बारे में तो यह प्रबल धारणा रही है कि यह हिंदी फिल्म गीतों के इतिहास में अपनी अभिनवता व बाल मन की कौतुकता के लिए ऐतिहासिक ऊँचाई प्राप्त करता है।

उपसंहार

गुलज़ार के गीत मानवीय अनुभूतियों की सूक्ष्म, संयत और बहुस्तरीय अभिव्यक्ति हैं। उनके यहाँ प्रेम, विरह, स्मृति, अकेलापन और संबंधों का टूटना किसी अतिनाटकीय भावुकता में नहीं, बल्कि गहरे आत्मबोध और स्वीकृति के स्तर पर प्रस्तुत होता है। गुलज़ार की अनुभूतियाँ शोर नहीं करतीं, वे मौन के माध्यम से संवाद स्थापित करती हैं।

गुलज़ार के गीतों की विशेषता यह है कि वे साधारण भाषा और दैनिक जीवन के बिंबों के सहारे असाधारण भावार्थ का निर्माण करते हैं। उनके गीतों में अनुभूति व्यक्तिगत होते हुए भी सार्वभौमिक बन जाती है, जिससे श्रोता स्वयं को उन भावों से जुड़ा हुआ पाता है। यह अनुभूति पाठक या श्रोता पर आरोपित नहीं होती, बल्कि उसे स्वयं अनुभव करने का अवसर देती है।
स्त्री-पुरुष संबंधों की प्रस्तुति में गुलज़ार आदर्शीकरण से बचते हैं और यथार्थ की जटिलताओं को स्वीकार करते हैं। उनके गीत यह संकेत देते हैं कि प्रेम केवल प्राप्ति नहीं, बल्कि स्मृति, त्याग और आत्मसंयम का भी नाम है। यही कारण है कि उनके गीत समय, पीढ़ी और माध्यम की सीमाओं को लाँघकर स्थायी प्रभाव छोड़ते हैं।

इस प्रकार गुलज़ार के गीतों की अनुभूतियाँ हिंदी फ़िल्म संगीत को केवल मनोरंजन के स्तर से ऊपर उठाकर संवेदनात्मक साहित्य के रूप में स्थापित करती हैं और आधुनिक मनुष्य की आंतरिक दुनिया का सशक्त दस्तावेज़ बन जाती हैं।

ISSN : 2581-8848

संदर्भ ग्रंथ

१ . यतींद्र मिश्र ,गुलजार साब, हजार रहे मुड़कर देखी,
वाणी प्रकाशन ,नई दिल्ली २०२३, पृष्ठ २४
२. मीलों से दिन.. गुलजार, संकलन एवं संपादन,यतींद्र मिश्र, २०१०
३.सिनेमा के सौ बरस संपादक मृत्युंजय, शिल्पायन दिल्ली, २००४
४.गुलज़ार, इजाज़त, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., 7/23, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली,

*****

ISSN : 2581-8848

गीतकार प्रदीप के गीतों में मानवीय चेतना

डॉ. मालोजी अर्जुन जगताप
सांगोला महाविद्यालय, सांगोला

सारांश :

कवि प्रदीप हिंदी गीत-साहित्य के उन विरल रचनाकारों में हैं जिनकी काव्य-दृष्टि में मानव-मूल्यों की व्यापक समझ, सामाजिक-सांस्कृतिक सरोकारों की संवेदनशील पकड़ और जीवन के विविध अनुभवों का गहरा मानवीय बोध मिलता है। वे फिल्म-संगीत की सीमा में रहते हुए भी उसे साहित्यिक गरिमा प्रदान करते हैं। उनका काव्य केवल भावात्मक नहीं, बल्कि विचारपरक और जन-चिंतन से उपजा हुआ है। प्रदीप ने अपने गीतों में सामाजिक विषमता, पीड़ा, शोषण, युद्ध की त्रासदी, गरीब और श्रमिक की कठिनाइयों, तथा नैतिक पतन जैसे विषय अत्यंत सरल पर सशक्त भाषा में व्यक्त किए हैं। उनके गीत विशेष रूप से इस बात का उदाहरण हैं कि जनसंचार माध्यमों द्वारा भी साहित्यिक मानववाद को जन-सामान्य तक पहुँचाया जा सकता है। 'ऐ मेरे वतन के लोगों' जैसा गीत राष्ट्र को भावुक कर देने वाला तो है ही, लेकिन उससे आगे वह मानवीय एकता और सार्वभौमिक करुणा का संदेश भी देता है। इसी तरह 'देख तेरे संसार की हालत' मनुष्य के बदलते चरित्र पर आत्मालोचनात्मक टिप्पणी करता है। प्रदीप की लेखनी मनुष्य के भीतर सोई संवेदना को जगाती है और उसे मानव-धर्म की ओर उन्मुख करती है। कवि प्रदीप की रचनाओं में विद्यमान मानवीय चेतना का विस्तार से वर्णन है। उनके प्रमुख गीतों के माध्यम से यह समझने का प्रयास किया गया है कि उनकी काव्य-दृष्टि कैसे व्यक्ति-जीवन, समाज, राष्ट्र और समस्त मानवता को एक जुड़ी हुई इकाई के रूप में देखती है। प्रदीप का काव्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि मानवीय संवेदना और सामाजिक चेतना का संवाहक है।

बीज-शब्द : प्रदीप, हिंदी फिल्म-गीत, मानवीय चेतना, राष्ट्रवाद, सामाजिक मूल्य, नैतिकता, जनकाव्य ।

भूमिका :

हिंदी साहित्य और फिल्म-संगीत के इतिहास में कवि प्रदीप का प्रवेश एक ऐसी आवाज़ के रूप में हुआ जो समाज, संस्कृति और राष्ट्र की जटिलताओं को मानवीय दृष्टि से समझने और दिखाने का सामर्थ्य रखती थी। वे ऐसे रचनाकार थे जिन्होंने जन–भावनाओं के साथ सीधा संवाद स्थापित किया। उनकी गीत-रचना उस काल में हुई जब देश स्वतंत्रता-आंदोलन, सामाजिक संघर्ष, साम्प्रदायिक तनाव, आर्थिक असमानता और नैतिक मूल्यों के क्षरण से गुजर रहा था। इन परिस्थितियों में प्रदीप के गीत लोगों के लिए न केवल भावनात्मक सहारा बने, बल्कि वे सामाजिक संदेशवाहक की भूमिका में भी सामने आए। उनकी विशिष्टता यह है कि उन्होंने फिल्म- गीत जैसी लोकप्रिय विधा में भी साहित्य की गहराई और विचार की गंभीरता को बनाए रखा। वे अपने गीतों में मनुष्य के अस्तित्व, उसकी विवशताओं, संघर्षों और नैतिक दायित्वों को सरल शब्दों में अत्यंत प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करते हैं। प्रदीप ने अपनी रचनाओं में सामान्य जन का पक्ष लिया वह जन जो समाज की रीढ़ होते हुए भी उपेक्षा और कठिनाइयों का शिकार रहा है। उनकी काव्य-दृष्टि बहुआयामी है जिसमें करुणा, प्रेम, मातृत्व, शांति, श्रम, ईमानदारी, लोकजीवन, प्रकृति और राष्ट्रप्रेम सभी एक साझा मानवीय धरातल पर मिलते हैं। इस प्रकार वे पारंपरिक आदर्शवाद और आधुनिक यथार्थवाद के बीच सेतु का कार्य करते हैं। यह सेतु मनुष्यता की गहरी समझ पर आधारित है।

1. पीड़ित मनुष्य की करुणा और संवेदना :

कवि प्रदीप के काव्य की मूल संवेदना पीड़ित और संघर्षरत मनुष्य से गहराई से जुड़ी हुई है। उनका काव्य मानव-जीवन की यथार्थ स्थितियों गरीबी, असहायता, सामाजिक विषमता और नियति से संघर्ष का सजीव चित्र प्रस्तुत करता है। वे जीवन को न तो आदर्शवादी चश्मे से देखते हैं और न ही निराशावादी दृष्टि से, बल्कि यथार्थ को स्वीकार करते हुए मनुष्य की जिजीविषा को उभारते हैं। इसके संदर्भ में मदर इंडिया फ़िल्म में प्रयुक्त उनका प्रसिद्ध गीत उल्लेखनीय है

"दुनिया में हम आए हैं तो जीना ही पड़ेगा,
जीवन है अगर ज़हर तो पीना ही पड़ेगा।
मालिक है तेरे साथ, ना डर, गम से तू ऐ दिल,
मेहनत करे इंसान तो क्या काम है मुश्किल।
दुनिया में हम आए हैं तो जीना ही पड़ेगा,
जीवन है अगर ज़हर तो पीना ही पड़ेगा।"[1]

इन पंक्तियों में जीवन की अनिवार्यता और उसकी कठोर सच्चाई का सशक्त बोध है। 'ज़हर' यहाँ शोषण, पीड़ा और विवश परिस्थितियों का प्रतीक है। कवि मनुष्य को पलायन नहीं, बल्कि संघर्ष का संदेश देता है। यह दृष्टि प्रदीप की मानवीय चेतना को यथार्थवादी बनाती है। इसी मानवीय दृष्टि का विस्तार मदर इंडिया फ़िल्म की कथावस्तु में भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, जहाँ ग्रामीण जीवन की त्रासदियाँ, स्त्री-श्रम, गरीबी और सामाजिक अन्याय के बीच संघर्षरत किसान-जीवन को प्रतीकात्मक ऊँचाई प्राप्त होती है। इस फ़िल्म में प्रदीप के गीत केवल कथानक की पृष्ठभूमि नहीं बनते, बल्कि पीड़ित जनमानस की सामूहिक आवाज़ के रूप में उभरते हैं। राधा जैसे पात्र के संघर्ष में कवि की वही चेतना व्यक्त होती है, जो मनुष्य को टूटने नहीं देती, बल्कि विपरीत परिस्थितियों में भी नैतिक साहस और आत्मसम्मान बनाए रखने की प्रेरणा देती है। इस प्रकार प्रदीप का काव्य सिनेमा के माध्यम से भी करुणा, संवेदना और संघर्ष की जनपक्षधर विचारधारा को व्यापक स्तर पर स्थापित करता है। इसके संदर्भ में चतुर्वेदी के अनुसार, "प्रदीप पीड़ा को निजी अनुभव न मानकर सामाजिक अनुभव में रूपांतरित कर देते हैं, जिससे उनका काव्य लोक-मानस की सामूहिक संवेदना बन जाता है।"2 इसी कारण उनके गीत विशेषतः मदर इंडिया जैसे यथार्थवादी सिनेमा में जनसाधारण के दुःख–दर्द, संघर्ष और आशा की सच्ची अभिव्यक्ति बन जाते हैं।

2. श्रमिक और सामान्य जन का जीवन–यथार्थ :

कवि प्रदीप का काव्य श्रमिक वर्ग और सामान्य जन के जीवन–संघर्ष का केवल चित्रण नहीं, बल्कि उसका जीवंत दस्तावेज है। उनके गीतों में वह जनता बोलती है, जो इतिहास और सत्ता के केंद्र से दूर रहकर भी समाज की असली रीढ़ बनी हुई है। यह वह वर्ग है जो निरंतर श्रम करता है, पसीना बहाता है, देश की नींव को मजबूत करता है, किंतु सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संरचनाओं में निरंतर उपेक्षित रहता है। प्रदीप इस मौन पीड़ा को स्वर देते हैं और श्रमिक को केवल एक श्रमशील इकाई नहीं, बल्कि संवेदनशील मनुष्य के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इस संदर्भ उनका प्रसिद्ध गीत

"ओ अमीरों के परमेश्वर हम गरीबों की भी ले खबर
बरसों से हम रो रहे, क्या बताएं क्या सुनाएं
हमसे क्या-क्या सितम हो रहे
हम तो जीते हैं दाता तेरे देश में
आज तलवार की धार पर
ओ अमीरों के परमेश्वर हम गरीबों की भी ले खबर
देखो हम लुट रहे हैं तेरे राज में
कुछ हमारा भी इंसाफ कर
ओ अमीरों के परमेश्वर…"3

यह गीत श्रमिक जीवन की करुण पुकार है। यहाँ "परमेश्वर" से संबोधन केवल धार्मिक नहीं, बल्कि सत्ता, व्यवस्था और समाज की सामूहिक अंतरात्मा से किया गया संवाद है। "अमीरों के परमेश्वर" कहकर प्रदीप उस वर्ग–विभाजित समाज की ओर संकेत करते हैं, जहाँ ईश्वर, कानून और न्याय भी अमीरों के पक्ष में झुके प्रतीत होते हैं, जबकि गरीब और श्रमिक वर्ग वर्षों से रोते हुए भी अनसुना रह जाता है। गीत की पंक्ति "हम तो जीते हैं दाता तेरे देश में आज तलवार की धार पर" श्रमिक वर्ग की असुरक्षित जीवन–स्थिति को तीव्रता से उजागर करती है। यहाँ 'तलवार की धार' केवल शारीरिक खतरे का नहीं, बल्कि भूख, बेरोज़गारी, शोषण और अपमान से भरे जीवन का प्रतीक है। श्रमिक का प्रत्येक दिन जोखिम से भरा है काम मिलेगा या नहीं, मजदूरी मिलेगी या नहीं, और मिलेगी तो पूरी मिलेगी या नहीं।

प्रदीप के काव्य में श्रमिक अक्सर 'मुसाफ़िर' के रूप में उपस्थित होता है। यह 'मुसाफ़िर' केवल यात्रा करता व्यक्ति नहीं, बल्कि वह सामान्य जन है जो जीवन की कठिन राहों पर निरंतर चलता रहता है। उसकी यात्रा का कोई विश्रामस्थल नहीं, कोई सुनिश्चित मंज़िल नहीं। वह चलता है कारखानों की ओर, खेतों की ओर, निर्माण स्थलों की ओर कभी अपने परिवार के लिए, कभी राष्ट्र के लिए, और कभी केवल जीवित रहने के लिए। 'साथ–साथ चलना' इस संदर्भ में मानवीय सहयोग, सामूहिक संघर्ष और सामाजिक एकता का गहरा संकेत बन जाता है। इस सामूहिक चेतना को रेखांकित करते हुए तिवारी का मत है कि, "प्रदीप के गीतों में लोकजीवन की अनुभूति व्यक्तिगत न होकर सामूहिक रूप में व्यक्त होती है, जिससे उनका काव्य जन सरोकारों से सीधे जुड़ जाता है।"4 वास्तव में, प्रदीप का श्रमिक अकेला नहीं रोता उसकी पीड़ा पूरे समाज की पीड़ा बन जाती है। कुमार का यह कथन विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि, "प्रदीप श्रम को केवल आर्थिक मूल्य के रूप में नहीं देखते, बल्कि उसे मनुष्य की गरिमा,

आत्मसम्मान और अस्तित्व से जोड़ते हैं।"5 यही कारण है कि उनके गीतों में श्रमिक दया का पात्र नहीं, बल्कि सम्मान का अधिकारी बनकर उपस्थित होता है। वह न्याय माँगता है, भीख नहीं; अधिकार चाहता है, कृपा नहीं। इस प्रकार, श्रमिक और सामान्य जन के जीवन–यथार्थ का चित्रण करते हुए प्रदीप का काव्य सामाजिक संवेदना, मानवीय करुणा और नैतिक चेतना का सशक्त उदाहरण बन जाता है। उनके गीत न केवल श्रमिक की पीड़ा को उजागर करते हैं, बल्कि समाज को यह याद दिलाते हैं कि यदि श्रम की आवाज़ दबा दी गई, तो राष्ट्र की आत्मा भी मौन हो जाएगी।

3. नैतिक चेतना और मानव–धर्म :

प्रदीप के गीतों में नैतिक पतन के प्रति गहरी चिंता और मानव धर्म की पुनर्स्थापना का आग्रह स्पष्ट दिखाई देता है। वे आधुनिक सभ्यता में बढ़ते स्वार्थ, हिंसा और संवेदनहीनता पर प्रश्न उठाते हैं। नास्तिक, मदर इंडिया, दो बीघा ज़मीन और काबुलीवाला जैसी फ़िल्मों के गीतों के माध्यम से प्रदीप बार-बार यह कहते हुए दिखाई देते हैं कि किसी भी समाज की वास्तविक पहचान उसकी आर्थिक उन्नति से नहीं, बल्कि उसके नैतिक और मानवीय मूल्यों से होती है। अनेक गीतों में वे संकेत करते हैं कि जब मनुष्य अपने मानव धर्म दया, करुणा, ईमानदारी और नैतिक उत्तरदायित्व से विमुख हो जाता है, तब सभ्यता का बाहरी विकास भी उसे पतन से नहीं बचा सकता। इस प्रकार प्रदीप का गीत काव्य नैतिक आत्मालोचना का सशक्त माध्यम बन जाता है। इसके संदर्भ प्रदीप अपने गीत में लिखते हैं,

“देख तेरे संसार की हालत, क्या हो गई भगवान,
कितना बदल गया इंसान, कितना बदल गया इंसान।
सूरज न बदला, चांद न बदला, ना बदला रे आसमान,
कितना बदल गया इंसान, कितना बदल गया इंसान।
आया समय बड़ा बेढंगा, आज आदमी बना लफंगा,
कहीं पे झगड़ा कहीं पे दंगा, नाच रहा नर हो कर नंगा,
छल और कपट के हाथों अपना, बेच रहा ईमान,
कितना बदल गया इंसान, कितना बदल गया इंसान।”6

यह गीत फ़िल्म नास्तिक (1954) में प्रयुक्त हुआ है और अपने समय की सामाजिक-नैतिक विडंबनाओं पर तीखा प्रहार करता है। यहाँ कवि ईश्वर से प्रश्न करता हुआ प्रतीत होता है, किंतु वस्तुतः यह प्रश्न मनुष्य के अंतःकरण से संवाद है। प्रकृति की स्थिरता सूरज, चाँद और आकाश के बरक्स मनुष्य का नैतिक विचलन अत्यंत मार्मिक रूप में उभरता है। शर्मा के अनुसार, "यह गीत सामाजिक आत्मालोचना का सशक्त उदाहरण है।"7 प्रदीप की दृष्टि केवल आलोचनात्मक नहीं, बल्कि समाधानपरक भी है। वे अपने गीतों के माध्यम से यह आग्रह करते हैं कि मनुष्य यदि पुनः मानव धर्म की ओर लौटे यदि वह ईमानदारी, श्रम, करुणा और सह-अस्तित्व को अपने जीवन का आधार बनाए तो समाज को नैतिक पतन से उबारा जा सकता है। इस प्रकार प्रदीप का काव्य और गीत–लेखन आधुनिक सभ्यता के नैतिक संकट के बीच मानवीय मूल्यों की पुनर्स्थापना का सशक्त घोष बन जाता है।

4. राष्ट्रप्रेम में मानवीय करुणा और समर्पण :

प्रदीप के राष्ट्रभक्ति गीतों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनमें उग्रता, आक्रोश या किसी प्रकार की कट्टरता नहीं मिलती, बल्कि गहरी मानवीय करुणा, संवेदनात्मक आग्रह और आत्मिक समर्पण का भाव प्रमुख रूप से उभरकर सामने आता है। उनकी देशभक्ति युद्धोन्माद या शत्रु-विरोध की भावना से नहीं, बल्कि त्याग, बलिदान और मानवीय संवेदना की पवित्र भूमि से जन्म लेती है। यही कारण है कि उनके गीत सुनने वाले के मन में नफरत नहीं, बल्कि आत्मचिंतन, कृतज्ञता और भावनात्मक श्रद्धा उत्पन्न करते हैं। प्रदीप लिखते हैं की,

“ऐ मेरे वतन के लोगों, ज़रा आँख में भर लो पानी,
जो शहीद हुए हैं उनकी, ज़रा याद करो कुर्बानी।
जब घायल हुआ हिमालय, खतरे में पड़ी आज़ादी,
जब तक थी साँस लड़े वो, फिर अपनी लाश बिछा दी।
जो शहीद हुए हैं उनकी, ज़रा याद करो कुर्बानी।”8

यह गीत शहीद सैनिकों के बलिदान को किसी वीरता-प्रदर्शन या युद्ध की सनसनी के रूप में नहीं, बल्कि गहरे मानवीय संवेदना-स्तर पर प्रस्तुत करता है। कवि यहाँ श्रोताओं से आह्वान करते हैं कि वे शहीदों को केवल इतिहास की पंक्तियों में दर्ज नाम न मानें,

बल्कि उनकी कुर्बानी को हृदय से अनुभव करें। "ज़रा आँख में भर लो पानी" जैसी पंक्ति करुणा और भावनात्मक जुड़ाव की चरम अभिव्यक्ति है, जो राष्ट्रभक्ति को आँखों की नमी और हृदय की संवेदना से जोड़ देती है।

गीत में प्रयुक्त "जब घायल हुआ हिमालय" जैसे प्रतीक राष्ट्र की पीड़ा को सजीव रूप में सामने लाते हैं। हिमालय यहाँ केवल भौगोलिक संरचना नहीं, बल्कि राष्ट्र की आत्मा और अस्मिता का प्रतीक बन जाता है। उसकी पीड़ा देश की पीड़ा है और उसकी रक्षा के लिए अपने प्राणों का अर्पण करने वाले सैनिक मानवता के सर्वोच्च आदर्श का प्रतिनिधित्व करते हैं। कवि यह स्पष्ट करते हैं कि सैनिकों का संघर्ष केवल सीमा की रक्षा नहीं, बल्कि स्वतंत्रता और मानवीय मूल्यों की रक्षा का संघर्ष है। कवि शहादत को मानवता की सर्वोच्च अभिव्यक्ति मानते हैं। उनके लिए शहीद होना मृत्यु नहीं, बल्कि कर्तव्य, त्याग और प्रेम का चरम रूप है। यही दृष्टि प्रदीप की राष्ट्रभक्ति को ऊँचाई प्रदान करती है। वे शहीदों की कुर्बानी को किसी राजनीतिक या वैचारिक आग्रह से नहीं जोड़ते, बल्कि उसे सार्वभौमिक मानवीय मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। इस प्रकार प्रदीप की राष्ट्रभक्ति विभाजनकारी नहीं, बल्कि जोड़ने वाली है। वह धर्म, जाति, भाषा या क्षेत्र की सीमाओं से ऊपर उठकर मनुष्य को मनुष्य से जोड़ती है। उनके गीत राष्ट्र के प्रति प्रेम को करुणा, संवेदना और कृतज्ञता के सूत्र में पिरोते हैं। यही कारण है कि उनके राष्ट्रभक्ति गीत आज भी उतने ही प्रभावशाली, जीवंत और प्रासंगिक हैं क्योंकि वे केवल राष्ट्र की बात नहीं करते, बल्कि मानवता की आत्मा से संवाद करते हैं।

5. शांति, अहिंसा और वैश्विक मानव–संदेश :

प्रदीप का काव्य केवल राष्ट्र केंद्रित चेतना तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह राष्ट्रीय सीमाओं को लांघकर समूची मानवता के लिए शांति, प्रेम और सह अस्तित्व का संदेश देता है। उनके गीतों में मनुष्य को मनुष्य से जोड़ने की गहरी आकांक्षा दिखाई देती है, जहाँ संघर्ष, वैर और हिंसा के स्थान पर आपसी प्रेम और समझ को जीवन का मूल आधार माना गया है। प्रदीप की काव्य दृष्टि यह स्पष्ट करती है कि वास्तविक देशभक्ति वही है, जो मानवता के व्यापक हित से जुड़ी हो।

"आपस में प्यार करो,
दुनिया से बैर न पालो पास आओ,
समय की घड़ी एक पल में खत्म हो जाए।"9

इन पंक्तियों में कवि का मानवीय आग्रह अत्यंत सरल किंतु गहन रूप में व्यक्त हुआ है। यहाँ 'आपस में प्यार करो' केवल व्यक्तिगत संबंधों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह समाज, राष्ट्र और विश्व स्तर पर प्रेम और सद्भाव की स्थापना का आह्वान है। 'दुनिया से बैर न पालो' कहकर कवि मनुष्य की उस प्रवृत्ति पर प्रश्न उठाते हैं, जो भेद, वैमनस्य और हिंसा को जन्म देती है। वे निकट आने, संवाद करने और एक–दूसरे को समझने की आवश्यकता पर बल देते हैं।

'समय की घड़ी एक पल में खत्म हो जाए' जैसी पंक्ति जीवन की क्षणभंगुरता का बोध कराती है। कवि यह संकेत देते हैं कि जब जीवन स्वयं अनिश्चित और अल्पकालिक है, तब घृणा, द्वेष और संघर्ष का कोई औचित्य नहीं रह जाता। इस क्षणभंगुर जीवन में प्रेम, करुणा और शांति ही वे मूल्य हैं, जो मानव अस्तित्व को सार्थक बनाते हैं। यह विचारधारा स्पष्ट रूप से गांधीवादी अहिंसा और विश्व–बंधुत्व की भावना से जुड़ी हुई है। प्रदीप की काव्य–संवेदना हिंसा को समाधान नहीं, बल्कि समस्या मानती है और प्रेम को सबसे बड़ा परिवर्तनकारी शक्ति के रूप में स्वीकार करती है। उनके गीत मनुष्य को यह याद दिलाते हैं कि अहिंसा केवल एक राजनीतिक नीति नहीं, बल्कि जीवन–दृष्टि है, जो व्यक्ति और समाज दोनों को नैतिक ऊँचाई प्रदान करती है।

गोखले के अनुसार, "प्रदीप का मानववाद सार्वभौमिक है, जो समस्त मानव जाति को एक मानता है।"10 इस दृष्टि से प्रदीप का काव्य किसी एक देश, समाज या विचारधारा तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह संपूर्ण मानव समुदाय को संबोधित करता है। उनका मानव–संदेश यह विश्वास जगाता है कि शांति, प्रेम और अहिंसा के मार्ग पर चलकर ही विश्व में स्थायी सौहार्द और सह–अस्तित्व की स्थापना संभव है। इस प्रकार शांति, अहिंसा और वैश्विक मानवता का संदेश प्रदीप के काव्य की केन्द्रीय धुरी बन जाता है। उनके गीत मनुष्य को संकीर्ण सीमाओं से मुक्त कर व्यापक मानवीय चेतना की ओर ले जाते हैं और यह विश्वास दिलाते हैं कि मानवता की एकता ही संसार की सबसे बड़ी शक्ति है।

6. प्रकृति और मनुष्य का अंतर्संबंध :

प्रदीप के गीतों में प्रकृति किसी निर्जीव पृष्ठभूमि के रूप में नहीं, बल्कि मानवीय संवेदना से युक्त एक सजीव, मातृसत्ता के रूप में उपस्थित होती है। उनकी काव्य-दृष्टि में प्रकृति और मनुष्य का संबंध उपभोक्ता और साधन का नहीं, बल्कि माँ और संतान, पालक और पोषित, तथा सहयात्री और सहचर का संबंध है। यही कारण है कि प्रदीप के गीतों में धरती, नदियाँ, पर्वत और वन

केवल दृश्य नहीं रहते, बल्कि मानवीय जीवन की लय, चेतना और नैतिक दिशा के वाहक बन जाते हैं। इस भाव–भूमि को उद्घाटित करती हुई ये पंक्तियाँ अत्यंत अर्थपूर्ण हैं

"ऐ धरती माँ की गोद सुहानी,
जीवन देती, देती जिंदगानी।
पेड़-पहाड़, नदियाँ, सागर सारे,
हमको ही तो राह दिखाते हैं।
हम सब इसके बच्चे प्यारे,
प्रकृति से ही रिश्ते नाते हैं।"11

इन पंक्तियों में 'धरती माँ' की संकल्पना भारतीय सांस्कृतिक चेतना से गहरे जुड़ी हुई है। धरती यहाँ केवल भूमि नहीं, बल्कि पालन करने वाली, संरक्षण देने वाली और जीवन को अर्थ प्रदान करने वाली शक्ति है। "गोद सुहानी" जैसे शब्द प्रकृति के वात्सल्य को रेखांकित करते हैं, जिससे मनुष्य का रिश्ता भावनात्मक और नैतिक स्तर पर स्थापित होता है। गीत की पंक्ति "पेड़-पहाड़, नदियाँ, सागर सारे, हमको ही तो राह दिखाते हैं" प्रकृति को मार्गदर्शक के रूप में प्रस्तुत करती है। यहाँ राह केवल भौतिक दिशा नहीं, बल्कि जीवन–दृष्टि, संतुलन और अस्तित्व की राह है। प्रकृति मनुष्य को सिखाती है निरंतर देना, बिना शोर के सहना, और संतुलन में रहना। इस दृष्टि से प्रदीप का काव्य आधुनिक पर्यावरण–चिंतन से बहुत पहले पर्यावरणीय चेतना का सशक्त स्वर बन जाता है। "हम सब इसके बच्चे प्यारे" कहकर कवि मनुष्य की श्रेष्ठता–भावना को तोड़ते हैं। यहाँ मनुष्य प्रकृति का स्वामी नहीं, बल्कि उसका अंश और उत्तरदायी उत्तराधिकारी है। यह भाव आज के सामाजिक संदर्भ में विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो उठता है, जहाँ औद्योगीकरण, शहरीकरण और अंधाधुंध विकास ने प्रकृति और मनुष्य के बीच के संतुलन को गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त कर दिया है।

मिश्रा के अनुसार, "प्रदीप प्रकृति को मानव जीवन की आंतरिक लय से जोड़ते हैं, जिससे प्रकृति–चित्रण बाहरी सौंदर्य तक सीमित न रहकर जीवन–दर्शन का रूप ले लेता है।"12 वास्तव में, प्रदीप के गीतों में प्रकृति मनुष्य की भावनाओं का विस्तार बन जाती है वह दुख में सांत्वना देती है और आशा में संबल बनती है। फिल्मी संदर्भ में देखा जाए, तो प्रदीप की यह प्रकृति–दृष्टि उनकी उन फिल्मों से वैचारिक रूप से जुड़ती है, जिनमें धरती, मनुष्य और समाज का त्रिकोणीय संबंध उभरता है। उदाहरणस्वरूप, फिल्म 'धरती के लाल' (1946) में प्रदीप के गीतों और विचार–भूमि में धरती केवल भौगोलिक इकाई नहीं, बल्कि किसान, श्रमिक और सामान्य जन के जीवन–संघर्ष की साक्षी बनकर सामने आती है। इस प्रकार, प्रदीप के काव्य में प्रकृति सामाजिक यथार्थ से कटकर नहीं, बल्कि उससे गहराई से जुड़कर उपस्थित होती है। सामाजिक संदर्भ में यह गीत उस समय और आज दोनों के लिए प्रासंगिक है। आज जब प्रकृति का दोहन विकास के नाम पर किया जा रहा है, तब प्रदीप का यह काव्य मनुष्य को उसकी जड़ों की ओर लौटने का आह्वान करता है। यह गीत हमें याद दिलाता है कि प्रकृति से रिश्ता केवल संसाधनों का नहीं, बल्कि संवेदना, कृतज्ञता और सहअस्तित्व का है। इस प्रकार, प्रदीप के गीतों में प्रकृति और मनुष्य का अंतर्संबंध एक नैतिक और सांस्कृतिक चेतना के रूप में उभरता है, जहाँ धरती माँ है, मनुष्य संतान है, और जीवन इन दोनों के सामंजस्य से ही सार्थक बनता है।

निष्कर्ष :

हिंदी के गीतकार कवि प्रदीप का काव्य मानवीय चेतना का एक सशक्त, व्यापक और बहुआयामी दस्तावेज है। उनके गीतों की मूल प्रेरणा मानव-जीवन का यथार्थ, उसकी पीड़ा, संघर्ष और आशा है। उन्होंने अपने काव्य में मनुष्य को किसी अमूर्त आदर्श के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक, आर्थिक और नैतिक परिस्थितियों से जूझते हुए जीवंत रूप में प्रस्तुत किया है। यही दृष्टि उनके काव्य को जनसामान्य के अत्यंत निकट ले आती है। प्रदीप की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे व्यक्तिगत दुःख को सामाजिक संवेदना में रूपांतरित कर देते हैं। उनके गीतों में पीड़ित मनुष्य की करुणा केवल सहानुभूति तक सीमित नहीं रहती, बल्कि सामाजिक अन्याय और मानवीय असंतुलन की ओर संकेत करती है। श्रमिक और सामान्य जन के जीवन-संघर्ष का चित्रण करते हुए उन्होंने श्रम को मनुष्य की गरिमा और अस्तित्व से जोड़ा है। इस प्रकार उनका काव्य सामाजिक न्याय और मानवीय समानता की चेतना को सुदृढ़ करता हैनैतिक चेतना के संदर्भ में प्रदीप का काव्य आधुनिक सभ्यता के नैतिक पतन पर गंभीर आत्मालोचना प्रस्तुत करता है। वे मनुष्य को उसके नैतिक उत्तरदायित्वों का बोध कराते हैं और मानव-धर्म, दया, ईमानदारी तथा करुणा जैसे मूल्यों की पुनर्स्थापना का आग्रह करते हैं। यह दृष्टि उनके गीतों को केवल भावनात्मक नहीं, बल्कि विचारोत्तेजक और मूल्यपरक बनाती है।

ISSN : 2581-8848

मातृत्व, परिवार और प्रेम के चित्रण में प्रदीप मानवीय चेतना के कोमल और संवेदनशील पक्ष को उभारते हैं। परिवार को वे मानवीय मूल्यों की पहली पाठशाला मानते हैं, जहाँ करुणा, त्याग और आत्मीयता का विकास होता है। उनके राष्ट्रप्रेम के गीत भी इसी मानवीय दृष्टि से संचालित हैं। 'ऐ मेरे वतन के लोगों' जैसे गीत राष्ट्रभक्ति को उग्रता से मुक्त कर मानवीय करुणा, शहादत और सामूहिक स्मृति के रूप में प्रस्तुत करते हैं।प्रदीप का मानववाद केवल राष्ट्रीय सीमाओं तक सीमित नहीं है, बल्कि वह वैश्विक मानवता की चिंता से जुड़ा हुआ है। शांति, अहिंसा और सह-अस्तित्व का संदेश उनके काव्य को सार्वभौमिक बनाता है। साथ ही प्रकृति और मनुष्य के अंतर्संबंध का चित्रण यह दर्शाता है कि उनकी मानवीय चेतना जीवन के समस्त आयामों को समाहित करती है। अतः कहा जा सकता है कि कवि प्रदीप का काव्य केवल फिल्मी गीतों का संकलन नहीं, बल्कि आधुनिक भारतीय समाज की मानवीय संवेदना का सशक्त साहित्यिक दस्तावेज है। उनकी रचनाएँ मनुष्य को मनुष्य से जोड़ने वाली सेतु हैं और आज के मूल्य-संकटग्रस्त समय में भी उतनी ही प्रासंगिक हैं। इस दृष्टि से मानवीय चेतना प्रदीप के काव्य का विषय मात्र नहीं, बल्कि उसकी केंद्रीय आत्मा और स्थायी शक्ति है।

संदर्भ सूची :

1. प्रदीप, कवि. कवि प्रदीप रचनावली. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2010. पृ. 58
2. चतुर्वेदी, सुरेश. आधुनिक हिंदी कविता और संवेदना. वाराणसी: लोकभारती प्रकाशन, 2002. पृ. 203
3.https://youtu.be/_oWJjDLeN-w?si=wgrjcMouzTQ23C9-
4. तिवारी, महेश. "लोकमानस और प्रदीप." नवनीत हिंदी दर्पण, 2015, पृ. 75.
5. कुमार, अनिल. हिंदी गीत–संगीत का विकास. नई दिल्ली: राष्ट्रीय प्रकाशन, 2012. पृ. 165.
6.https://youtu.be/N_AfVACsjgM?si=XtsAjspNjrgU8
7. शर्मा, जगदीश. "कवि प्रदीप के गीतों में राष्ट्रीय चेतना." हिंदी साहित्य पत्रिका, सं. 22, अंक 4, 2011, पृ. 59
8.https://youtu.be/CF_RqQF99Iw?si=Lf6wxt0WYuURfz-Y
9. प्रदीप, कवि. कवि प्रदीप रचनावली. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2010. पृ. 62
10. गोखले, प्रतिभा. "प्रदीप के गीतों में मानवीय दृष्टि." इंडियन लिटरेचर रिव्यू, खंड 3, 2014, पृ. 109
11.https://youtu.be/dopjI6Yg3T8?si=OxgYO7mBsyeEkKIO
12.मिश्रा, रघवेंद्र. चलचित्र और हिंदी काव्य. इलाहाबाद: लोकोदय प्रकाशन, 2009. पृ. 112

*****

जयशंकर प्रसाद के नाट्य गीतों की संरचना एवं सांस्कृतिक परिदृश्य

डॉ. सोनू जेसवानी
आचार्य एवं शोध-निर्देशक
वृ.म.व. वाणिज्य, ज.म.ठा. कला
एवं ज.जी.प. विज्ञान महाविद्यालय,नागपुर।
राष्ट्रसंत तुकडोजी महाराज नागपुर विश्वविद्यालय,
नागपुर। मोबाईल नं : ९८३४५२००२८

शोध-आलेख का सारांश :

गीत को परिभाषित करें तो इस तरह शब्दांकित किया जा सकता है कि भावों का सौंदर्य लिए आतंरिक नाद और लयबद्धता से युक्त काव्य गीत कहलाता है। इन गीतों के प्रमुखता से तीन प्रकार सुपरिचित हैं – लोक गीत, साहित्यिक गीत और फ़िल्मी गीत। आर्थिक लाभ की सशक्त संभावनाएं अपने साथ लिए होने पर भी प्रभावाच्छन्नता हेतु फ़िल्म गीतकार को रस-ग्रहण और शक्ति-संचयन हेतु लोक गीतों और साहित्यिक गीतों का आश्रय लेना ही होता है।

हिंदी साहित्य के ये प्रमुख गीतकार हैं- जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला और महादेवी वर्मा, मैथिलीशरण गुप्त, सोहनलाल द्विवेदी, शिवमंगल सिंह 'सुमन' आदि हैं। नाट्य विधा में गीत विधा का प्रयोग मणिकांचन योग की भांति करनेवाले नाटककार जयशंकर प्रसाद हैं। जयशंकर प्रसाद के नाटकों की विशेषताओं में- ऐतिहासिक घटनाक्रम, सांस्कृतिक दर्शन, देशभक्ति, मानवतावाद, समन्वयवाद, संस्कृतनिष्ठ भाषा, भावनात्मक संवाद आदि विशेषताओं को गिनाया जाता है, वहीं उनके नाटकों की गीत-योजना को मुक्त कंठ से सराहा जाता है। ध्रुवस्वामिनी, चंद्रगुप्त और स्कंदगुप्त नाटक के गीत उत्कृष्ट सांस्कृतिक जीवन-दर्शन के गीतों के उदाहरणों में स्थापित हो चुके हैं, तो अजातशत्रु, जनमेजय का नागयज्ञ, राज्यश्री आदि नाटक भी रोचक और गुनगुनाते गीतों को अपने में समेटे हुए हैं। प्रसाद ने अपने नाटकों में मात्रिक और वर्णिक दोनों छंद-प्रकारों से युक्त गीतों की सर्जना की और वे अपने उद्देश्य में पूरी तरह सफल भी रहे। इस प्रकार जयशंकर प्रसाद के साहित्यिक गीत, संगीत को भी अपने भीतर से प्रस्फुटित करने का सामर्थ्य रखते हैं। जयशंकर प्रसाद ने इन गीतों के माध्यम से भारतीय सांस्कृतिक नाट्य-सौंदर्य को वृद्धिंगत किया है। उनके अविस्मरणीय नाट्य गीत-सौंदर्य ने एक ओर हिंदी के नाट्य साहित्य को देदीप्यमान किया वहीं दूसरी ओर गीति काव्य विधा को भी उत्कृष्ट श्रृंगार रस, भक्ति रस और करुण रस से समृद्ध कर आस्वादकों के लिए ब्रह्मानंद सहोदर की अनुभूति के मार्ग को सुगम कर दिया। भारतीय संस्कृति में जिस राग-विराग, अमर-नश्वर और निराशा में भी आशा का दर्शन समाहित है, प्रसाद के गीत उसी सांस्कृतिक परिदृश्य को मुखर करते हैं।

बीज शब्द : गीत, गीत-प्रकार, प्रसाद-नाट्य गीत-संरचना, सांस्कृतिक परिदृश्य।

जयशंकर प्रसाद के नाट्य गीतों की संरचना एवं सांस्कृतिक परिदृश्य

साहित्य की बात करें और उसके प्राचीन अथवा मूल रूप की बात करें तो वह काव्यात्मक ही रहा है। हमारे संस्कृत के आचार्यों ने तो साहित्य और काव्य को पर्यायवाची ही माना। उन्होंने काव्य के तीन भेद किए – गद्य, पद्य और चंपू। चंपू अर्थात् गद्य और पद्य का मिश्रित रूप। अपनी भारतीय परंपरा के ज्ञान को मौखिक रूप में सुरक्षित करने का सुगम मार्ग था – ज्ञान का श्लोकों में रूपांतरण। इसे यूं कहा जा सकता है कि किसी भी बात को यदि काव्य अभिव्यक्ति दी जाए तो वह मनुष्य के स्मृति कोश में, उसके चेतन ही नहीं अपितु अर्धचेतन और अचेतन में भी स्थायी रूप से सुरक्षित हो जाता है।

काव्य के पद्य रूप भेदों में दो भेद प्रमुख माने जाते हैं- प्रबंध काव्य और मुक्त काव्य। प्रबंध और मुक्त काव्य का यह भेद कविता और अकविता जैसा मान लेने पर दिक्कत अवश्य होगी। भ्रम भी बना रहेगा। प्रबंध का अर्थ नियमों में बंधा और मुक्त का अर्थ नियमों की उपेक्षा अथवा अवहेलना से कदापि नहीं है। छंद अर्थात् नियमबद्ध काव्य। ये नियम मात्राओं के होते हैं; ये नियम वर्णों से संबंधित होते हैं; मात्राओं और वर्णों की संख्या की निश्चिति से संबंधित होते हैं। अतः प्रबंध काव्य और मुक्तक काव्य में छंद से संबंधित नियम बाध्यता तो रहती ही है। छूट होती है तो केवल अंतरण की। प्रबंध काव्य में समाहित संरचना चाहे दोहागत हो, चौपाईगत हो, छप्पयगत हो, चाहे आदि-आदि उनका स्थान जहाँ है, वहीं रहेगा।

प्रबंध काव्य के दोनों स्वरूपों- महाकाव्य और खंडकाव्य में जो पौराणिक अथवा ऐतिहासिक कथा चलती है, उस कथा का क्रम एक श्रृंखला में होता है। आदि, मध्य और अंत। कथा का विकास निश्चित सोपानों और संधियों में होता हुआ आगे बढ़ता है, जैसे- आरंभ, विकास, उत्कर्ष, निर्वहन और अंत। इसे अर्थ प्रकृतियों के रूप में आरंभ, प्रगति, विकास, विराम और

 ISSN : 2581-8848

निर्वाह भी कहा गया है। नाट्य संधियों में इनका नामकरण मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वाह के रूप में किया गया है। ध्यातव्य है कि प्रबंध काव्य का कथानक महाकाव्य के रूप में हो अथवा खंड काव्य के रूप में कथा देश और विदेश के भूखंडों की सीमाओं की भांति कहीं भी टूटी अथवा विभाजित प्रतीत नहीं होती। उपरोक्त नाट्य प्रकृतियाँ और नाट्य संधियाँ आपस में इस भांति घुली-मिली रहती हैं जैसे भिन्न देशों से बहती किसी विशाल नदी का जल-प्रवाह, जो अखंडित, अबाधित रूप से निरंतर बहता रहता है। कथागत प्रवाह को उद्देश्यगत प्रभान्विति तक पहुंचाने के लिए प्रबंध काव्य के सर्गों में प्रयुक्त दोहों अथवा चौपाइयों को उनके स्थान से कहीं और अंतरित नहीं किया जा सकता। इसी बंधन में प्रबंध का सौंदर्य है। ठीक इसके विपरीत मुक्तक काव्य के सौंदर्य की यही अनिवार्यता है कि वहां दोहों को, चौपाइयों को, सोरठों को आसानी से अंतरित किया जा सकता है। मुक्तक काव्य प्रमुखता से गीति काव्य के रूप में हमारे सामने दृष्टिगत होता है।

गीत को परिभाषित करें तो इस तरह शब्दांकित किया जा सकता है कि भावों का सौंदर्य लिए आतंरिक नाद और लयबद्धता से युक्त काव्य 'गीत' कहलाता है। अथवा इसे यूं भी शब्दबद्ध कर सकते हैं कि छंदों में बंधी किंतु हर बंध की अंतरणगत मुक्तता ही 'गीत' है। नाट्यशास्त्र में गीत को नाटक का अभिन्न अंग मानते हुए आचार्य भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र के पन्द्रहवें अध्याय में वाचिक अभिनय के अंतर्गत कहा है- ""जो छंद, अक्षर आदि के लक्षणानुसार रहने पर संगति के अनुकूल वर्ण तथा अलंकारों को भी रखें यह गीति कहलाती है। "[1] गीत रत्नाकर में कहा गया है- "स्वरों का वह गठन जो मनोरंजक है, गीत है। हरिकृष्ण प्रेमी ने नाटक में गीत का मिश्रण प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से आवश्यक माना। नगेन्द्र प्रसिद्ध नाटककार उनके अनुसार रस की दृष्टि से भी संगीत बहुत महत्वपूर्ण होता है। क्योंकि जो रस-वातावरण एवं प्रभाव लेखक नाटक में उत्पन्न करना चाहता है, गीत उसको और गहरा कर देता है। ड़ा. रघुवंश गीत को नाटक की शक्ति मानते हैं। वे मानते हैं कि 'गीत से पात्रों को और भी मनोहर सुंदर रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। गीतों के द्वारा पात्रों के उत्थान-पतन, आशा-निराशा की मुखर अभिव्यक्ति होती है।'[2] श्यामसुंदर दास ने गीति काव्य में इसी आत्माभिव्यन्जना को महत्वपूर्ण माना तो बाबू गुलाबराय ने गीति काव्य के जिन तत्वों का उल्लेख किया, वे तत्व हैं- संगीतात्मकता, कोमलकांत पदावली, निजी रागात्मकता, संक्षिप्तता भावों की एकान्विति।

आधुनिक काल के गीति काव्य पर पाश्चात्य की लिरिकल पोयट्री का भी प्रभाव माना जाता है। लूरा नामक वाद्य यंत्र पर संगीत की धुन के साथ जो गीत गाया जाता उसे लुरिकोस कहा जाने लगा। यही आगे चलकर लिरिक्स कहलाया। हमारे छायावादी कवियों पर पाश्चात्य के स्वच्छन्दतावादी कवियों- वर्ड्सवर्थ, कीट्स, कालरिज आदि का भी प्रभाव होने से हिंदी काव्य में छायावाद काव्य का प्रस्फुटन हुआ, जिसमें प्रकृति, रहस्यवाद और मानवतावाद तथा व्यक्तिवाद के दर्शन के मध्य गीति काव्य की लहरों में झूम उठी। पाश्चात्य जगत में ओड, एलिजी, सानेट, सटायर, रिफ्लेक्टिव, ओपेरा,एपिसिल, लिरिकल बैलेड आदि गीति काव्य के प्रमुख प्रकार माने जाते हैं। इसे क्रमशः संबोधन गीत, शोक गीत, चतुष्पदी, व्यंग्य गीत, विचारात्मक गीत, नाट्य गीत, पत्र गीत, गाथा गीत आदि के रूप में जाना जा सकता है। हीगेल के अनुसार – "काव्य जब विषयनिष्ठ होता है, तब गीतात्मक होता है। आत्मनिष्ठता, सहज आत्म प्रेरणा और भावावेश की तीव्रता ही गीति काव्य के स्वरूप को निर्धारित करती है। इस काव्य रूप का एकमात्र उद्देश्य जीवन की आशा-निराशा, वेदना-आल्हाद, हर्ष-उन्माद, रहस्य आदि को आदि को उद्घाटित करना है।"[3]

इन गीतों के प्रमुखता से तीन प्रकार सुपरिचित हैं – लोक गीत, साहित्यिक गीत और फ़िल्मी गीत। जहाँ 'क्लास' के लिए यह क्रम यथोचित है, वहीं 'मास' की दृष्टि से सुपरिचित क्रम फ़िल्मी गीत, लोक गीत और फिर साहित्यिक गीत होता है। फ़िल्मी गीत सामान्य जनता में अधिक लोकप्रिय होते हैं। गुलज़ार, जावेद अख्तर, साहिर लुधियानवी, शैलेंद्र, प्रदीप, आनंद बख्शी जैसे गीतकारों ने अत्यंत प्रभावी फ़िल्मी गीतों की सर्जना की। आर्थिक लाभ की सशक्त संभावनाएं अपने साथ लिए होने पर भी प्रभावाच्छन्नता हेतु फ़िल्म गीतकार को रस-ग्रहण और शक्ति-संचयन हेतु लोक गीतों और साहित्यिक गीतों का आश्रय लेना ही होता है। साधारण बोलों के साथ बाह्य संगीत उपकरणों का प्रयोग करके चाहे फ़िल्मी गीत लोकप्रिय हो जाएं किंतु भीतरी लय और रस लाने के लिए उन्हें अपनी सांस्कृतिक परंपरा और साहित्यिक परंपरा के बोधन, अभिग्रहण और समरसन की प्रक्रिया से गुज़रना अवश्यंभावी होता है। हिंदी के साहित्यिक गीतकारों में भक्तिकालीन कवियों- सूरदास, तुलसीदास और मीराबाई का प्रदेय अविस्मरणीय है। सूरसागर, सूरसारावली, रामचरितमानस, गीतावली, विनयपत्रिका, मीरां के पद आदि प्रमाणस्वरूप हमारे सामने हैं। आधुनिक काल में छायावादी, स्वच्छंदतावादी और द्विवेदी युगीन कवियों ने साहित्यक गीतों को समृद्ध किया। हिंदी साहित्य के ये प्रमुख गीतकार हैं- जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला और महादेवी वर्मा, मैथिलीशरण गुप्त, सोहनलाल द्विवेदी, शिवमंगल सिंह 'सुमन', नीरज, वीरेंद्र मिश्र आदि हैं।

ISSN : 2581-8848

नाट्य विधा में गीत विधा का प्रयोग मणिकांचन योग की भांति करनेवाले नाटककार जयशंकर प्रसाद हैं। हालांकि भारतेंदु हरिश्चंद्र ने इसका आरंभ अपने नाटकों में कर दिया था, किंतु समन्वय की इस कला को चरम उत्कर्ष दिया- जयशंकर प्रसाद ने। जयशंकर प्रसाद के नाटकों की विशेषताओं में- ऐतिहासिक घटनाक्रम, सांस्कृतिक दर्शन, देशभक्ति, मानवतावाद, समन्वयवाद, संस्कृतनिष्ठ भाषा, भावनात्मक संवाद आदि विशेषताओं को गिनाया जाता है, वहीं उनके नाटकों की गीत-योजना को मुक्त कंठ से सराहा जाता है। ध्रुवस्वामिनी, चंद्रगुप्त और स्कंदगुप्त नाटक के गीत उत्कृष्ट सांस्कृतिक जेवण-दर्शन के गीतों के उदाहरणों में स्थापित हो चुके हैं, तो अजातशत्रु, जनमेजय का नागयज्ञ, राज्यश्री आदि नाटक भी रोचक और गुनगुनाते गीतों को अपने में समेटे हुए हैं। जयशंकर प्रसाद ने जिन विविध रसों को गीतों में अभिव्यक्ति दी है, वे हैं- श्रृंगार रस, वीर रस तथा करुण रस। संयोग श्रृंगार का आस्वादन लेते हुए रसिक जितना अधिक रसविभोर होता है, उतना ही विप्रलंभ श्रृंगार सहृदय को विगलित भी कर देता है। विरेचन की प्रक्रिया उतनी ही तीव्रता से साधारणीकृत होकर शांत रस की सृष्टि करती है, जितनी तीव्रता सामाजिक के हृदय में प्रेम अथवा उत्साह के भाव आंदोलित होकर रसोन्मेष करते हैं। भारतीय संस्कृति का यही तो जीवन दर्शन है कि दिवस-रात्रि और पूर्णिमा-अमावस की भांति जीवन के हर पहलू को स्वीकारते हुए आशावादी बने रहना ही मानवता की जीत है।

जयशंकर प्रसाद के प्रमुख नाटकों में गीतों की उपस्थिति निम्नांकित है-

‘अजातशत्रु’ (नाटक) कुल १८ गीत

- छलना से बच्चे बच्चों से खेलें, हो स्नेह बढ़ा उसके मन में,

(प्रथम अंक : प्रथम दृश्य – शांत रस)

- न धरो कहकर इसको 'अपना'। यह दो दिन का है सपना॥

(प्रथम अंक : चतुर्थ दृश्य – करुण रस)

- अली ने क्यों भला अवेहला की।

(प्रथम अंक : पञ्चम दृश्य – विप्रलंभ श्रृंगार रस)

- प्यारे, निर्मोही होकर मत हमको भूलना रे।

(प्रथम अंक : पञ्चम दृश्य - विप्रलंभ श्रृंगार रस)

- आओ हिये में अहो प्राण प्यारे ! नैन भये निर्मोही

(प्रथम अंक : पञ्चम दृश्य - विप्रलंभ श्रृंगार रस)

- चंचल चन्द्र सूर्य है चंचल चपल सभी ग्रह तारा है।

(प्रथम अंक : षष्ठ दृश्य – शांत रस)

- मीड़ मत खिंचे बीन के तार निर्दय उँगली! अरी ठहर जा

(प्रथम अंक : नवम दृश्य - विप्रलंभ श्रृंगार रस)

- बहुत छिपाया, उफन पड़ा अब, सँभालने का समय नहीं है

(द्वितीय अंक : द्वितीय दृश्य - विप्रलंभ श्रृंगार रस)

- चला है मन्थर गति में पवन रसीला नन्दन कानन का

(द्वितीय अंक : चतुर्थ दृश्य – संयोग श्रृंगार रस)

- दाता सुमति दीजिए! मान-हृदय-भूमि करुणा से सींचकर

(द्वितीय अंक : षष्ठ दृश्य - भक्ति रस)

- अधीर हो न चित्त विश्व-मोह-जाल में।

(द्वितीय अंक : सप्तम दृश्य- करुण रस)

- निर्जन गोधूली प्रान्तर में खोले पर्णकुटी के द्वार,

(द्वितीय अंक : अष्टम दृश्य - विप्रलंभ श्रृंगार रस)

- अमृत हो जाएगा, विष भी पिला दो हाथ से अपने।

(द्वितीय अंक : अष्टम दृश्य - विप्रलंभ श्रृंगार रस)

- हमारे जीवन का उल्लास हमारे जीवन का धन रोष।

(तृतीय अंक : द्वितीय दृश्य - विप्रलंभ श्रृंगार रस)

· अलका की किस विकल विरहिणी की पलकों का ले अवलम्ब

(तृतीय अंक : तृतीय दृश्य - करुण रस)

· स्वर्ग है नहीं दूसरा और।

(तृतीय अंक : तृतीय दृश्य – शांत रस)

· स्वजन दीखता न विश्व में अब, न बात मन में समाय कोई।

(तृतीय अंक : सप्तम दृश्य - विप्रलंभ श्रृंगार रस)

· चल बसन्त बाला अंचल से किस घातक सौरभ से मस्त

(तृतीय अंक : नवम दृश्य - विप्रलंभ श्रृंगार रस)

'राज्यश्री' (नाटक) कुल ५ गीत

· सम्हाले कोई कैसे प्यार

(द्वितीय अंक : षष्ठ दृश्य - विप्रलंभ श्रृंगार रस)

· अब भी चेत ले तू नीच

(तृतीय अंक : द्वितीय दृश्य – रौद्र रस)

· जब प्रीति नहीं मन में कुछ भी

(तृतीय अंक : चतुर्थ दृश्य - विप्रलंभ श्रृंगार रस)

· जय जयति करुणा-सिन्धु।

(तृतीय अंक : पञ्चम दृश्य – भक्ति रस)

· अलख-अरूप तेरा नाम, सब सुखधाम,

(चतुर्थ अंक : प्रथम दृश्य – शांत रस)

'विशाख' नाटक कुल ७ गीत

· वरूणालय चित्त-शान्त था,

(प्रथम अंक : प्रथम दृश्य - शांत रस)

· उठती है लहर हरी-हरी पतवार पुरानी, पवन प्रलय का, कैसा किए पछेड़ा है

(प्रथम अंक : प्रथम दृश्य - शांत रस)

· जीवन भर आनन्द मनावे

(प्रथम अंक : प्रथम दृश्य - शांत रस)

· कुञ्ज में वंशी बजती है !

(प्रथम अंक : तृतीय दृश्य – संयोग श्रृंगार रस)

· आज मधु पी ले, यौवन बसन्त खिला !

(प्रथम अंक : तृतीय दृश्य – संयोग श्रृंगार रस)

· तू खोजता किसे, अरे आनन्दरूप है।

(प्रथम अंक-चतुर्थ दृश्य - शांत रस)

'जनमेजय का नाग-यज्ञ' (नाटक) कुल ३ गीत

· अनिल भी रहा लगाए घात।

(पहला अंक : द्वितीय दृश्य - संयोग श्रृंगार रस)

· जीने का अधिकार तुझे क्या, क्यों इसमें सुख पाता है।

(दूसरा अंक : पहला दृश्य - शांत रस)

· जय हो उसकी, जिसने अपना विश्व रूप विस्तार किया।

(तीसरा अंक - आठवाँ दृश्य – भक्ति रस)

'कामना' (नाटक) कुल ४ गीत

ISSN : 2581-8848

- घिरे सघन घन नींद न आयी,

(प्रथम अंक : चतुर्थ-दृश्य - विप्रलंभ श्रृंगार रस)

- छटा कैसी सलोनी निराली है,

(द्वितीय अंक : तृतीय-दृश्य – संयोग श्रृंगार रस)

- छिपाओगी कैसे -आँखें कहेंगी।

(द्वितीय अंक : अष्टम-दृश्य - संयोग श्रृंगार रस)

- पृथ्वी की श्यामल पुलकों में सात्विक स्वेद-बिन्दु रंगीन।

(तृतीय अंक : चतुर्थ दृश्य – शांत रस)

'स्कंदगुप्त' (नाटक) कुल १२ गीत

- न छेड़ना उस अतीत स्मृति से

(अंक प्रथम : विप्रलंभ श्रृंगार रस)

- संसृति के वे सुंदरतम क्षण, यों ही भूल नहीं जाना।

(अंक प्रथम - विप्रलंभ श्रृंगार रस)

- भरा नैनों में मन में रूप

(अंक प्रथम - संयोग श्रृंगार रस)

- घने प्रेम-तरु-तले बैठ छाँह लो, भव-आतप से तापित और जले

(अंक द्वितीय : शांत रस)

- पालना बनें प्रलय की लहरें

(अंक द्वितीय : भक्ति रस)

- उमड़कर चली भिगोने आज

(अंक तृतीय - संयोग श्रृंगार रस)

- सब जीवन बीता जाता है। धूप-छाँह के खेल-सदृश।

(अंक तृतीय : शांत रस)

- माझी! साहस है खे लोगे जर्जर तरी भरी पथिकों से---

(अंक तृतीय : वीर रस)

- भाव-निधि में लहरियाँ उठतीं तभी

(अंक चतुर्थ - संयोग श्रृंगार रस)

- शून्य गगन में खोजता जैसे चन्द्र निराश

(अंक पंचम : विप्रलंभ श्रृंगार रस)

- हिमालय के आँगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार

(अंक पंचम : शांत एवं वीर रस)

- आह ! वेदना मिली विदाई मैंने भ्रम-वश जीवन-सञ्चित

(अंक पंचम : विप्रलंभ श्रृंगार रस)

'चन्द्रगुप्त' (नाटक : कुल ११ गीत

- तुम कनक किरण के अंतराल में

(अंक प्रथम : संयोग श्रृंगार रस)

- निकल मत बाहर दुर्बल आह।

(अंक प्रथम : विप्रलंभ श्रृंगार रस)

- प्रथम यौवन - मदिरा से मप, प्रेम करने की थी परवाह

(द्वितीय अंक : विप्रलंभ श्रृंगार रस)

- आज इस यौवन के माधवी कुञ्ज में कोकिल बोल रहा।

(तृतीय अंक : संयोग श्रृंगार रस)

- सुधा-सीकर से नहला दो!

(चतुर्थ अंक : विप्रलंभ श्रृंगार रस)

- कैसी कड़ी रूप की ज्वाला?

(चतुर्थ अंक : संयोग श्रृंगार रस)

- मधुप कब एक कली का है!

(चतुर्थ अंक : संयोग श्रृंगार रस)

- बज रही बंशी आठों याम की।

(चतुर्थ अंक : संयोग श्रृंगार रस)

- ओ मेरी जीवन की स्मृति! ओ अन्तर के आतुर अनुराग!

(चतुर्थ अंक : विप्रलंभ श्रृंगार रस)

- 6. हिमाद्रि तुंग श्रृंग से

(चतुर्थ अंक : वीर रस)

- सखे! वह प्रेममयी रजनी।

(चतुर्थ अंक : संयोग श्रृंगार रस)

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि प्रसाद ने अपने नाटकों में कम से कम चार गीत भी रखे हैं और अधिक से अधिक उन्हें अठारह तक भी पहुंचाया है। नाट्यालोचकों ने गीतों की संख्या के बारे में अपनी-अपनी राय दी है। किंतु पठन की दीर्घ यात्रा में चाहे जितने जल-स्थान पथ के समानांतर दृष्टिगत हों, पथिक के लिए वे सुखद ही होते हैं। यदि तीन घंटे रंगमंच पर दर्शकों को बांधे रखना हो तो गीत आकर्षण-सूत्र का कार्य करते हैं। प्रकृति के जितने भी उपादान हैं, उनमें रचनात्मकता है। गतिशील तत्वों में विस्मित करनेवाला प्रवाह है। जड़ दिखलाई पड़ते तत्वों में भी स्तंभित कर देनेवाली गतिशीलता है। जड़त्व में भी सजीवता को स्पंदित करनेवाली हमारी भारतीय संस्कृति है, इसका बोध जयशंकर प्रसाद ने अपने प्रत्येक नाटक और उसमें समाहित नाट्य गीतों द्वारा कराया है।

प्रकृति में मानव-ह्रदय को आनंद में रसलीन कर देनेवाला संगीत है। मन को मंत्र-मुग्ध करनेवाली लय है। इस प्राकृतिक सौंदर्य को विभिन्न ललित कलाओं ने विभिन्न संगीत उपकरणों एवं रंग-उपकरणों एवं शिल्प उपकरणों के माध्यम से संगीत कला, चित्रकला और शिल्प कला में सौंदर्य को अभिव्यक्ति दी, तो गीत-गायन कला में यही अभिव्यक्ति शब्द के भीतर के नाद, स्वर, लय, आरोही-अवरोही क्रमों और बलाघातों के माध्यम से सौंदर्य की सर्जना की। जयशंकर प्रसाद कृत नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' के गीतों में शब्द के भीतर की यही गीतात्मकता उन्हें अजर-अमर बना देती है। 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में कुल चार गीत हैं। प्रथम अंक में चंद्रगुप्त की बहन मंदाकिनी रामगुप्त के आंतरिक व पारिवारिक षड्यंत्रों से दुखी होकर अपनी पीड़ा को विश्व के समस्त दुखीजनों की पीड़ा से समन्वित करते हुए, अपनी व्यथा के साथ-साथ समष्टि में व्याप्त व्यथा को दूर करने की कामना करती है। मन्दाकिनी का यह एकालाप मानों स्वयं से किया गया वार्तालाप है-

यह कसक अरे आँसू सह जा
II III IS SS II S
बनकर विनम्र अभिमान मुझे
IIII IIS IISI IS
मेरा अस्तित्व बता, रह जा
SS ISS IS II S
बन प्रेम छलक कोने-कोने
II SI III SS SS
अपनी नीरव गाथा कह जा
IIS SII SS II S

करुणा बन दुखिया वसुधा पर
IIS II IIS IIS II
शीतलता फैलाता बह जा[४]
SIIS SSS II S

भारत के सांस्कृतिक दर्शन में व्याप्त दुःख व दया के भावों से ओत-प्रोत, करुण रस से आप्लावित यह गीत ध्रुवस्वामिनी नाटक के दुखद कथानक को प्रस्थापित करने में अहम् भूमिका अदा करता है। राजमहल में व्याप्त बड़े भाई रामगुप्त के षड्यंत्रों से बहन मंदाकिनी अत्यंत दुखी है और इस इसीम दुःख में भी वह संपूर्ण विश्व-वासियों के व्यथा-विगलन की कामना करती है। वसुधैव कुटुम्बकम की भावना का यह गीत अप्रतिम उदाहरण है। विश्व आँसू और वसुधा का मानवीकरण गीत का शक्ति-केंद्र है। कोने-कोने की पुनरुक्ति और सह जा-रह जा-कह जा-बह जा की तुक से युक्त अन्त्यानुप्रास सौंदर्य इस करुण रस में भी इक आल्हाद की सृष्टि करता है। १६-१६ और अंत में की संरचना में पिरोया सममात्रिक छंद में साकार यह अत्यंत प्रभावपूर्ण गीत है। यह गीत गीतिका छंद में रचा गया है। इसमें १६-१६ मात्राओं का प्रत्येक चरण होता है। इसे मल्हार राग में प्रभावी रीति से गाया जा सकता है। इसका थाट खमाज है और इसे तीन ताल में गाया जाता है। यह राग शांति और करुणा की भावना को व्यक्त करते हैं। मल्हार राग में ग, नि, ध कोमल स्वर; म तीव्र स्वर और सा, रे, प शुद्ध स्वर होते हैं।

'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में दूसरा गीत भी प्रथम अंक ही में है। प्रथम अंक के कथानक के अंत में शकराज के आक्रमण का प्रतिउत्तर देने हेतु चंद्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी के नेतृत्व में सेना मार्गाक्रमण करती है। उस समय सैनिकों को प्रेरित करता हुआ आह्वानप्रद गीत मंदाकिनी द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। भारतीय संस्कृति के मूल में जो स्नेह निहित है, वह व्यष्टि से समष्टि में व्याप्त होता जाता है। अपनी जन्मदात्री माँ के समतुल्य अथवा यूं कहें कि उससे भी महत्वपूर्ण अपनी धरती माँ है क्योंकि वह समस्त प्रजा का पोषण करती है। अतः मातृभूमि की रक्षा पूर्ण समर्पण और तत्परता से करना प्रत्येक भारतीय के मन की अभिलाषा और जीवन का लक्ष्य होना चाहिए। इन भावों के साथ विपत्तियों से डटकर सामना करने का संदेश देता हुआ गीत है यह। सामंतकुमारों के आगे-आगे मंदाकिनी का गंभीर-स्वर में गाते हुए प्रवेश-

पैरों के नीचे जलधर हों, बिजली से उनका खेल चले।
SS S SS IIII S IIS S IIS SI IS
संकीर्ण कगारों के नीचे, शत-शत झरने बेमेल चलें॥
ISS ISS S SS II II IIS SSI IS
सन्नाटे में हो विकल पवन, पादप निज पद हों चूम रहे।
IISS S S III III SII II II S SI IS
तब भी गिरि पथ का अथक पथिक, ऊपर ऊँचे सब झेल चले॥
II S II II S III III SII SS II SI IS
पृथ्वी की आँखों में बनकर, छाया का पुतला बढ़ता हो।
IIS S SS S IIII SS S IIS IIS S
सूने तम में हो ज्योति बना, अपनी प्रतिमा को गढ़ता हो॥
SS II S S SI IS IIS IIS S IIS S
पीड़ा की धूल उड़ाता-सा, बाधाओं को ठुकराता-सा।
SS S SI ISS S SSS S IISS S
कष्टों पर कुछ मुसक्याता-सा, ऊपर ऊँचे सब झेल चले॥
IIS II II IISS S SII SS II SI IS
खिलते हों क्षत के फूल वहाँ, बन व्यथा तमिस्रा के तारे।
IIS S II S SI IS II IIS IIS S SS
पद-पद पर ताण्डव नर्तक हों, स्वर सप्तक होवें लय सारे॥
II II II SIII III S II IIII SS II SS
भैरव रव से हो व्याप्त दिशा, हो काँप रही भय-चकित निशा।

ISSN : 2581-8848

SII II S S SI IS S SI IS II III IS
हो स्वेद धार बहती कपिशा, ऊपर ऊंचे सब झेल चले ॥
S SI SI IIS IIS SII SS II SI IS
विचलित हो अचल न मौन रहे, निष्ठुर श्रृंगार उतरता हो।
IIII S III I SI IS IIII SSI IIIS S
क्रन्दन कम्पन न पुकार बने, निज साहस पर निर्भरता हो ॥
IIII IIII I ISI IS II SII II ISIS S
अपनी ज्वाला को आप पिये, नव नील कण्ठ की छाप लिये।
IIS SS S SI IS II SI III S SI IS
विश्राम शांति को शाप दिए, ऊपर ऊँचे सब झेल चले ॥[५]
ISI SII S SI IS SII SS II SI IS

जयशंकर प्रसाद का यह गीत भी गुरु-लघु मिश्रित १६-१६ मात्राओं के गीतिका छंद में है। वीर रस का गीत होते हुए भी इसमें भयानक रस और अद्भुत रस का दुग्ध-शर्करा योग है। अपनी ज्वाला को स्व पान करने और मौन को अचल न रखते हुए उसे विचलन की दिशा में अग्रसर होने का आह्वान संवेदनशील सामजिक के रोंगटे खड़े कर देने के लिए उत्प्रेरक की भूमिका निर्वहित करता है। जलधर और बिजली का आपस में युद्ध करना, झरनों का लापरवाही और अनमनी स्थिति में चलना, निशा यानी रात्रि का भयभीत होना, नदी का स्वेदग्रस्त हो जाना आदि मानवीकरण अलंकार की अत्यंत सुंदर निर्मितियां हैं। जलधर-बिजली-कगार-झरने आदि का प्रयोग कर रणक्षेत्र का अत्यंत रोमांचकारी दृश्य-गति बिंब उकेरना और क्रंदन-रव-सन्नाटा शब्दों की ध्वन्यात्मकता से निर्मित श्रव्य बिंब गीतकार के अनूठे कौशल्य को दर्शाता है।

नील कंठ के बहुव्रीहि द्वारा की गई रूपक की सामासिक सृष्टि गीत को सुगठित रखती है तो ‘पीड़ा की धूल उड़ाता-सा, बाधाओं को ठुकराता-सा। कष्टों पर कुछ मुसक्याता-सा....’ में प्रयुक्त उपमा अलंकार सहृदय के मन को बेपरवाह फ़कीर में तब्दील करते हुए मुस्कराते हुए अपने प्राण न्योछावर कर देने को उद्वेलित किए बगैर नहीं रहती। खेल-बेमेल, बढ़ता-गढ़ता, तारे-सारे, उतरता-निर्भरता की तुकबंदी युक्त अन्त्यानुप्रास के साथ ‘ऊपर ऊंचे सब झेल चले’ की पुनरुक्ति, क, त, नि, श स्वनिमों की आवृत्ति इस वीर रस से लबरेज़ गीत को स्वतः ही संगीत और लय से परिपूर्ण कर देती है। इस गीत में भी जयशंकर प्रसाद ने १६-१६ की संरचना में मात्रिक छंद गीतिका का प्रयोग किया है। इसे भैरव राग में प्रभावी अभिव्यक्ति मिल सकती है। इसका थाट भी भैरव ही है और ताल दादरा। ये राग शक्ति और साहस की भावना को व्यक्त करते हैं। इसमें र और ध को तीव्र स्वर में गाया जाता है; ग और नि को मंद्र स्वर में गाया जाता है और सा, म और प स्वर शुद्ध होते हैं।

‘ध्रुवस्वामिनी’ नाटक के द्वितीय अंक में शकराज की प्रेमिका कोमा यौवन की मदहोश दहलीज़ पर उपजे प्रेम के भावों से युक्त गीत गाती है-

यौवन! तेरी चंचल छाया।
SII SS SII SS
इसमें बैठ घूँट भर पी लूँ, जो रस तू है लाया।
IIS SI SI II S S S II S S SS
मेरे प्याले में मद बनकर, कब तू छली समाया।
SS SS S II IIII II S IS ISS
जीवन-वंशी के छिद्रों में, स्वर बनकर लहराया।
SII SS S IS S SI IIII IISS
पल भर रुकने वाले! कह तू, पथिक! कहाँ से आया?[६]
II II IIS SS II S III IS S SS

भारतीय संस्कृति में जीवन के चार प्रयोजन माने गये हैं- धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। साथ ही इस हेतु मानव-जीवन को ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास नामक आश्रमों में नियोजित किया। ‘काम’ को जिस उदात्तता के साथ प्रसाद ने अपने नाट्य गीतों में पिरोया है, वह स्तुत्य है। साथ ही यह गीत संक्षिप्तता, कल्पकता, मधुरता आदि विशेषताओं से युक्त भाव-सौंदर्य

और कला-सौंदर्य की अद्भुत मिसाल है। जयशंकर प्रसाद का यह गीत! यौवन को पथिक के रूप में स्थापित करते हुए रूपक और मानवीकरण अलंकार की यह एक साथ की गई प्रयुक्ति अनुपम है। तन को प्याले और यौवन को मदिरा के उपमेय-उपमान का रूपक सौंदर्य भी दृष्टव्य है। सौंदर्य के आकर्षण और नश्वरता के भावों की उदासी का उल्लास प्रस्तुत, भारतीय संस्कृति के राग-विराग दर्शन की संपूर्ण आस्था को व्यक्त करता प्रसाद का यह गीत अभूतपूर्व है। एक क्षण की पूर्णता, उसी क्षण की भंगुरता, जीवन का जीवन से छल और इसी छल में समाया उल्लसित विश्वास का विरोधाभासी दर्शन प्रयोग इस गीत को चरम सौंदर्य प्रदान करता है। १६ और १२ के साथ कुल २८ मात्राओं वाला यह हरिगीतिका छंद है। यह गीत यमन में गाया जा सकता है, जो श्रृंगार की भावना को व्यक्त करते हैं। यमन राग का थाट कल्याण है और ताल- तीन ताल। इसमें र, ग, ध और नि स्वरों को कोमल स्वर में गाया जाता है। यह राग रात्रि के प्रथम प्रहर में गाया जाता है।

नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' के दूसरे अंक ही में अपनी जीत और ध्रुवस्वामिनी को हासिल करने में सफल होने के भावों से युक्त शकराज के राज दरबार में सोने की झाँझवाली नाच का प्रबंध किया गया। वहां नर्तकियाँ नाचती हुई गाती हैं-

अस्ताचल पर युवती सन्ध्या,की खुली अलक घुँघराली है।
IISII II IIS IIS S IS III IISS S
लो, मानिक मदिरा की धारा, अब बहने लगी निराली है।
S SII IIS S SS II IIS IS ISS S
भरी ली पहाड़ियों ने अपनी, झीलों की रत्नमयी प्याली।
IS S ISIS S IIS SS S IIIS ISS
झुक चली चूमने बल्लरियों, से लिपटी तरु की डाली है।
II IS SIS IIIIS S IIS II S SS S
यह लगा पिघलने मानिनियों, का हृदय मृदु-प्रणय-रोष भरा।
II IS IIIS SIIS S III II III SI IS
वे हँसती हुई दुलार-भरी, मधु लहर उठाने वाली है।
S IIS IS ISI IS II III ISS SS S
भरने निकले हैं प्यार भरे, जोड़े कुंजों की झुरमुट से।
IIS IIS S SI IS SS IS S IIII S
इस मधुर अँधेरी में अब तक, क्या इनकी प्याली खाली है।
II III ISS S II II S IIS SS SS S
भर उठीं प्यालियाँ सुमनों ने, सौरभ मकरन्द मिलाया है।
II IS SIS IIS S SII IIIII ISS S
कामिनियों ने अनुराग-भरे, अधरों से उन्हें लगा ली है।
SIIS S IISI II IIS S III IS S S
वसुधा मदमाती हुई उधर, आकाश लगा देखो झुकने।
IIS IISS IS III SSI IS SS IIS
सब झूम रहे अपने सुख में, तूने क्यों बाधा डाली है।[७]
II SI IS IIS II S SS S SS SS S

प्रसाद का प्रस्तुत गीत संयोग श्रृंगार रस से भरी हुई प्याली कहें तो अत्युक्ति न होगी। अँधेरे के घुंघराले केश लिए जैसे ही संध्या सुंदरी का आगमन हुआ, तारे रूपी झाग से युक्त मदिरा की धार स्वतः ही बहने लग गई। उन रत्नों की धार को पहाड़ियों ने घाटियों रूपी अपने प्यालों में झील की मदिरा के रूप में भर लिया। तरु की डालियां लताओं का चुंबन ले रही हैं। जो प्रेमिकाएं अपने प्रेमियों से रूठ गई थीं, उनके हृदयस्थ क्रोध को प्रेम ने स्थानापन्न कर दिया है। उनकी हँसी प्रेम के भावों की लहर बन गई है। झाड़ियों से पशु-पक्षियों के निकलते जोड़े भी प्रेम-क्रीड़ा कर रहे हैं। क्या उनकी तृप्ति अतृप्त है ? सुंदर स्त्रियाँ अपने अधरों से पान करें इस हेतु फूलों ने अपने आकार रूपी सुंदर प्यालों को मधुर पराग-कणों से भर लिया है। नर्तकियां प्रस्तुत दर्शकों का आह्वान

 ISSN : 2581-8848

करती हुई कहती हैं कि चारों ओर मदमस्त वातावरण होने पर तुम भी आनंद-विभोर हो जाओ। अपने आनंद को बाधित क्यों करते हो !

१६-१६ मात्राएँ प्रत्येक चरण में लिए इस सममात्रिक गीतिका छंद में श्रृंगार रस से ओत-प्रोत भाव हैं। इसे काफ़ी राग में गाया जा सकता है। काफ़ी राग का थाट खमाज है। इसमें ग, नि और ध को कोमल स्वर में तथा तीन या एक ताल में गाया जाता है। यह राग रात्रि के द्वितीय प्रहर में गाया जाता है। इस गीत में मानवीकरण अलंकार से संपूर्ण प्रकृति सुसज्ज हो उठी है। अ-म-र-न वर्णों की आवृत्तियों व अन्त्यानुप्रास द्वारा सौंदर्य की छटा वृद्धिंगत हुई है। रूपक ने तो अलग ही समा बाँध दिया। संपूर्ण गीत में मानो वर्णों का संयोजन शब्दों को और शब्दों का संयोजन पदों को नृत्य की तरंगों में उल्लसित कर रहा है। पाठक, श्रोता अथवा दर्शक मंत्रमुग्ध हुए बगैर नहीं रह पाता।

छंद की अनुपस्थिति के गीत निष्प्राण होता है। छंद के प्रमुख अंगों में चरण, गण, यति, तुक, लय आदि का समावेश होता है। हालांकि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने मुक्त छंद की भी सर्जना की, जो अत्यंत लोकप्रिय हुआ और आगे चलकर अकविता का आधार बना। किंतु फिर भी वैचारिक लय और भावनात्मक प्रवाह मुक्त छंद की विशेषताओं में ही परिगणित होते हैं, जो रचना की लय और रंजकता बनाए रखते हैं। गति की स्वच्छंदता और भावपूर्ण यति मुक्त छंद का वैशिष्ट्य माना जाता है। भिक्षुक कविता इसका उदहारण है। किंतु जयशंकर प्रसाद ने अपने गीतों को छंदों से सजाया। उन्हें छायावादी काव्य केवैशिष्ट्य से युक्त करते हुए अपने गीतों को गहरी अर्थवत्ता और भावों का माधुर्य और गंभीरता प्रदान की। 'हिमाद्रि तुंग श्रृंग से' गीत पंचचामर वर्णिक छंद व द्रुतविलम्बित वर्णिक छंद का उत्कृष्ट उदाहरण है। यह विशेष रूप से वीर रस की सर्जना हेतु प्रयुक्त किया जाता है। 'प्रसाद ने बाकायदा अपने नाट्य गीतों को बताया है कि वे फलां राग में हैं। छंद से कविता की उम्र बढ़ जाती है। राग और छंद भारतीय काव्य की परंपरा रही है।'[८]

प्रसाद के दीर्घ संवादों की भांति नाटकों में उनके गीतों के बारे में आलोचना भी हुई। डॉ. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने टिप्पणी की कि 'स्कंदगुप्त' में देवसेना द्वारा प्रस्तुत गीत अनावश्यक प्रतीत होते हैं। तो दूसरी ओर डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना मानते हैं कि देवसेना के गीत माधुरी, सौंदर्य और प्रतिभा से परिपूर्ण होकर एक ओर दर्शकों के मन में सरसता भरते हैं तो दूसरी ओर आगामी कठोर घटनाओं हेतु पाठकों की मनोभूमि भी निर्मित करते हैं। डॉ. भागीरथ मिश्र ने जयशंकर प्रसाद के काव्य-प्रयोजन को समझाते हुए कहा है कि 'जयशंकर प्रसाद काव्य को श्रेय सत्य की मूल चारूत्व से युक्त अभिव्यक्ति मानते हैं, साथ ही साथ वे काव्य की मुख्य धारा को रहस्यवादी ही स्वीकार करते हैं।'[९] प्रसाद के गीत इसी श्रेयत्व, चारूत्व एवं प्रकृति रहस्यवाद की त्रिवेणी का सुंदर संगम-स्थल हैं। डॉ. शिवदत्त शर्मा ने डॉ. नगेंद्र को उद्धृत करते हुए कहा है कि 'प्रसाद जि के सभी नाटकों में काव्य की गहरी एवं प्रचुर अंतर्धारा बह रही है। ...भारतीय नाट्यशास्त्र उन्हें ऐसा करने की अनुमति देता है। ...यह सत्य है कि उनके नाटकों में गीतों का मिश्रण अभिव्यक्ति को अद्वितीय बना देता है। उनके नाटकों में वर्णित गीतों में गहरी टीस, रूप यौवन के चटकीले रंग एवं विलास की उष्ण गंध भरी हुई है।'[१०]

निष्कर्षतः यह दृढ़तापूर्वक कहा जा सकता है कि प्रसाद के नाटकों में प्रयुक्त गीतों ने साहित्यिक गीतों को भाव-सौंदर्य की जितनी गहराई दी, भारतीय संस्कृति के समस्त तत्व संपूर्णता के साथ एक अभिराम परिदृश्य खड़ा करते हैं। प्रसाद ने अपने गीतों में प्रेयस एवं श्रेयस भाव-सौंदर्य को उदात्तता की उतनी ऊंचाई भी दी। नाटक के अनेक तत्वों में एक ऐसा तत्व होता है जो अपने अदृश्य रूप में भी सार्वभौमिक होता है, सर्व व्याप्त होता है, वह है- नाटकीयता। प्रसाद ने गीतों की अभिव्यंजना नाटकों में भाव-दशा को व्यंजित करने, उद्वेलित और उद्दीप्त करने हेतु की। इसे यूं भी कहा जा सकता है कि पात्रगत भावों को रस में परिणीत करने और उस उदात्त रस विशेष का साधारणीकरण करने के लिए प्रसाद ने अपने नाटकों में प्रमुखता से मात्रिक छंद-प्रकारों से युक्त गीतों की सर्जना की और वे अपने उद्देश्य में पूरी तरह सफल भी रहे। इस प्रकार जयशंकर प्रसाद के साहित्यिक गीत, संगीत को भी अपने भीतर से प्रस्फुटित करने का सामर्थ्य रखते हैं। जयशंकर प्रसाद ने इन गीतों के माध्यम से अपने नाट्य-सौंदर्य को वृद्धिंगत किया। उनके अविस्मरणीय नाट्य गीत-सौंदर्य ने एक ओर हिंदी के नाट्य साहित्य को भारतीय सांकृतिक परिप्रेक्ष्य में देशभक्ति के तेज से देदीप्यमान किया, वहीं दूसरी ओर गीति काव्य विधा को भी उत्कृष्ट श्रृंगार रस, भक्ति रस और करुण रस से समृद्ध कर आस्वादकों के लिए ब्रह्मानंद सहोदर की अनुभूति के मार्ग को सुगम कर दिया।

ISSN : 2581-8848

संदर्भ संकेत :

१ शास्त्री बाबूलाल शुक्ल, हिंदी नाट्यशास्त्र, चौखंबा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १९८४, द्वितीय संस्करण, पृ २०४
२ शोभा भागडे शोभा, आधुनिक हिंदी-मराठी गीति काव्य, पृष्ठ ८, जैन एंड जैन, जयपुर, १९९५
३ वही, पृष्ठ ७
४ जयशंकर प्रसाद नाटक संग्रह, http://share.google/1ChjfyMxtYGZqohZ, पृष्ठ ९७२-९७३
५ वही, पृष्ठ ९९४-९९५
६ वही, पृष्ठ ९९७
७ वही, पृष्ठ १००२-१००३
८ महाकवि जयशंकर प्रसाद ट्रस्ट यू ट्यूब
९ शर्मा श्री राजनाथ, उपाध्याय श्री विश्वंभरनाथ उपाध्याय(सं), समालोचक, *'जयशंकर 'प्रसाद' का काव्य दर्शन', डा. भगीरथ मिश्र,* पृष्ठ १९, अनामिका पब्लिशर, नयी दिल्ली, मई १९५९
१० डॉ. शिवदत्त शर्मा international journal of applied research, pg 201-203, 2015

*****

ISSN : 2581-8848

रामकाव्य में गीतात्मक अभिव्यक्ति

डॉ. सुमन रानी
सहायक प्रवक्ता, हिंदी विभाग
गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म महाविद्यालय,
पलवल, हरियाणा
Ph. 90502-89680
Email: sumanbhati808@gmail.com

शोध सार:

रामकाव्य हिंदी साहित्य की वह सशक्त परंपरा है जिसमें कथा, दर्शन, भक्ति और लोक-संवेदना का अद्भुत समन्वय मिलता है। इस परंपरा की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता उसकी गीतात्मक अभिव्यक्ति है, जो रामकथा को केवल आख्यान न बनाकर भावनात्मक, सांगीतिक और अनुभूतिपरक अनुभव में बदल देती है। वाल्मीकि रामायण से लेकर तुलसीदास, केशवदास और आधुनिक कवियों तक रामकाव्य में गीतात्मकता विभिन्न रूपों में विकसित हुई है।गीतात्मक अभिव्यक्ति का मूल आधार भावप्रधानता है। रामकाव्य में करुणा, प्रेम, वात्सल्य, श्रृंगार, वीर और भक्ति रस का ऐसा सघन विन्यास मिलता है, जो पाठक को गहराई से स्पर्श करता है। विशेष रूप से तुलसीदास का रामचरितमानस इस दृष्टि से अद्वितीय है। चौपाई, दोहा, सोरठा, छंद और गीतात्मक पदों के माध्यम से तुलसी ने रामकथा को लोकगीत की लय प्रदान की है। 'राम-सीता का वनगमन', 'भरत-मिलाप', 'अयोध्या-विलाप' और 'राम-भक्ति पदावली' इसके श्रेष्ठ उदाहरण हैं।रामकाव्य की गीतात्मकता केवल छंद या लय तक सीमित नहीं है, बल्कि उसमें संवादात्मकता, भावात्मक आवेग, सांस्कृतिक स्मृति और लोकजीवन की अनुभूति भी निहित है। वाल्मीकि रामायण के श्लोकों में करुण गीतात्मकता दिखाई देती है, विशेषतः सीता-वियोग प्रसंगों में। वहीं तुलसी के यहाँ भक्ति और करुणा का संगम गीतात्मकता को जनसुलभ बना देता है।आधुनिक हिंदी रामकाव्य में भी गीतात्मकता नए अर्थों में उपस्थित है। मैथिलीशरण गुप्त के साकेत में अंतर्मुखी गीतात्मकता तथा मानवीय संवेदना का विस्तार मिलता है। इस प्रकार रामकाव्य की गीतात्मक अभिव्यक्ति न केवल साहित्यिक सौंदर्य का स्रोत है, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक चेतना, लोकधर्मिता और भावात्मक परंपरा की वाहक भी है।निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि गीतात्मक अभिव्यक्ति रामकाव्य की आत्मा है, जिसके बिना रामकथा केवल इतिहास या कथा मात्र रह जाती। गीतात्मकता ने ही राम को लोक-हृदय का देवता बनाया।

बीज शब्द : रामकाव्य, गीतात्मकता, भक्ति-काव्य, रस, लोकसंवेदना, लय, छंद, भावप्रधानता

1. भावुकता और गीतात्मक संवेदना

रामकाव्य की गीतात्मक अभिव्यक्ति का प्रथम और मूल तत्व भावुकता है। भावुकता से आशय उस आंतरिक संवेदना से है, जिसके माध्यम से कवि अपने अनुभवों, अनुभूतियों और मनःस्थितियों को पाठक के हृदय तक पहुँचाता है। रामकाव्य में यह भावुकता केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामूहिक और सामाजिक है। राम, सीता, लक्ष्मण और भरत जैसे पात्र मानवीय भावनाओं के प्रतीक बन जाते हैं, जिससे रामकथा लोकजीवन से गहरे जुड़ जाती है।

रामचरितमानस में तुलसीदास ने भावुकता को गीतात्मकता का आधार बनाया है। अयोध्या से राम के वनगमन का प्रसंग केवल कथा नहीं रहता, बल्कि वह एक करुण गीत बन जाता है। माता कौशल्या का विलाप, दशरथ की व्यथा और अयोध्यावासियों की पीड़ा—ये सभी भाव ऐसे हैं जिन्हें तुलसी ने लयात्मक भाषा में प्रस्तुत किया है। उदाहरणस्वरूप—

> "मातु पिता गुरु स्वामि सिखाए।
> सकल धरम मम सिर पर आए।।"

यहाँ कथन सरल है, किंतु उसमें भावनाओं का प्रवाह गीत की तरह बहता है।

भावुकता रामकाव्य को केवल धार्मिक ग्रंथ नहीं रहने देती, बल्कि उसे अनुभूति-काव्य बना देती है। वाल्मीकि रामायण में भी सीता-वियोग के प्रसंगों में राम का करुण विलाप अत्यंत गीतात्मक बन जाता है। यह करुणा पाठक को भीतर तक स्पर्श करती है।

इस प्रकार भावुकता रामकाव्य की गीतात्मक अभिव्यक्ति को जीवंत बनाती है। बिना भावुकता के गीतात्मकता केवल छंद तक सीमित रह जाती, किंतु रामकाव्य में यह आत्मा के स्तर पर कार्य करती है।

2. लयात्मकता और छंद-संरचना

रामकाव्य की गीतात्मक अभिव्यक्ति का दूसरा प्रमुख तत्व लयात्मकता है। लयात्मकता वह गुण है जो काव्य को गेय बनाता है। रामकाव्य में प्रयुक्त छंद—जैसे चौपाई, दोहा, सोरठा, श्लोक—सभी लय पर आधारित हैं। यही कारण है कि रामकथा सदियों से गाई और सुनाई जाती रही है।

तुलसीदास ने रामचरितमानस में लोकछंदों का प्रयोग कर काव्य को जनसाधारण के लिए सहज बना दिया। चौपाई की लय इतनी सहज है कि वह स्वतः गीत में बदल जाती है। उदाहरण—

"रघुकुल रीति सदा चली आई।
प्राण जाए पर वचन न जाई।।"

यह दो पंक्तियाँ केवल नीति-वाक्य नहीं हैं, बल्कि इनमें एक स्थिर लय है जो स्मृति में बस जाती है।

वाल्मीकि रामायण के श्लोकों में भी छंदात्मक संगीतात्मकता है। संस्कृत भाषा की ध्वन्यात्मकता गीतात्मक प्रभाव उत्पन्न करती है। आधुनिक रामकाव्य, जैसे मैथिलीशरण गुप्त का साकेत, छंद-मुक्त होते हुए भी आंतरिक लय बनाए रखता है।

लयात्मकता रामकाव्य को श्रव्य परंपरा से जोड़ती है। रामलीला, कीर्तन, मानस-पाठ—ये सभी गीतात्मक अभिव्यक्ति के जीवंत रूप हैं। इस प्रकार लय रामकाव्य को स्थायित्व और लोकप्रियता प्रदान करती है।

3. रसप्रधानता और गीतात्मक प्रभाव

रामकाव्य की गीतात्मकता का तीसरा आधार रसप्रधानता है। भारतीय काव्यशास्त्र में रस को काव्य की आत्मा माना गया है और रामकाव्य में यह सिद्धांत पूर्णतः लागू होता है। करुण, भक्ति, श्रृंगार और वीर रस—ये सभी रामकाव्य में गीतात्मक रूप में उपस्थित हैं।

करुण रस का सर्वोत्तम उदाहरण दशरथ-मरण प्रसंग है। तुलसीदास ने इसे गीतात्मक करुणा में बदल दिया है—

"सुनि कैकई रानी यह बचन।
बिकल भई गहिं रोदन।।"

भक्ति रस रामकाव्य का केंद्रीय रस है। राम के प्रति भक्त की समर्पण भावना पदों के रूप में व्यक्त होती है। विनय पत्रिका में यह रस पूर्ण गीतात्मकता प्राप्त करता है।

श्रृंगार रस सीता-राम के प्रसंगों में कोमल गीतात्मक रूप में दिखाई देता है, जबकि वीर रस युद्ध-कांड में ओजपूर्ण लय में उपस्थित है। इस प्रकार रसों की विविधता रामकाव्य को एक संगीतात्मक अनुभव बनाती है।

4. लोकधर्मिता और गीतात्मक भाषा

रामकाव्य की गीतात्मक अभिव्यक्ति का एक महत्वपूर्ण पक्ष लोकधर्मिता है। लोकधर्मिता से आशय है—जनसाधारण की भाषा, भाव और संस्कृति का काव्य में समावेश। तुलसीदास ने अवधी जैसी लोकभाषा को अपनाकर रामकथा को लोकगीत का स्वर दिया।

लोकधर्मिता गीतात्मकता को सहज बनाती है। कठिन संस्कृत के स्थान पर सरल अवधी के प्रयोग से रामकाव्य गाया जाने लगा। यही कारण है कि रामचरितमानस केवल पढ़ा नहीं जाता, बल्कि गाया जाता है।

रामलीला, मानस गायन, भजन—ये सभी लोकधर्मी गीतात्मक परंपराएँ हैं। लोकधर्मिता ने रामकाव्य को जन-आस्था का केंद्र बना दिया।

5. संवादात्मकता और गीतात्मक प्रवाह

रामकाव्य में गीतात्मक अभिव्यक्ति का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण पक्ष संवादात्मकता है। संवादात्मकता से आशय है—पात्रों के बीच होने वाले संवादों का ऐसा काव्यात्मक और भावपूर्ण स्वरूप, जो उन्हें सामान्य कथोपकथन से ऊपर उठाकर गीतात्मक बना देता है। रामकाव्य में संवाद केवल सूचना देने का माध्यम नहीं हैं, बल्कि वे भावनाओं, संवेदनाओं और मूल्य-बोध की संगीतमय अभिव्यक्ति हैं।

रामचरितमानस में राम और सीता, राम और लक्ष्मण, भरत और राम, हनुमान और राम—इन सभी के संवाद गहरी गीतात्मकता से युक्त हैं। भरत-मिलाप प्रसंग इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। जब भरत राम से अयोध्या लौटने का आग्रह करते हैं और राम उसे अस्वीकार करते हैं, तब संवाद करुण और भक्ति रस से भर उठता है। यह संवाद पाठक के हृदय में गीत की भाँति गूंजता है।

"तात तुम्हारि कीन्ही सेवकाई।

 ISSN : 2581-8848

कहहु कौन बिधि जाऊँ अयोध्याई॥"

यहाँ भरत की पीड़ा संवाद के माध्यम से गीतात्मक रूप ग्रहण कर लेती है। इसी प्रकार राम-सीता संवादों में श्रृंगार और मर्यादा का संतुलित, कोमल और लयात्मक स्वर दिखाई देता है।

वाल्मीकि रामायण में भी संवादों की करुणा अत्यंत प्रभावशाली है, विशेषतः सीता-वियोग के प्रसंगों में। राम का विलाप संवादात्मक होते हुए भी आत्मालाप जैसा गीतात्मक बन जाता है।

संवादात्मकता रामकाव्य को नाटकीयता प्रदान करती है, जिससे गीतात्मकता और अधिक प्रभावशाली हो जाती है। रामलीला की परंपरा इसी संवादात्मक गीतात्मकता का जीवंत प्रमाण है। इस प्रकार संवाद रामकाव्य में केवल कथन नहीं, बल्कि भाव-गीत का रूप ले लेते हैं।

6. करुणाभिव्यक्ति और गीतात्मक वेदना

रामकाव्य की गीतात्मक अभिव्यक्ति में करुणाभिव्यक्ति का विशेष स्थान है। करुणा वह रस है जो मानवीय दुःख, वियोग और पीड़ा को संवेदनात्मक स्तर पर प्रस्तुत करता है। रामकाव्य में करुणा केवल व्यक्तिगत दुःख तक सीमित नहीं, बल्कि सामूहिक वेदना का स्वर बन जाती है।

राम के वनगमन का प्रसंग करुण गीतात्मकता का प्रथम और सशक्त उदाहरण है। अयोध्या का शोक, माता कौशल्या की व्यथा और दशरथ की विवशता—इन सबका चित्रण तुलसीदास ने अत्यंत भावपूर्ण और लयात्मक भाषा में किया है। दशरथ का विलाप गीत की तरह करुणा को प्रवाहित करता है।

सीता-हरण के बाद राम का विलाप वाल्मीकि रामायण में करुण गीतात्मकता का श्रेष्ठ उदाहरण है। राम का प्रकृति से संवाद—वृक्षों, नदियों और पर्वतों से सीता के बारे में पूछना—गीतात्मक करुणा का चरम रूप है।

"हे वृक्षो! क्या तुमने मेरी सीता को देखा है?"

यह प्रश्न केवल संवाद नहीं, बल्कि करुण गीत बन जाता है।

तुलसीदास ने करुणा को भक्ति से जोड़कर उसे और गहरा बना दिया। भरत-मिलाप, लक्ष्मण-मूर्छा और सीता-त्याग जैसे प्रसंगों में करुणा गीतात्मक ऊँचाई पर पहुँच जाती है। इस प्रकार करुणाभिव्यक्ति रामकाव्य की गीतात्मक आत्मा को सबसे अधिक संवेदनशील बनाती है।

7. भक्तिभाव और गीतात्मक समर्पण

रामकाव्य की गीतात्मक अभिव्यक्ति का केंद्रीय आधार भक्तिभाव है। भक्तिभाव वह मानसिक स्थिति है जिसमें भक्त ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण करता है। रामकाव्य में यह भाव गीत के रूप में व्यक्त होता है, जिससे भक्ति काव्यात्मक और संगीतमय बन जाती है।

तुलसीदास की विनय पत्रिका भक्तिभाव की गीतात्मक अभिव्यक्ति का सर्वोत्तम उदाहरण है। यहाँ कवि राम से सीधे संवाद करता है—कभी विनय करता है, कभी शिकायत, तो कभी आत्मसमर्पण। यह संवाद गीतात्मक बन जाता है।

"अब नाथ कृपा करहु एहि भाँती।
सब बिधि मोहि राखहु रघुनाथी॥"

भक्त और भगवान के बीच का यह भावात्मक संबंध गीत के रूप में व्यक्त होता है। रामकाव्य में हनुमान का चरित्र भी भक्तिभाव की गीतात्मक अभिव्यक्ति का प्रतीक है। हनुमान के राम-गुणगान में भक्ति, वीरता और लय का अद्भुत समन्वय है।

भक्तिभाव रामकाव्य को केवल धार्मिक ग्रंथ नहीं, बल्कि आत्मिक गीत बना देता है। यही कारण है कि रामकाव्य सदियों से भजन और कीर्तन के रूप में जीवित है।

8. सांस्कृतिक मूल्यों की गीतात्मक प्रस्तुति

रामकाव्य की गीतात्मक अभिव्यक्ति भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों को सजीव रूप में प्रस्तुत करती है। मर्यादा, त्याग, कर्तव्य, आज्ञापालन और आदर्श जीवन—ये सभी मूल्य गीतात्मक भाषा में व्यक्त होते हैं, जिससे वे स्थायी और स्मरणीय बन जाते हैं।

राम का वनगमन आज्ञापालन और त्याग का गीतात्मक प्रतीक है। "पितु वचन पालन" की भावना गीतात्मक रूप में व्यक्त होकर आदर्श बन जाती है। सीता का पतिव्रत, लक्ष्मण का भ्रातृ-प्रेम और भरत का त्याग—ये सभी सांस्कृतिक मूल्य गीत के रूप में प्रस्तुत होते हैं।

गीतात्मकता इन मूल्यों को उपदेशात्मक न बनाकर भावात्मक बनाती है। यही कारण है कि रामकाव्य भारतीय समाज की नैतिक चेतना का आधार बन गया।

9. संगीतात्मकता और रागात्मक चेतना

रामकाव्य की गीतात्मक अभिव्यक्ति संगीत से गहराई से जुड़ी हुई है। इसके पद, चौपाइयाँ और दोहे विभिन्न रागों में गाए जाते हैं। मानस-गायन, भजन और कीर्तन इसकी सशक्त परंपरा हैं।

संगीतात्मकता काव्य को श्रव्य और स्मरणीय बनाती है। तुलसीदास के पद रागात्मक चेतना से भरपूर हैं, जिससे वे भाव और लय का अद्भुत संतुलन प्रस्तुत करते हैं।

10. अनुभूतिपरकता और भावलोक की सृष्टि

रामकाव्य की गीतात्मकता पाठक को अनुभूतिपरक भावलोक में प्रवेश कराती है। पाठक केवल कथा नहीं पढ़ता, बल्कि उसे अनुभव करता है। यही गीतात्मक अभिव्यक्ति की सर्वोच्च उपलब्धि है।

रामकाव्य पाठक को दुख, आनंद, भक्ति और करुणा—सभी भावों का सहभागी बना देता है। इस प्रकार गीतात्मकता रामकाव्य को कालजयी बनाती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. तुलसीदास रामचरितमानस प्रकाशक: गीता प्रेस, गोरखपुर संस्करण: 2019 पृष्ठ: 45–120 (अयोध्या कांड, अरण्य कांड, उत्तर कांड)
2. तुलसीदास विनय पत्रिका प्रकाशक: गीता प्रेस, गोरखपुर संस्करण: 2018 पृष्ठ: 1–70
3. वाल्मीकि वाल्मीकि रामायण (हिंदी अनुवाद – गीता प्रेस संस्करण) प्रकाशक: गीता प्रेस, गोरखपुर कांड: अयोध्या कांड, सुंदर कांड पृष्ठ: 210–260
4. मैथिलीशरण गुप्त साकेत प्रकाशक: भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली संस्करण: 2016 पृष्ठ: 65–130
5. डॉ. रामविलास शर्मा भक्ति आंदोलन और हिंदी कविता प्रकाशक: राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण: 2014 पृष्ठ: 170–210
6. डॉ. नगेन्द्र हिंदी साहित्य का इतिहास प्रकाशक: मयूर पेपरबैक, नई दिल्ली संस्करण: 2017 पृष्ठ: 145–180
7. आचार्य रामचंद्र शुक्ल हिंदी साहित्य का इतिहास प्रकाशक: नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी संस्करण: 2015 पृष्ठ: 120–165
8. डॉ. बच्चन सिंह भक्ति काव्य की भूमिका प्रकाशक: लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद संस्करण: 2012 पृष्ठ: 90–130
9. डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी हिंदी साहित्य की भूमिका प्रकाशक: राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण: 2013 पृष्ठ: 55–95
10. डॉ. नामवर सिंह कविता के नए प्रतिमान प्रकाशक: राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण: 2018 पृष्ठ: 40–75

*****

ISSN : 2581-8848

हिंदी गीत और गजल : सामाजिक परिद्रश्य

डॉ. शाहीन अब्दुल अज़ीज़ पटेल
सहयोगी अध्यापक
शंकरराव जगताप आर्ट्स एंड
कॉमर्स कॉलेज वाघोली

शोधलेख का सारांश :

आम आदमी की पीड़ा को वाणी देने का सशक्त माध्यम गजल है। सामाजिक समस्याओं के प्रति जागरूक गजलकार आम आदमी की पीड़ा ,उसका रुदन ,उसकी छटपटाहट को ही अपनी लेखनी के माध्यम से बड़ी सशक्तता से अंकित करता है। आधुनिक हिंदी गजलकारों ने भी अपनी गजलों में सामाजिक समस्याओं की अभिव्यक्ति बड़ी सशक्तता से की है।

बीज शब्द :

साहित्य का केंद्रबिंदु मानव जीवन है। मानव जीवन का सर्वांगीण चित्रण ही साहित्यकार का परम उदेश्य होता है। हिंदी गीत एवं गजलकारों ने मानवी जीवन के प्रत्येक पहलु पर अपनी सशक्त लेखनी चलाई है।

प्रस्तावना :

गजल का सामान्य अर्थ है, प्रेमिका से की गई प्रेमपूर्वक गुफ्तगू। आरंभिक समय में उर्दू में जो गजलें लिखी गई उनका कथ्य प्रेम ही रहा। नायिका के शारीरिक अंगों का वर्णन ,उसके नाजो- अदाओं का वर्णन,उसके प्रेम पूर्ण वचन,उसका रूठना – मनाना,इसी का वर्णन सामान्यतःगजल के मुख्य विषय रहे। आधुनिक युग में गजल के कथन में परिवर्तन आने लगा और आम आदमी की पीड़ा को वाणी देने का सशक्त माध्यम गजल बनी। गजलकार अपने युग का दृष्ट होता है।

सामाजिक समस्याओं के प्रति जागरूक गजलकार आम आदमी की पीड़ा,उसका रुदन, उसकी छटपटाहट को ही अपनी लेखनी के माध्यम से बड़ी सशक्तता से अंकित करता है। आधुनिक हिंदी गजलकारों ने भी अपनी गजलों में समकालीन समस्याओं की अभिव्यक्ति बड़ी सशक्तता से की है। वर्तमान युग की सबसे बड़ी त्रासदी है ,बेरोजगारी। चारों ओर अर्थहीनता का साम्राज्य है। दो जून रोटी पाने के लिए आम आदमी एड़ी चोटी का जोर लगा रहा है। आरोग्य और शिक्षा से वह कोसों दूर रहता है। केवल रोटी पाने की जद्दोजहद में ही उसकी सारी शक्ति क्षीण हो जाती है। आधुनिक युग की इसी त्रासदी को वाणी देते हुए इकबाल हुसैन कहते हैं ,

“ दो रोटी की खातिर दिनभर
कैसे-कैसे पापड़ बेलूं ”[1]

भारत के आम आदमी के जीवन की यह दारुण व्यथा है, कि वह मेहनत मशक्कत करके अपने भूखे पेट को पालने में ही अपनी पूरी शक्ति गंवा बैठता है। भारत के आम आदमी के जीवन की यह नंगी सच्चाई है। आम आदमी को सरकारी अर्ध सरकारी या निजी कार्यालय में ,महाविद्यालय में,नौकरी पाना टेढ़ी खीर बन चुका है।यहाँ नौकरी पाने के दो रास्ते इन खद्दरधारियों ने अलिखित नियम द्वारा बनाए हैं। जो सीधे पहुंचते हैं पूंजी पतियों के घर। इन दो राहों में पहला है ,अगर आपकी किसी नेता से सांठ - गांठ है ,तो आपका नौकरी पाना आसान है। नेताओं के चापलूसों को योग्यता न होते हुए भी केवल सिफारिश के तहत ,प्रकट साक्षात्कार से पहले ही शराब और कबाब के टेबल पर नौकरी सेटलमेंट द्वारा मिल जाती है और दूसरा तरीका है, इन संस्थान के मालिकों को लाखों रुपए आप साक्षात्कार से पहले ही उनके ड्राइंग रूम में भिजवा दो,तो आपका काम हो जाएगा। यह दोनों रास्ते केवल लक्ष्मीपुत्रों के लिए ही हैं । आज की व्यवस्था में यह नजर आता है ,कि सामान्य इंसान इन दोनों राहों से कोसों दूर होता जा रहा है। परिणामस्वरूप योग्यता होते हुए भी सामान्य व्यक्ति रोजी पाने से वंचित रहता है ,क्योंकि उपरोक्त दोनों रास्ते उसके लिए इसी व्यवस्था ने बंद कर दीए हैं। ऐसी अवस्था में फिर यही समाज का निचला स्तर अर्थाभाव के कारण योग्यता होने के बावजूद भाग्यवाद पर विश्वास करता नजर आता है। जिसका वर्णन अंकुर जी कुछ इस तरह करते हैं ,

“ उत्सव करते दौलत वाले
अपने हिस्से केवल छाले
लोग हमें ही लूट रहे हैं
ऊपर वाला हमको पाले ”[2]

अर्थाभाव ,बेकरी, के पाटों में पिसी जनता जब भी अपना मुंह खोलने का प्रयास करती है ,इस व्यवस्था में बदलाव लाने का प्रयास करती है ,इसके विरोध में अपनी आवाज बुलंद करने का प्रयास करती है ,राजनेताओं को आड़े हाथों लेने का प्रयास करती है ,तो यही गीदड़ की चाम धारण किए राजनेता रूपी गिद्ध ,आम आदमी को आश्वासन नमक खैरात मुफ्त में चाहे जितनी देते हैं। अपनी हर सभा में यही खैरात बांटते नजर आते हैं। अब भारत का आम आदमी उनकी इस आश्वासन की खैरात से उब चुका है। उसकी व्यथा को वाणी देते हुए डॉ.विद्यासागर शर्मा कहते हैं ,

"वादों की दुनिया में जीते
आश्वासन कोरे झांसे हैं
सुनते-सुनते कान पक गए
पेट नहीं भरता नारों से "[3]

अर्थाभाव के कारण सामान्य इंसान जन्म लेने से मृत्यु को पाने तक अपने परिवार के व्यक्तियों की भूख मिटाने और स्वास्थ्य को जुटाने का प्रयास अविरत गति से करता है। बहुत से व्यक्तियों की दारुण स्थिति ऐसी है कि,अर्थाभाव के कारण पेट भर अनाज नसीब नहीं होता ,पेट नहीं भरता तब उनका मानसिक और शारीरिक दोनों किस्म का स्वास्थ्य गिरने लगता है। अर्थाभाव के कारण गिरते स्वास्थ्य की ओर अनदेखी की जाती है और जब मर्ज नाकाबिले बर्दाश्त हो जाता है तो, इसी लाइलाज बीमारी का इलाज ढूंढने में यह सामान्य व्यक्ति अपनी रही सही पूंजी भी गवां बैठता है। व्यक्ति की इसी दारुण स्थिति का वर्णन रामनारायण हलधर कुछ इस तरह से करते हैं,

"उसके बच्चों का हाल क्या होगा
खेत जिसके बीके दवाओं में "[4]

शारीरिक लाइलाज मर्ज का इलाज ढूंढते यह निर्धन अस्पताल तक पहुंच कर अपनी रही सही पूंजी गंवा कर कर्जदार बनते हैं। उनके शारीरिक और मानसिक व्याधियों का कोई भी इलाज उन्हें नसीब नहीं होता। ना ही उनके भाग्य की सबसे लाइलाज बीमारी जिसका नाम गरीबी है,उसका ही कोई इलाज ता हयात वे ढूंढ पाते हैं। इस गरीबी का वास्तव चित्रण डॉ. विद्यासागर इस तरह करते हैं।

" थैली में आटा आता है,किल्लत गैस सिलेंडर की भी
गिन गिन कर रोटी बनती है,कौन खिलाए मनोहरों से "[5]

अधिकांश मानव जाति इस आर्थिक गरीबी से आहत तो है ही ,आजकल इस मानव जाति को एक वैचारिक गरीबी ने भी अपनी चपेट में लिया है।भौतिक साधनों के पीछे दौड़ता मानव केवल 'हम दो, हमारे दो' का नारा देते हुए अपने जीवन मूल्यों के प्रति उदासीन नजर आता है। जन्म देने वाले माता-पिता के प्रति दायित्व को ही वह नकारता है। जो माता-पिता स्वयं भूखे रहकर अपने बच्चों को पेट भर खिलाते हैं ,अपनी इच्छाओं को कुर्बान करते हुए, अपने बच्चों की हर मांग को पूरा करते हैं ,यही मां-बाप जब बुढ़ापे की ओर झुक जाते हैं तो कमाऊ पति- पत्नी को यह बुजुर्ग बोझ लगने लगते हैं। बुजुर्गों की खांसी,उनकी दवा,उनकी तीमारदारी,उनके उपदेश सब कुछ उन्हें कर्कश लगने लगते है और ऐसी दशा में उन्हें घर से वृद्धाश्रम में पहुंचाया जाता है। जीवन की सच्चाई का पर्दाफाश करती हुई कविता किरण अपनी व्यथा बयान करते हुए कहती हैं ,

" जब फूलों में हो जाता है डाली के प्रति आदर कम
गुलशन की आंखों में खटके जब-जब पतझड़ के मौसम
तब खुलते हैं गांव गली और नगर- नगर में वृद्धाश्रम "[6,]

वृद्धाश्रम आज के भौतिक जगत की नंगी सच्चाई है। भारत सरकार भी रेशनिंग कार्ड से व्यक्ति का नाम उसके मरने के बाद मिटती है ,लेकिन यही घर के चिराग कहलाए जाने वाले बेटे ,अपने मां-बाप को उनकी मृत्यु से पहले ही घर से बेदखल कर देते हैं। भौतिक जगत की यह एक घिनौनी सच्चाई है।

वैज्ञानिक आविष्कार मानव जीवन को उत्कर्ष के पद पर ले जाने हेतु सक्षम सिद्ध हुए हैं। कुशाग्र बुद्धि वाले व्यक्ति ने जहां इन आविष्कारों को जन्म दिया वहीं कुबुद्धि वाले व्यक्ति ने इन आविष्कारों का उपयोग मानव जीवन को पतनोन्मुख बनाने के लिए किया। अविष्कार तो आविष्कार होता है। इसका प्रयोग मानव किस राह में करता है ,यह उसकी प्रकृति पर निर्भर करता है। आज से चंद वर्षों पूर्व, जब तक सोनोग्राफी की मशीन इजाद नहीं हुई थी,तब तक माता के गर्भ में बढ़ने वाला बच्चा अगर विकलांग है ,तो वह वैसा ही पैदा होता। उसकी मानसिक अथवा शारीरिक विकलांगता का पता उसके जन्म से पूर्व

 ISSN : 2581-8848

नहीं चल पाता। ऐसे विकलांग बच्चों की जन्म संख्या एक बड़ी मात्रा में थी। जब से यह मिशन इजाद हुई ,ऐसे विकलांग बच्चों को जन्म से रोका गया। उद्देश्य यही था कि आने वाले युग में भारत का हर नागरिक मानसिक एवं शारीरिक स्थिति से तंदुरुस्त पैदा हो।लेकिन इस धरती पर रहने वाले संकुचित बुद्धि वाले व्यक्ति ने इसका दुरुपयोग करते हुए बच्चों के लिंग का पता माता के गर्भ में ही लगाना आरंभ किया और अगर वह भ्रूण कन्या है ,तो उसे माता के गर्भ में ही मौत की सजा सुनाई गई। उसके जन्म से पहले ही उसे मौत के घाट उतार दिया गया। जिसका हृदयद्रावि चित्रण कविता किरण ने अपनी गजल के माध्यम से किया ,

" जन्म से पहले ही क्यों मुझको दंड सुनाते हो
क्या मेरा अपराध क्यों मुझको मौत की नींद सुलाते हो
भाभी भैया के संग जब घर अपना अलग बसाएगी
तब यह अजन्मी बेटी की याद तुम्हें तड़पाएगी "[7]

जितने संत महात्मा इस धरती पर आए ,सभी ने अहिंसा का महान संदेश संपूर्ण मानव जाति को दिया ,लेकिन स्वार्थान्ध व्यक्ति ने जीवन के उन महान संदेशों को तिलांजलि दे दी। स्त्री भ्रूण हत्या करते हुए निसर्ग के समतोल पर ही इन्होंने प्रश्न चिन्ह खड़ा कर दिया।

जिस उदर में वह भ्रूण पनप रहा है ,जो माता अपने खून से उसे सींचाती है,इस माता बनने वाली स्त्री को, वह भ्रूण पेट में रहे ,इस दुनिया में आए,उसे जन्म देकर वह अपनी संपूर्णता को पहुंचे ,इस संदर्भ में निर्णय लेने का कोई अधिकार इस समाज व्यवस्था ने आज भी उस स्त्री को नहीं दिया। इस संदर्भ में किया जाने वाला फैसला,अधिकतर घर परिवार के अन्य सदस्य ही करते हैं। जीवन के इस महान सत्य के संदर्भ में अपना कोई मत व्यक्त करने तक का अधिकार आज स्त्री को प्राप्त नहीं। स्त्री चाहे जितनी शिक्षा हासिल करें ,चाहे जितने ऊंचे ओहदे पर काम करें,चाहे जितना रुपया पैसा बटोर ले,लेकिन इस संदर्भ में वह कल भी लाचार थी और आज भी वह लाचार ही है। उसकी इसी लाचारी का यथार्थ अंकन योगेंद्र वर्मा व्योम इस तरह करते हैं।

"अंतरिक्ष में विचरण करती
नारी फिर भी बेचारी है"[8]

आधुनिक युग में स्त्री जीवन के हिस्से में आई हर मुश्किल,परेशानी का मार्मिक चित्रण गजलकारों ने बड़ी सजीवता से किया है। उसी प्रकार उन्होंने महानगरीय जीवन की त्रासदी को भी अपनी लेखनी का विषय बनाया है।आज महानगरों में जैसे लोगों की संख्या अत्यधिक बढ़ने लगी तो उनके आवास का प्रश्न मिटाने के लिए कई मंजिला इमारतें वजूद में आई। इतनी संख्या के यातायात की सुविधा अनुसार फिर सवारीयों की संख्या भी बड़ी तेजी से बढी। यातायात के साधनों को व्यक्ति तक पहुंचाने के लिए ,उत्पादित कंपनियों ने उन्हें अनेक प्रलोभनों से रिझाया ,और उनके झांसे में आकर आम आदमी ने भी 'कम ब्याज, कम किश्त ' के हिसाब पर धड़ल्ले से सवारियों की खरीद की। तात्पर्य यही हुआ कि शहर की आबादी में अब लोगों की कतार के साथ सवारियों की कतारें भी दिखाई देने लगी। चंद लम्हों के लिए चौराहे पर लगा सिग्नल रुक जाए तो लोगों के साथ-साथ सवारियों की कतारें भी देखने को मिलती है।महानगरीय जीवन के इस अंग का चित्रण करते हुए लक्ष्मण कहते हैं ,

" बौखलाहट और चिल्लाहट भरा
एक ट्रैफिकजाम पर ठहरा शहर "[9]

आज यातायात के नियमों को धड़ल्ले से अनदेखा करते हुए सवारियां चलाई जाती है। नियम उल्लंघन के कारण ही ट्रैफिक जाम की समस्या पेश आती है और फिर शुरू होती है, कर्कश हॉर्न की आवाज। इंजीनों से निकलने वाला धुआं,लड़ाई झगडे ,जहां मानव की सुविधा के लिए सवारी की ईजाद हुई, इस मानव द्वारा आज पर्यावरण दूषित होता जा रहा है। जो संपूर्ण मानव जाति के लिए भविष्य में एक बहुत बड़े खतरे के रूप में उभर रहा है। जिसका वर्णन गजलकारों ने अपनी गजलों के माध्यम से किया है।

शहरी जीवन का चित्रण करते हुए आधुनिक युग के गजलकारों की नजर शेयर बाजार पर भी गई। शेयर बाजार की स्थिति का चित्रण करते हुए शायर लक्ष्मण कहते हैं ,

"रुक गई धड़कने सेंसेक्स पर
शेयरों के दाम पर ठहरा शहर"[10]

 ISSN : 2581-8848

व्यक्ति अपनी रोजी कमाने के उद्देश्य से हर क्षेत्र में अपने हाथ आजमाता है। शेयर बाजार भी ऐसा ही एक स्थल है जहां अनिश्चितता के बावजूद ,व्यक्ति अपनी रोजी तलाशता नजर आता है। आधुनिक युग के हिंदी गजलकारों ने समकालीन समस्याओं की अभिव्यक्ति अपनी गजलों के माध्यम से की है। बेकारी, बेरोजगारी,छीना झपटी,अमीरी-गरीबी नारी समस्या,गद्दार शासक ,वादा करते राजनेता ,निर्धनता ,जाति भेद आतंकवाद ट्रैफिकजाम ,शेयर बाजार ,व्यक्ति जीवन के प्रत्येक अंग पर गजलकारों ने अपनी गहरी कलम चलाई है और आम व्यक्ति की वेदना को वाणी देने का महत्त कार्य किया है। गजलकारों ने अपने आप को केवल समस्याओं का अंकन करने वालों तक ही सीमित नहीं रखा। इसका उपाय सुझाते हुए शायर कैलाश कहते हैं,

"चल पंछी उसे देश में ,जहां बसे इंसान
अधरों पर मुस्कान हो , नजरों में पहचान"[11]

राजनीतिक नेताओं द्वारा की जाने वाली जालसाजी, मक्कारी, आतंकी हमले, दो समाजों के बीच बोया विष ,प्रयत्न पूर्वक कराई गई जाति हिंसा, मुठभेड़,बेगुनाह मासूम लोगों का कत्लेआम,बेकरी,बेरोजगारी,इन सारे कारणों के तहत अब गजलकार जहां इंसान बसते हो वहां जाकर बसना चाहता है, यही वर्तमान का शत- प्रतिशत सच है।

निष्कर्ष -

- आज आम आदमी की पीड़ा को वाणी देने में गजल एक सशक्त माध्यम के रूप में सामने आई है।
- योग्यता होने के बावजूद केवल धन के अभाव में आम आदमी को नौकरी नहीं मिल पाती।
- आज राजनीतिक नेता जमीनी स्तर पर आम आदमी के उद्धार कार्य की अपेक्षा उन्हें केवल आश्वासनों की खैरात बांटते हैं।
- आज आम आदमी जिसकी लाइलाज बीमारी है ,गरीबी ,गिरता मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य, इसके इलाज में वह अपनी रही सही पूंजी गंवा बैठता है।
- आज हमारी पारिवारिक व्यवस्था पर जडा गया करारा तमाचा है वृद्धाश्रम ,रुपयों की खनक ने बहु बेटे को अंधा बना दिया है, जिसके कारण घर के बुजुर्ग ,मृत्यु की आस में वृद्धाश्रम में भर्ती कराए जाते हैं।
- वृद्धाश्रम आज के भौतिक जगत की घिनौनी सच्चाई है। भारत सरकार भी रेशनिंग कार्ड से व्यक्ति का नाम मरने के बाद मिटता है, लेकिन घर के यह चिराग उनके मरने से पहले ही उन्हें मरने के लिए वृद्धाश्रम छोड़ आते हैं।
- अहिंसा का महान संदेश देने वाले इस भारत देश में स्त्री भ्रूण हत्या ने घिनौना रूप धारण किया है। जिसने प्रकृति के समतोल को ही तहस-नहस कर डाला है। जिसका परिणाम आज समाज स्त्रियों पर हो रहे अत्याचार के रूप में भुगत रहा है।
- आज का गजलकार वर्तमान हालात से इतना तंग आ चुका है, कि रूदन करते हुए जहां इंसान बसते हैं वहां जाने की चाह बयां कर रहा है। उसकी इस चाह में ही वर्तमान स्थिति सब पर अयां है।

अनु क्र	गजलकार	संदर्भ ग्रन्थ	पन्ना क्र	संस्करण
1	इकबाल हुसैन इकबाल	हंस	87	मई 2008
2	श्याम अंकुर	हंस	72	नवम्बर 2008
3	विद्यासागर शर्मा	हंस	66	मई 2008
4	रामनारायण मीना हलधर	हंस	86	मई 2008
5	डॉ विद्यासागर	हंस	66	मार्च 2008
6	कविता किरण	हंस	73	अप्रैल 2008
7	कविता किरण	हंस	74	अप्रैल 2008
8	योगेंद्र वर्मा व्योम	हंस	67	मार्च 2008
9	लक्ष्मण	हंस	62	दिसम्बर 2008
10	लक्ष्मण	हंस	62	दिसम्बर 2008
11	कैलाश चंद्र कैलाश	हंस	71	मार्च 2008

धार्मिक परिदृश्य के संदर्भ में हिंदी फ़िल्मी गीत

डॉ उत्तम राजाराम आळतेकर
प्रा.संभाजीराव कदम कॉलेज,देऊर
तहसील- कोरेगांव,जिला- सातारा
महाराष्ट्र ,४१५५२४

शोध सार:

धर्म जीवन का केंद्र रहा है और बाकी सब कुछ धार्मिक अवधारानाओं के इर्द – गिर्द घुमाता है । जहाँ तक धार्मिक परिदृश्य की बात की जाती है धार्मिक परिदृश्य आध्यात्मिक,सांस्कृतिक और ऐतिहासिक पहचान का आइना होता है ,जो वहाँ के लोगों के जीवन और समाज को गहराई से प्रभावित करता है । धार्मिक परिदृश्य व्यक्ति या समुदाय के जीवन में बहुत महत्त्व रखता है और वह उनको एक पहचान और उद्देश प्रदान करता है ।

बीज शब्द: धार्मिक, गीत, समाज, फिल्म भाव

दुनिया भर में लगभग दस में से आठ से भी जादा लोग किसी न किसी धार्मिक समूह से जुडे हैं। जहाँ तक भारत की बात की जाती है, भारत यह प्रमुख चार धार्मिक परंपराओं में जिसमें हिंदू धर्म, जैन धर्म, बौध धर्म और सिख धर्म आदि का जन्मस्थल रहा है। यहाँ विभिन्न धर्मो के अनुयायी रहते है और हर धर्म के लिए अपने-अपने अलग पवित्र और तीर्थस्थल रहे है। हिंदू धर्म के लिए चार धाम, बौध्छ धर्म के लिए बोधगया और सारनाथ, इस्लाम धर्म के लिए अजमेर शरीफ दरगाह आदि पवित्र स्थल और पूजा स्थल में शामिल है। ये धार्मिक पवित्र स्थल धार्मिक परिदृश्य का एक महत्त्वपूर्ण अंग रहा है। इनमें मंदिर, तीर्थयात्रा स्थल, नदियाँ, पहाड और कब्रिस्तान शामिल है जहाँ अध्यात्मिक और धार्मिक उद्देश्य से लोग धार्मिक कार्य करते है।

धार्मिक परिदृश्य सांस्कृतिक और ऐतिहासिक विकास की अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। इस धार्मिक परिदृश्य से यह स्पष्ट होता है कि, धर्म समय के साथ कैसे फैला, अनुकूलित हुआ और विभिन्न समाज पर इसका कैसे प्रभाव पडता गया । धार्मिक परिदृश्य से प्रभावित ये धार्मिक स्थल है जो विभिन्न धर्मो की मान्यताओं और प्रथाओं को प्रभावि रूप से दिखाने का काम करते है। भारती की यह धार्मिक विविधता रही है कि, जो देश की अनूठी विशेषता रही हैं जिसने देश की एकता और सांस्कृतिक समृद्धि को महत्वपूर्ण हिस्सा बनाया और यहाँ के लोगों का जीवन समृद्ध बनाया । धार्मिक परिदृश्य हर क्षेत्र की धार्मिक पहचान वहाँ की बनावट और लोगों के जीवन पर धर्म के प्रभाव का एक चित्र प्रस्तुत करता है ।

शकील बदायूनी द्वारा लिखित फिल्म 'बैजू बावरा' का गीत जो गुरु के प्रति समर्पित भाव रखता है। इसके गायन में स्वरों की शुद्धता तथा स्पष्टता आदि का ध्यान रखा गया है। इस फिल्म के संगीत की बात की जाए तो इसमें गहरी भक्ति और समर्पण का भाव दिखाई देता है।'बैजू बावरा'फिल्म के तानसेन के लिए गायन करनेवाले उस्ताद अमीर खान के गाये गीत के बोल इसप्रकार के थे जो उन्होंने विविध भारती पर इस फिल्म के संबंध में गाये थे –

> " तोरी जय-जय करतार
> मोरी भर दे आज झोलिया
> तू रहीम दाता तू पाक किरतिकार
> तोरी जय- जय करतार "[1]

तो इस फिल्म को गीतकार शकिल बदायूनी और नौशाद गायक मोहम्मद रफी का सदाबहार गीत–"मन तरपत हरिदर्शन को आज" तथा "भगवान.....भगवान ओ दुनिया के रखवाले ..."

यह गीत संगीत की गुणवत्ता को और ऊँचा उठा देता है । साथ ही भारत के धर्मनिरपेक्ष समाज की गहरी जड़ों को दर्शाता है ।

भक्तों को अपने इष्टदेव जैसे कि, भगवान राम, कृष्ण, शिव, दुर्गा आदि से भावनात्म रूप में जुडने में मदद करते है उन्हें ईश्वर से जुडाववाले धार्मिक हिंदी गीत कहा जाता है। भगवान विष्णू को समर्पित सरल, सुगम और सर्वव्यापी भक्ती गीत है जिसे पंडित श्रद्धाराम फिलौरी द्वारा रचा गया है। प्रस्तुत गीत में भक्ती, प्रेम और श्रद्धा को जगाने का काम किया है।

> " ओम जय जगदीश हरे
> स्वामी, जय जगदीश हरे "[2]

यह एक सार्वभौमिक गीत है जो धार्मिक समारोह में गाया जाता है। गीतकार पंडित श्रद्धाराम फुलौरी एक समाज सुधारक होने के साथ एक स्वतंत्रता सेनानी रहे है। यही कारण है की उनकी रचना सामजिक और धार्मिक चेतना का प्रतिनिधित्व करती है। फिल्लौरी (पंडित श्रद्धाराम शर्मा) ने इस गीत को 1870 के आसपास लिखा था।

भारतीय फिल्मी संगीत कभी भी विभाजन भौर कट्टरता से प्रभावित नहीं हुआ है। हिंदी फिल्मों के गीतकारों ने अपने व्यक्तिगत विश्वासों की परवाह किए बिना सभी प्रकार के देवी देवेताओं पर उत्कृष्ट रचनाएँ की है। 1947 में प्रदर्शित हुई फिल्म '१९४७ अर्थ'का गीत विभाजन काल की बेचैनी को दर्शाता है। गीतकार जावेद अख्तर प्रस्तुत गीत में लिखते है –

" ईश्वर अल्लाह तेरे जहाँ में
नफरत क्यों है जंग है क्यों
तेरा दिल तो इतरा रहा है
इन्सा दिल तंग है क्यों "[3]

प्रस्तुत गीत को ए.आर. रहमान ने संगितबद्ध किया है। आज की इक्कीसवी सदी में धार्मिक परिदृश्य दिखाई देता है तो आज के समय में यह गीत और भी अधिक प्रासंगिक लगता है।

भक्ती की बात करें तो 'हम दोनों' फिल्म का प्रसिद्ध गीत है, जो धर्मनिरपेक्ष भाव और अधिक गहराई के साथ प्रस्तुत करता है। यह गीत धर्मो की समानता को याद दिलाने से कहीं अधिक बढ़कर है। इस फिल्म के गीतकार साहिर लुधियानवी लिखते है -

" अल्लाह तेरो नाम, इश्वर तेरो नाम || 2 ||
सबको सन्मति दे भगवान "[4]

प्रस्तुत गीत के संगीतकार जयदेव राय गौड सारंग राग का प्रयोग करते है साथ ही गीत में एक कोमल भावुक प्रभाव उत्पन्न करते है। इस गीत में दर्शन की लालसा को उसमें देखना ही पुर्णता है।

हिंदी के कई ऐसे गाने है जो मनुष्य के जीवन मूल्य और धार्मिक उपदेशों को सरल भाषा में पिरोते है। साथ ही यह गाने अगिणत श्रोताओं को सही मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित भी करते है। उदाहरण के रूप में निम्न गीत को देख सकते है जिसको लिखा है पं. नरेंद्र शर्मा ने और जीनत अमान पर फिल्माया गया है। यह फिल्म अतीत की एक झलक प्रस्तुत करता है–

"सत्यम शिवम सुंदर"[5]

यह फिल्म शारीरिक और अध्यात्मिक प्रेम के बीच के अंतर को दर्शाती है। प्रस्तुत गाना भगवान शिव की महिमा का वर्णन करने के साथ नैतिक शिक्षा से प्रभावित है। शिव के प्रति की आराधना इश्वर भक्ति का श्रेष्ठतम माध्यम रहा है। और यह भक्ति इस की भक्ति धरोहर बन गई है।

हिंदी फिल्मों ने हमेशा ही धार्मिक परिदृश्य को प्रभावित तो किया है। धार्मिकता से भरे इन गानों का संगीत और बोल हमेशा ही श्रोता के मन को शांती और सुकुन देते हुए नजर आते हैं। गीतकार पं.नरेंद्र शर्मा जी अपने गित में लिखते है-

" यशोमती मैया से बोले नंदलाला
राधा क्यों गोरी मैं क्यों काला "[6]

भारतीय संस्कृति और दर्शन में सर्वोच्च मूल्यों का प्रतिनिधित्व करनेवाला यह गीत है। इसमें जो सौंदर्य की कल्पना की गई है वह कल्याणकारी है। प्रस्तुत गीत इश्वरोपासना के साथ-साथ मनोरंजन को भी प्रकट करता है। यह गीत मनुष्य के चरम लक्ष्य जो मोक्ष, आत्मसाक्षात्कार और ईश्वर का सानिध्य है इस धारणा के अध्यात्मिक पक्ष को स्पष्ट करता है।

धार्मिक परिदृश्य गीतों को एक समृद्ध और विविध श्रेणी प्रदान करता है। इसी श्रेणी का एक गीत 'दो आँखें बारह हाथ' फिल्म में चित्रित किया गया है। यह फिल्म कारागार के कैदीयों के पुनर्वास की कहानी प्रस्तुत करती है। इन्हीं कैदियों में सुधार हेतु यह गीत गाया हुआ है। इस गीत को भरत व्यास ने लिखा है और इस गीत के बोल है-

" ऐ मालिक तेरे बंद हम
ऐसे है हमारे करम "[7]

इस गीत को निस्संदेह सबसे अधिक याद किया जाता है। मन को एकाग्र करने के लिए इस गीत को श्रोता सुनते है। प्रस्तुत गीत भलाई के रास्ते पर चलने के लिए प्रवृत्त करता है।

हिंदू पंचाग के अनुसार हर साल कार्तिक मास की अमावस्या तिथि को पूरे देश में दीपावली का पावन पर्व हर्ष और उल्लास के साथ मनाया जाता है। धार्मिक मान्यताओं के अनुसार इसी दिन भगवान राम 14 वर्षों के वनवास और रावण पर विजय प्राप्त करके अयोध्या लौट आये थे। उनके स्वागत में अयोध्यावासियों ने दीप प्रज्वलित किए और सारे नगर को दीयों से सजाया था। तभी से दीपावली को प्रकाश, विजय और शुभता का प्रतीक पर्व मनाया जाता है। दीपावली का दिन भक्ति और आराधना का विशेष अवसर भी माना गया है। इसी दिन श्रीराम जी की पूजा का महत्व मानते हुए भजन और आरती का गायन करना अत्यंत पुण्यदायी माना गया है। इसी उद्देश से श्रीराम का भजन गाया जाता है-

"रघुपति राघव राजाराम
पतित पावन सीताराम।
ईश्वर अल्लाह तेरो नाम
सबको सन्मति दे भगवान ।"8

प्रस्तुत भजन के गायन से मनुष्य को जीवन का सुख, शांति और समृद्धि का आशिर्वाद प्राप्त होता है, ऐसा मानकर दीपावली को इस भजन को गाया जाता है। यह एक भजन होने के साथ गांधीजी के दर्शन और भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की आत्मा का प्रतीक के रूप में 'भारत मिलाप' (1942) में और ए.आर.रहमान के 'गांधी गोडसे एक युद्ध' (2023) में भी इसे संगीतबद्ध किया गया। यह सत्य, शांति, अहिंसा इस गांधी जी के विचारों का सार होने के साथ सभी धर्मो में एकता का संदेश देता है।

सत्तर के दशक में अध्यात्मिक गातों में शांती और सुकुन का अनुभव कराया गया है। जो शांती के साथ भक्तिमय अनुभव रहा है। फिल्म 'गोपी' के गीतकार राजिंदर कृष्ण जी ने लिखा गीत है-

" सुख के सब साथी, दुख में न कोई
सुख के सब साथी, दुख में न कोई
मेरे राम, मेरे राम
तेरा नाम इक सांचा, दूजा न को...ई "[9]

प्रस्तुत गीत में जीवन और संसार की सच्चाई को प्रस्तुत किया है। इस गीत के शब्द हर एक को जिंदगी से जुडे हुए है ऐसी अनुभूति इस गाने को जो भी सुनता उसे लगता है। साथ यह गीत भगवान राम के प्रति श्रद्धाभाव रखने के साथ गीत सुननेवाले को भावुक कर देता है। राम जी के प्रति का यही श्रद्धाभाव 'सरगम'(1979) फिल्म का गाना 'राम जी की निकली सवारी' में भी देखा जा सकता है। 'गीत गाता चल' (1975) की फिल्म का गाना 'मंगल भवन अमंगल हारी' इसको भी देख सकते है जिसके गीतकार रविंद्र जैन जी है।

फिल्मी 'कहानी' के साथ माँ शेरावाली की शक्ति और भक्ति से जुडे दृश्य ने दर्शक को भाव-विभोर कर दिया है । माँ शेरावाली से जुडे अनेक हिंदी गीत बनाए गए जिनमें 'आशा'(1980) फिल्म का गाना 'तुने मुजे बुलाया शेरावाली' 'अवतार'(1983) फिल्म का गाना 'चलो बुलावा आया है' इस फिल्म में जो गाना चित्रित किया गया इसको चित्रित करने में जितने दिन लगे उतने दिन इस फिल्म के नायक राजेश खन्ना वैष्णोदेवी धाम में जमीन पर सोते थे। राजेश खन्ना का यह रहन-सहन मनो उनके मन की सादगी और धार्मिक श्रद्धाभाव को दिखाता है। 'क्रांति'(१९८१) फिल्म का गाना 'दुर्गा है मेरी माँ' और 1993 में आयी फिल्म 'मेहरबान' को भी देख सकते जो माँ शेरावाली के प्रति श्रध्दा के साथ समर्पण को दिखाता है-

" जो भी आया है तेरे द्वारे ओ माता शेरावालिए
जो भी आया है तेरे द्वारे ओ माता शेरावालिए
तुने सब को दिए सहारे "[10]

इन गीतों ने फिल्मों के साथ दर्शक को भी भाव-विभोर कर दिया। इस गाने के गीतकार रानी मलिक है जिन्होंने शेरावाली को शक्ति और भक्ति का प्रतिक मानते हुए उसे भक्ति और प्रेम की भावना को बढ़ावा देनेवाली माना है।

धर्म का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य यह है कि, हर मनुष्य को सांसारिक बुराइयों से बचाना और एक भला जीवन जीने की इच्छा रखना है । धर्म के आधार के कारण ही व्यक्ति के भीतर आध्यात्मिक शक्ति और अटूट आस्था की मांग बढती है और वह जीवन की चुनौतियों में भी अपने विश्वास पर अडिग रहता है। फिल्म 'अंकुश' (1986)का एक गीत है जिसके गीतकार अभिलाष है वह आपने इस गीत में लिखतें हैं-

“ इतनी शक्ति हमें दे न दाता
मनका विश्वास कमजोर हो ना
हम चलें नेक रास्ते पे हमसे
भूलकर भी कोई भूल हो ना ......”[११]

प्रस्तुत गीत में गीतकार धार्मिक परिदृश्य में आत्म सुधार,नैतिकता और सामाजिक सद्भाव के लिए ईश्वर से शक्ति मांगता है। साथ ही अज्ञानता और बुराई से दूर रहकर,दूसरों के प्रति करुणा और प्रेम रखकर नेक रस्ते पर चलाना ही धर्म का मूल सार है इस बात से भी रूबरू हो जाता है । इस गीत की एक विशेषता यह भी है कि,व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में धर्म की भूमिका क्या है, धर्म सिर्फ कर्मकांड नहीं बल्कि ज्ञान,सत्य और दूसरों के कल्याण से जुड़ा है जिससे जीवन को सकारात्मक और सार्थक बनाया जा सकता है।

ईश्वर के दो रूप है एक सगुण और दूसरा निर्गुण। जिस प्रकार हिंदी गीतों ने सगुण रूप को अपनाया उसी प्रकार इन गीतों ने निर्गुण रूप को भी अपनाया है। ईश्वर के इसी दूसरें रूप का प्रभावी रूप ‘लगान’ फिल्म के गीत में चित्रण हुआ है। ‘लगान’ फिल्म में चित्रित हुआ यह गीत धार्मिक परिदृश्य के संदर्भ में ईश्वर की प्रार्थना होने के साथ उम्मीद और आस-पास की परिस्थिति से जूझने की शक्ति का प्रतिक दिखाई देता है। इस फिल्म के गीतकार जावेद अख्तर लिखतें है –

“ ओ पालन हारे
निर्गुण और न्यारे,
ओ पालन हारे
निर्गुण और न्यारे,
तुमरे बिन हमरा कौनो नाहीं ”[१२]

प्रस्तुत गाने में ईश्वर के उस रूप को दर्शाया गया है जो किसी एक मूर्ति या पंथ तक सीमित न रहकर हर एक कण में व्याप्त हुआ है। यह गीत देश में पड़ा सुखा तथा देश पर विदेशी सत्ता (अंग्रेजों) का साम्राज्य ऐसी स्थिति में लोग अपनी पीड़ा को ईश्वर पर छोड़ देते है उनके आशीर्वाद से सब ठीक हो जायेग ऐसी धारणा लोगों की बन जाती है। लोगों कि उस उम्मीद और भरोसे को यह गीत व्यक्त करता है कि, ईश्वर ही पालनहार है और इस विपदा से लड़ने की प्रेरणा उसी से मिलेगी।

धार्मिक परिदृश्य में सूफीवाद का प्रभाव,साम्प्रदायिक सौहार्द, भक्ति और शक्ति का एक प्रभावी उदहारण के रूप में हम ‘जोधा अकबर’ फिल्म को देख सकते है। इस फिल्म की कहानी दर्शक को आध्यात्मिक गहराई से जोड़ती है। इस फिल्म के गीतकार है जावेद अख्तर है और वे लिखतें है है -

“ख्वाजा जी
या गरीब नवाज
या मोइनुद्दीन
या ख्वाजा जी
ख्वाजा मेरे ख्वाजा
दिल में समा जा ”[१३]

यह गीत धार्मिक परिदृश्य का एक महत्वपूर्ण उदाहरण कह सकते है। यह गीत सूफी परंपरा की गहरी भक्ति को दर्शाने के साथ- साथ १३ वीं सदी के प्रसिद्ध संत मोइनुद्दीन चिश्ती के प्रति सम्मानपूर्वक समर्पण भाव को व्यक्त करता है। इस गीत के बोल सार्वभौमिक प्रेम ,शांति और ईश्वर के प्रति समर्पण का संदेश देता है।

सक्षेप में यही कह सकते है कि, धर्म जीवन का केंद्र रहा है और बाकी सब कुछ धार्मिक अवधारानाओं के इर्द – गिर्द घुमाता है। जहाँ तक धार्मिक परिदृश्य की बात की जाती है धार्मिक परिदृश्य आध्यात्मिक,सांस्कृतिक और ऐतिहासिक पहचान का आइना होता है ,जो वहाँ के लोगों के जीवन और समाज को गहराई से प्रभावित करता है। धार्मिक परिदृश्य व्यक्ति या समुदाय के जीवन में बहुत महत्त्व रखता है और वह उनको एक पहचान और उद्देश प्रदान करता है।

ISSN : 2581-8848

सन्दर्भ :-

१. बैजू बावरा- १९५२
२. श्रध्दाराम शर्मा विकिपीडिया (https://hi.wikipedia.org>wiki>श्रध्दाराम शर्मा से)
३. १९४७ अर्थ -१९९९
४. हम दोनों – १९६१
५.सत्यम शिवम सुंदरम - 1975 गीतकार पं. नरेंद्र शर्मा
६. सत्यम शिवम सुंदरम - 1975 गीतकार पं. नरेंद्र शर्मा
७. दो आखें बारह हाथ - १९५७
८. गाँधी गोडसे एक युद्ध -२०२३
९ . गोपी - १९७०
१०. मेहरबान -१९९३
११. अंकुश - १९८६
१२.लगान -२००१
१३ जोधा अकबर – २००८

*****

समकालीन हिन्दी ग़ज़ल में जनपक्षधर राजनीति और प्रतिरोध के स्वर का मूल्यांकन

विजय कुमार
शोध छात्र, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार
मोबाइल नंबर- 7631605510
ई-मेल- vijayphdjpu@gmail.com

शोध आलेख सारांश-

समकालीन हिन्दी ग़ज़ल प्रेम और सौंदर्य की सीमाओं से बाहर निकलकर सामाजिक, राजनीतिक यथार्थ की सशक्त अभिव्यक्ति बन चुकी है। नवउदारवादी दौर में बढ़ती आर्थिक विषमता, शोषण, बेरोज़गारी और सत्ता की दमनकारी प्रवृत्तियों के विरुद्ध हिन्दी ग़ज़ल ने जनपक्षधर राजनीति का स्वर ग्रहण किया है। इसकी भाषा व्यंजना, प्रतीक, व्यंग्य और जनभाषा के माध्यम से प्रतिरोध को प्रभावी बनाती है। वर्ग-संघर्ष, लोकतंत्र की विफलताएं और सत्ता की संवेदनहीनता इसके प्रमुख विषय हैं। वैचारिक प्रतिबद्धता के बावजूद ग़ज़ल काव्यात्मक सौंदर्य बनाए रखती है। इस प्रकार समकालीन हिन्दी ग़ज़ल जनचेतना और प्रतिरोध की सशक्त सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के रूप में स्थापित होती है।

बीज शब्द- समकालीन, ग़ज़ल, सामाजिक, राजनीतिक, विसंगति, अभिव्यक्ति, सौंदर्य, यर्थार्थ, सत्ता, पूंजी, मार्क्सवाद, बाज़ारवाद, अल्पसंख्यक, वैश्वीकरण, भाषा.

प्रस्तावना-

समकालीन हिन्दी साहित्य में ग़ज़ल ने केवल प्रेम और सौंदर्य की अभिव्यक्ति तक स्वयं को सीमित नहीं रखा, बल्कि सामाजिक-राजनीतिक यथार्थ के तीखे हस्तक्षेप के रूप में अपनी एक अलग पहचान बनाई है। विशेषतः उत्तर-आधुनिक और नवउदारवादी दौर में, जब सत्ता संरचनाएं अधिक जटिल, दमनकारी और पूंजी-केंद्रित हुई हैं, हिन्दी ग़ज़ल ने जनपक्षधर राजनीति की आवाज़ को काव्यात्मक रूप प्रदान किया है। इस संदर्भ में ग़ज़ल की भाषा प्रतिरोध की सशक्त माध्यम बनकर उभरती है। प्रस्तुत आलेख में समकालीन हिन्दी ग़ज़ल में निहित जनपक्षधर राजनीति और प्रतिरोध की भाषा का मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है।

शोध आलेख का विश्लेषण-

जनपक्षधर राजनीति का आशय उस वैचारिक दृष्टि से है जो समाज के श्रमिक, किसान, दलित, स्त्री, अल्पसंख्यक और हाशिए पर स्थित वर्गों के पक्ष में खड़ी होती है। यह राजनीति सत्ता, पूंजी और प्रभुत्व के गठजोड़ का प्रतिरोध करती है तथा वर्ग-संघर्ष, सामाजिक न्याय और लोकतांत्रिक मूल्यों की पक्षधर होती है। समकालीन हिन्दी ग़ज़ल इसी जनपक्षधर चेतना को अपनी विषयवस्तु और संवेदना का आधार बनाती है।

1990 के बाद का भारतीय समाज नवउदारवाद, वैश्वीकरण, निजीकरण और बाज़ारवाद के प्रभाव में तेज़ी से बदला है। इस परिवर्तन ने आर्थिक विषमता, बेरोज़गारी, श्रम शोषण और सांस्कृतिक वर्चस्व को और गहरा किया। ऐसे समय में हिन्दी ग़ज़लकारों ने अपने शेरों के माध्यम से सत्ता की क्रूरता, लोकतंत्र की खोखलेपन और आम आदमी की पीड़ा को स्वर दिया। समकालीन हिन्दी ग़ज़ल महज़ सौंदर्यबोध नहीं, बल्कि समय का राजनीतिक दस्तावेज़ बन जाती है।

समकालीन हिन्दी ग़ज़ल में वर्ग संघर्ष एक केंद्रीय विषय के रूप में उपस्थित है। श्रम और पूंजी के टकराव, अमीर-गरीब की खाई, और व्यवस्था द्वारा श्रमिक वर्ग के शोषण को ग़ज़लकार बार-बार रेखांकित करता है। यह दृष्टि स्पष्ट रूप से मार्क्सवादी चेतना से जुड़ी हुई है, जहां कविता सामाजिक परिवर्तन का औज़ार बनती है।

हिन्दी ग़ज़ल में लोकतंत्र की वास्तविक स्थिति पर गंभीर प्रश्न उठाए गए हैं। चुनाव, संविधान और अधिकारों की बात करने वाली सत्ता जब जनता की आवाज़ को कुचलती है, तब ग़ज़ल प्रतिरोध की भूमिका निभाती है। कई समकालीन ग़ज़लों में पुलिस, प्रशासन, संसद और मीडिया की भूमिका पर भी सवाल उठाए गए हैं, जो जनपक्षधर राजनीति का स्पष्ट संकेत है।

समकालीन हिन्दी ग़ज़ल की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह वैचारिक प्रतिबद्धता के बावजूद काव्यात्मक सौंदर्य से समझौता नहीं करती। प्रतिरोध उसकी भाषा को रूखा नहीं बनाता, बल्कि उसे और धारदार तथा प्रभावी बनाता है। यही कारण है कि समकालीन ग़ज़ल भावुकता और वैचारिकता के बीच संतुलन बनाए रखती है। उदाहरण के लिए कुछ शेर देखिये-

"जब ग़रीबी, भूख, बीमारी सही जाती नहीं

कुछ भी सह लो, धौंस सरकारी सही जाती नहीं"[1]

इस शेर में कवयित्री आम आदमी के जीवन की असहनीय स्थितियों को सामने रखती हैं। ग़रीबी, भूख और बीमारी ऐसी समस्याएँ हैं जिन्हें मनुष्य किसी तरह झेलने की कोशिश करता है, लेकिन जब इन सबके ऊपर सरकारी तंत्र की धौंस, उपेक्षा और दमन जुड़ जाता है, तब स्थिति पूरी तरह असह्य हो जाती है। यहाँ 'धौंस सरकारी' सत्ता की निरंकुशता, संवेदनहीन प्रशासन और जनविरोधी नीतियों का प्रतीक है। शेर स्पष्ट रूप से यह कहता है कि जनता को शारीरिक कष्टों से ज़्यादा मानसिक और सामाजिक पीड़ा सत्ता के दमन से होती है।

"उधर जलसे के भारी शोर में, वो सुन नहीं पाए
कि अबके बारिशों में, मुफ़लिसों के घर बहे कितने"[2]

यह शेर सत्ता और जनता के बीच बढ़ती दूरी को अत्यंत प्रभावी बिंब के माध्यम से व्यक्त करता है। 'जलसे का भारी शोर' सत्ता की राजनीतिक गतिविधियों, भाषणों और आत्मप्रचार का प्रतीक है, जबकि 'बारिशों में मुफ़लिसों के घर बह जाना' आम गरीब जनता की वास्तविक त्रासदी को दर्शाता है। सत्ता अपने शोरगुल और उत्सव में इतनी मग्न है कि उसे यह सुनाई ही नहीं देता कि बारिश जैसी प्राकृतिक आपदा में कितने ग़रीबों के घर उजड़ गए। यह शेर शासन की संवेदनहीनता और जनता के दुखों के प्रति उदासीनता पर तीखा व्यंग्य करता है।

"ग़रीबी, भूख, लाचारी के आंसू
फ़क़त क्या, लंतरानी जानते हैं"[3]

इस शेर में 'लंतरानी' शब्द सत्ता और व्यवस्था से जुड़े उन लोगों की ओर संकेत करता है जो भाषण देने, खोखले आश्वासन देने और औपचारिक बयानबाज़ी तक सीमित रहते हैं। कवयित्री व्यंग्यात्मक प्रश्न करती हैं कि क्या ग़रीबी, भूख और लाचारी से बहने वाले आँसुओं की वास्तविक पीड़ा को केवल वही लोग जानते हैं जो मंचों से लंबी-लंबी बातें करते हैं? दरअसल, यहाँ शेर सत्ता के दिखावटी संवेदनशीलता पर कटाक्ष है और यह स्पष्ट करता है कि वास्तविक पीड़ा का अनुभव केवल भोगने वाला ही जानता है, न कि भाषण देने वाला शासक वर्ग।

इन तीनों शेरों में जनजीवन की पीड़ा, सत्ता की संवेदनहीनता और प्रतिरोध की चेतना सशक्त रूप से अभिव्यक्त हुई है।

शिव ओम अम्बर समकालीन हिन्दी ग़ज़ल में एक बड़ा नाम हैं. इनकी ग़ज़लों के शेर समकालीन हिन्दी ग़ज़ल में सत्ता विरोध, जनपक्षधर चेतना और वैचारिक प्रतिरोध के सशक्त उदाहरण हैं। इनमें राजनीति, कला, प्रेम और लोकतंत्र के आपसी टकराव को तीखे प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है। इनके कुछ शेर और उसकी व्याख्या प्रस्तुत है—

"शाही सूली से कह दो
शायर हूँ सरमद हूँ मैं"[4]

इस शेर में कवि स्वयं को सूफ़ी शहीद सरमद की परंपरा में स्थापित करता है, जिन्हें सत्ता विरोधी सत्यकथन के कारण मृत्युदंड दिया गया था। 'शाही सूली' निरंकुश सत्ता और दमन का प्रतीक है। कवि सत्ता को ललकारते हुए कहता है कि वह एक शायर है सच कहने वाला और सरमद की तरह सत्य के लिए बलिदान को तैयार है। यह शेर कवि की निर्भीकता और प्रतिरोधी चेतना को उद्घाटित करता है।

"सियासत सर्जना है शूलवन की
कला विग्रहवती शुभकामना है"[5]

यह शेर राजनीति और कला के बुनियादी स्वभाव के अंतर को रेखांकित करता है। 'शूलवन' राजनीति की हिंसक, पीड़ादायक और रक्तरंजित प्रकृति का बिंब है, जबकि 'विग्रहवती शुभकामना' कला की सृजनात्मक, मानवीय और कल्याणकारी शक्ति का प्रतीक है। कवि के अनुसार सियासत संघर्ष और विनाश से उपजती है, जबकि कला जीवन, सौंदर्य और मानवता की आकांक्षा से जन्म लेती है।

"सियासत का षड्यंत्र अपनी जगह है
मोहब्बत का ऋक्मंत्र अपनी जगह है"[6]

यहां राजनीति को 'षड्यंत्र' कहा गया है, जो सत्ता-प्राप्ति की चालबाज़ी और कुटिल रणनीतियों की ओर संकेत करता है। इसके बरक्स 'मोहब्बत का ऋक्मंत्र' प्रेम की पवित्र, जीवनदायी और नैतिक शक्ति का प्रतीक है। शेर यह स्पष्ट करता है कि

राजनीति की साज़िशें चाहे जितनी प्रभावशाली हों, प्रेम और मानवीय मूल्यों की ताक़त उनसे अलग और स्वतंत्र अस्तित्व रखती है।

"हैं अपनी जगह क़हक़हे कुर्सियों के
सिसकता प्रजातंत्र अपनी जगह है"[7]

यह शेर लोकतंत्र की त्रासदी पर करारा व्यंग्य है। 'कुर्सियों के क़हक़हे' सत्ता में बैठे लोगों के ऐश, अहंकार और संवेदनहीनता को दर्शाते हैं, जबकि 'सिसकता प्रजातंत्र' आम जनता के अधिकारों के हनन और लोकतांत्रिक मूल्यों के क्षरण का प्रतीक है। सत्ता वर्ग की खुशहाली और जनता की पीड़ा के बीच की गहरी खाई यहाँ उजागर होती है।

"है सियासत तांत्रिकों की साधना
सिद्धि की ख़ातिर इसे शव चाहिये"[8]

इस शेर में राजनीति की तुलना तांत्रिक साधना से की गई है, जिसमें सिद्धि पाने के लिए बलि की आवश्यकता होती है। 'शव' जनता के बलिदान, हिंसा और मृत्यु का प्रतीक है। कवि संकेत करता है कि सत्ता अपनी स्थिरता और सफलता के लिए जन-जीवन को कुर्बानी की तरह इस्तेमाल करती है। यह राजनीति के अमानवीय और हिंसक चरित्र पर तीखा प्रहार है।

"सियासत कोई नादानी नहीं है
तिजारत है ये कुर्बानी नहीं है"[9]

यह शेर राजनीति के नैतिक मुखौटे को पूरी तरह उतार देता है। कवि स्पष्ट करता है कि राजनीति कोई भोली भूल या त्याग की प्रक्रिया नहीं, बल्कि एक सुनियोजित 'तिजारत' अर्थात् लाभ, सत्ता और स्वार्थ का व्यापार है। यहां कुर्बानी जनता देती है, पर लाभ सत्ता और पूंजी को मिलता है। यह शेर समकालीन राजनीति के अवसरवादी और पूंजीवादी चरित्र की तीखी आलोचना करता है।

शिव ओम अम्बर के इन शेरों में राजनीति को दमन, षड्यंत्र, हिंसा और व्यापार के रूप में चित्रित किया गया है, जबकि कविता, कला और प्रेम को मानवीय प्रतिरोध और नैतिक हस्तक्षेप के रूप में स्थापित किया गया है। ये शेर समकालीन हिन्दी ग़ज़ल की जनपक्षधर, मार्क्सवादी और प्रतिरोधी परंपरा को सशक्त बनाते हैं और कवि को सत्ता के विरुद्ध खड़े एक सजग बौद्धिक के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

"सिर्फ़ कहने के लिए, जम्हूरियत है दोस्तों
आज भी इस मुल्क को ज़िल्लेइलाही चाहिए"[10]

यह शेर लोकतंत्र की खोखली संरचना पर तीखा व्यंग्य है। ग़ज़लकार कहता है कि लोकतंत्र केवल नाम का रह गया है, जबकि व्यवहार में आज भी जनता को किसी 'ज़िल्लेइलाही' यानी निरंकुश शासक की आवश्यकता समझी जाती है। यह सत्ता की मानसिकता और जनता की राजनीतिक असहायता दोनों को उजागर करता है।

"रहनी थी जिसको सबके कल्याण ही की चिंता
उसको पड़ी है अपनी दूकान ही की चिंता"[11]

यह शेर राजनीति के बाज़ारीकरण पर सीधा प्रहार है। जिस राजनीति का उद्देश्य जनकल्याण होना चाहिए था, वह अब निजी स्वार्थ और सत्ता-लाभ की 'दूकान' बन चुकी है। नेता जनता की बजाय अपने हितों की चिंता करते हैं।

"आग़ नफ़रत की लगी बुझने न पाए,
इसलिए पेट्रोल डाला जा रहा है।"[12]

यह शेर सांप्रदायिक और वैमनस्यपूर्ण राजनीति की ओर संकेत करता है। सत्ता और राजनीतिक शक्तियाँ नफ़रत की आग को बुझाने के बजाय उसे और भड़काने का काम करती हैं, क्योंकि विभाजन से उन्हें राजनीतिक लाभ मिलता है।

"आग़ सड़कों पर लगी है, फ़र्क़ पड़ता है किसे,
राख होती ज़िंदगी है, फ़र्क़ पड़ता है किसे।"[13]

यह शेर सत्ता की संवेदनहीनता को उजागर करता है। सड़कों पर हिंसा, दंगे और आगज़नी से आम लोगों का जीवन नष्ट हो रहा है, लेकिन सत्ता और व्यवस्था पर इसका कोई असर नहीं पड़ता। यह लोकतंत्र की मानवीय विफलता का चित्र है।

"राजतंत्र अब नहीं तंत्र है लोक का,
फिर भी दास और हैं दासियाँ आज भी।"[14]

यह शेर लोकतंत्र और वास्तविक सामाजिक स्थिति के बीच के विरोधाभास को सामने लाता है। भले ही शासन व्यवस्था लोकतांत्रिक कहलाती हो, लेकिन समाज में शोषण, असमानता और दासता आज भी बनी हुई है।

"हम तो ठहरे 'नोटा' वाले दल दल से दूर,
सबकी अपनी है सरकार, हमारा क्या है?"[15]

यह शेर राजनीतिक विकल्पहीनता और जनता की हताशा को व्यक्त करता है। 'नोटा' उस जनता का प्रतीक है जिसे किसी भी दल पर भरोसा नहीं। सत्ता सबकी है, लेकिन आम आदमी का उसमें कोई स्थान नहीं।

"मेरा ही वोट लेकर बैठा है बन के नेता
उस आदमी की ख़ातिर ऊँची मचान क्यों है?"[16]

यह शेर प्रतिनिधित्व की विडंबना को उजागर करता है। नेता जनता के वोट से सत्ता में आता है, लेकिन सत्ता में पहुँचकर जनता से ऊपर बैठ जाता है। 'ऊँची मचान' सत्ता के अहंकार और दूरी का प्रतीक है।

"जब जिसे चाहो, उसे सत्ता के मद में रौंद दो
क्यों भला होती नहीं है हुक्मरानी की वजह?"[17]

यह शेर सत्ता के दमनकारी चरित्र पर कटाक्ष करता है। सत्ता जब मनमानी करती है, लोगों को रौंदती है, तो भी उसे जवाबदेह नहीं ठहराया जाता। यह लोकतांत्रिक संस्थाओं की कमजोरी को दर्शाता है।

"फिर सियासत हो गई, फिर धर्म मुद्दा हो गया
दाग़ी जो कल तक रहा, वो आज चेहरा हो गया"[18]

यह शेर राजनीति में धर्म के दुरुपयोग और अपराधियों के वैधीकरण पर तीखा प्रहार है। सत्ता के लिए धर्म को मुद्दा बनाया जाता है और कल तक जो अपराधी था, वह आज सम्मानित नेता बन जाता है।

"आज कल जो उड़ रहे हैं रोज़ चार्टर प्लेन से
वे चुनावी रैलियों में फिर दलित हो जाएँगे"[19]

यह शेर राजनीतिक पाखंड को उजागर करता है। सत्ता में रहते हुए ऐशो आराम करने वाले नेता चुनाव के समय स्वयं को गरीब और शोषित दिखाने लगते हैं, ताकि जनता की सहानुभूति बटोरी जा सके।

"खड़े दो-चार लोगों को इकट्ठा देख भी ले तो
बड़ी बेचैन होती है, हुकूमत काँप जाती है"[20]

यह शेर सत्ता के डर और जनशक्ति की ताक़त को दर्शाता है। लोकतंत्र में जनता का संगठित होना सत्ता को असहज कर देता है, क्योंकि उसे अपने गिरते नैतिक आधार का भय सताने लगता है।

इन सभी शेरों में लोकतंत्र की विफलता, सत्ता का दमनकारी चरित्र, राजनीतिक पाखंड, सांप्रदायिकता और जन-उपेक्षा को उजागर किया गया है। ये ग़ज़लें समकालीन हिन्दी ग़ज़ल को केवल काव्य नहीं, बल्कि राजनीतिक प्रतिरोध और जनचेतना का सशक्त माध्यम सिद्ध करती हैं।

निष्कर्ष-

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि समकालीन हिन्दी ग़ज़ल जनपक्षधर राजनीति और प्रतिरोध की भाषा का सशक्त काव्यात्मक माध्यम है। यह ग़ज़ल न केवल समाज की विसंगतियों को उजागर करती है, बल्कि सत्ता केंद्रित राजनीति के विरुद्ध जनता की आवाज़ को भी स्वर देती है। समकालीन हिन्दी ग़ज़ल अपने समय के वर्गीय यथार्थ, शोषण और संघर्ष को अभिव्यक्त करते हुए साहित्य को सामाजिक परिवर्तन की दिशा में सक्रिय बनाती है। इस प्रकार, हिन्दी ग़ज़ल आज केवल एक काव्य-विधा नहीं, बल्कि जनचेतना और प्रतिरोध की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति बन चुकी है।

समकालीन हिन्दी ग़ज़लें केवल भावुक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि राजनीतिक हस्तक्षेप हैं। इनकी भाषा सरल, सहज, व्यंजक और व्यंग्यपूर्ण है, जो जनपक्षधर राजनीति की मूल भावना को प्रभावशाली ढंग से सामने लाती है।

ISSN : 2581-8848

संदर्भ ग्रंथ सूचि-

1. निश्चल, ओम, संपा. हमने फुटपाथ के दलदल से उठाई है ग़ज़ल इंदु श्रीवास्तव की ग़ज़लें. सर्वभाषा प्रकाशन, 2023, पृष्ठ- 48
2. वही- 56
3. वही- 50
4. निश्चल, ओम, संपा. कवि ख़ुशबू के ख़त होते हैं शिव ओम अम्बर की ग़ज़लें. सर्वभाषा प्रकाशन, 2024, पृष्ठ- 33
5. वही- 34
6. वही- 53
7. वही- 53
8. वही- 66
9. वही- 96
10. समीप, हरेराम. हरेराम समीप चयनित ग़ज़लें. प्रथम संस्करण, दिल्ली, न्यू वर्ल्ड प्रकाशन, 2023, पृष्ठ- 16
11. वही- 53
12. प्रभाकर, संजीव. ये और बात है. प्रथम संस्करण, नई दिल्ली, श्वेतवर्णा प्रकाशन, 2023, पृष्ठ- 89
13. वही- 101
14. भारती, डॉ. अविनाश. आईने से पूछो. प्रथम संस्करण, नई दिल्ली, श्वेतवर्णा प्रकाशन, 2025, पृष्ठ- 31
15. वही- 35
16. कुमार, विजय. संपा. डॉ. भावना के चुनिंदा अशआर, श्वेतवर्णा प्रकाशन, 2024, पृष्ठ- 50
17. वही- 50
18. शिवाय, राहुल. रास्ता बनकर रहा. प्रथम संस्करण, नई दिल्ली, श्वेतवर्णा प्रकाशन, 2024, पृष्ठ- 47
19. वही- 106
20. वही-107

*****

ग़ज़ल में सामाजिक परिदृश्य

डॉ.दादासाहेब सुखदेव खांडेकर
सहयोगी प्राध्यापक
संगमेश्वर कॉलेज, सोलापुर
ई-मेल:dsksolapur11@gmail.com

सारांश:
ग़ज़ल मूलतः 'हुस्न और इश्क़' (प्रेम और सौंदर्य) की विधा मानी जाती थी, लेकिन समय के साथ इसमें सामाजिकता का समावेश हुआ और यह समाज का आईना बन गई। आज की ग़ज़ल केवल महबूब की ज़ुल्फ़ों में उलझी हुई नहीं है, बल्कि वह आम आदमी की भूख, भ्रष्टाचार, राजनीति और सामाजिक विसंगतियों पर भी बात करती है। आज की ग़ज़ल समाज को जगाने, सवाल पूछने और बदलाव लाने का एक सशक्त माध्यम है।
बीज-शब्द: ग़ज़ल, सामाजिकता, संघर्ष, पीड़ा, मानवता, आम आदमी, व्यवस्था

प्रस्तावना

'ग़ज़ल' शब्द का शाब्दिक अर्थ है 'स्त्रियों से बातें करना' या 'प्रेम की अभिव्यक्ति'। अपने उद्भव काल में ग़ज़ल का मुख्य सरोकार सौंदर्य और प्रेम, महबूब की ज़ुल्फ़ें और शराब-ओ-शबाब तक सीमित था। इसे दरबारी संस्कृति का हिस्सा माना जाता था, जहाँ शायर कल्पना की दुनिया में खोया रहता था। किंतु, साहित्य कभी भी अपने समय के समाज से कटकर जीवित नहीं रह सकता। जैसे-जैसे समाज बदला, ग़ज़ल का मिजाज भी बदलने लगा। ग़ज़ल महलों और मुशायरों की महफ़िलों से निकलकर आम आदमी की झोपड़ियों, खेतों और कारखानों तक पहुँच गई। अब ग़ज़ल केवल 'इश्क़-ए-मिजाज़ी' (लौकिक प्रेम) की अभिव्यक्ति नहीं रही, बल्कि वह 'इश्क़-ए-हकीकी' और सामाजिक सरोकारों का सशक्त माध्यम बन गई है। ग़ज़ल में सामाजिकता का अर्थ है—समसामयिक समस्याओं, राजनैतिक विसंगतियों, आर्थिक असमानता और आम आदमी के संघर्ष को शायरी के माध्यम से स्वर देना। जब ग़ज़लकार अपने व्यक्तिगत दर्द को समाज के सामूहिक दर्द से जोड़ देता है, तो वह ग़ज़ल सामाजिक चेतना का औजार बन जाती है। आज की ग़ज़ल समाज की विद्रूपताओं पर प्रहार करती है, दबे-कुचले लोगों की आवाज़ बनती है और सोए हुए समाज को जगाने का काम करती है। ग़ालिब से लेकर दुष्यंत कुमार और अदम गोंडवी तक का सफर इस बात का गवाह है कि ग़ज़ल ने अपनी कोमलता को बरकरार रखते हुए भी अन्याय के खिलाफ एक 'हथियार' की तरह अपनी पहचान बनाई है।

शोध विस्तार

ग़ज़ल का स्वरूप

भारतीय काव्य जगत एवं संगीत जगत को सबसे अधिक प्रभावित करने वाली रचना ग़ज़ल है। भारतीय संस्कृति देशी तथा विदेशी ताने-बाने से निर्मित बहुरंगी वस्त्र है। ग़ज़ल का अर्थ 'कातने-बुनने' से भी लिया गया है। कहा जाता है कि ग़ज़ल शब्द की उत्पत्ति गजाल शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है हरिण। "ग़ज़ल मूलतः एक आत्मनिष्ठ या व्यक्तिपरक काव्य विधा है।" [1] ग़ज़ल के संबंध में एक अन्य स्थान पर यह कहा जाता है कि "ग़ज़ल एक फारसी भाषा की काव्यगत शैली है जिसका प्रयोग लौकिक व पारलौकिक दोनों ही प्रेम को दर्शाने के लिए किया गया है।" [2]

अलग-अलग विद्वानों ने ग़ज़ल की परिभाषा निम्न प्रकार से दी है:- मशहूर शायर फिराक गोरखपुरी जी लिखते है- "ग़ज़ल महबूब से बातचीत करने को कहते है।"[3] बेहद ही सुंदर अंदाज में बशीर बद्र ने ग़ज़ल को परिभाषित किया है। "ये शबनमी लहजा है आहिस्ता ग़ज़ल पढ़ना तितली की कहानी है फूलों की जुबानी है।" [4]

निःसंदेह ग़ज़ल एक आयतित विधा है। किन्तु भारत में ग़ज़ल की बढ़ती लोकप्रियता इस बात का प्रमाण है कि साहित्य की कोई सरहद नहीं होती चाहे वे किसी भी देश, काल, परिस्थिति में जन्मा हो वह सभी प्रकार के बंधन से मुक्त होकर स्वछंद विचरण कर सकता है। जिस प्रकार यह फारस से यात्रा करते हुए भारत पहुँची यहाँ की एक लोकप्रिय शैली बन गयी।

साहित्य में सामाजिकता

साहित्य में 'सामाजिकता' का अर्थ है-साहित्य का समाज के साथ गहरा संबंध। साहित्य और समाज एक-दूसरे के पूरक हैं। इसीलिए कहा गया है कि 'साहित्य समाज का दर्पण है।' समाज में जो कुछ भी घटित होता है, लेखक उसे अपनी संवेदना और शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्ति देता है। साहित्य अपने समय के समाज की परंपराओं, मान्यताओं, रहन-सहन और राजनीतिक स्थिति को दर्शाता है। "साहित्य का उद्देश्य ही समाज का कल्याण होना चाहिए। अर्थात साहित्य में समाज का मंगलभाव और

समाज को परिवर्तित करने की क्षमता चाहिए। वह समाज की भावनाओं के साथ चलता है। साहित्य समाज में घटित विकृत व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाने का काम करता है और समाज के हर पहलू को प्रभावित करता है। इसलिए साहित्यकार अपने साहित्य के माध्यम से समाज का चित्रण करता है।"[5]

साहित्य केवल समाज को दिखाता ही नहीं, बल्कि उसे बदलने की शक्ति भी रखता है। साहित्यकारों ने अपनी लेखनी से कुरीतियों (जैसे सती प्रथा, बाल विवाह, छुआछूत) के विरुद्ध आवाज़ उठाकर समाज को नई दिशा दी है। साहित्य में सामाजिकता का अर्थ 'युग-बोध' भी है। "इस सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक साहित्यकार परिचयता समाज में रहकर जो अनुभव लेता है,उसी को शब्दबद्ध करके वह समाज के सम्मुख रखते हैं।"[6]

एक लेखक जिस कालखंड में जीता है, वह उस काल की समस्याओं को अनदेखा नहीं कर सकता। आधुनिक साहित्य में बेरोज़गारी, नारी विमर्श, दलित विमर्श और सांप्रदायिकता जैसे विषय सामाजिकता के ही अंग हैं। तुलसीदास ने कहा था-

"कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई।।" [7]

अर्थात वही कीर्ति, कविता और संपत्ति उत्तम है जो गंगा की तरह सबका हित करने वाली हो। साहित्य का अंतिम लक्ष्य 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' होता है। साहित्य में सामाजिकता का होना अनिवार्य है, क्योंकि समाज विहीन साहित्य 'शून्य' के समान है। लेखक समाज की इकाई है, इसलिए उसकी अनुभूतियाँ सामाजिक परिवेश से ही उपजी होती हैं। साहित्य जब समाज के दुख-दर्द को अपना बना लेता है, तभी वह कालजयी (Timeless) बनता है।

ग़ज़ल में सामाजिक परिदृश्य

ग़ज़ल साहित्य सदियों से भावनाओं की अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम रहा है। हालाँकि शुरुआत में इसे केवल 'हुस्न और इश्क' (प्रेम और सौंदर्य) तक सीमित माना जाता था, लेकिन समय के साथ ग़ज़ल ने अपनी परिधि का विस्तार किया और सामाजिक चेतना का एक प्रमुख स्वर बनी। ग़ज़ल में सामाजिकता के प्रमुख मुद्दे निम्नलिखित हैं:

1. आम आदमी का संघर्ष और पीड़ा

आधुनिक ग़ज़लकारोंने ग़ज़ल को महलों से निकालकर झोपड़ियों तक पहुँचाया। इसमें आम इंसान की रोज़मर्रा की ज़रूरतें, गरीबी, भूख और बेरोजगारी को प्रमुखता से उकेरा गया है। कवि सामान्य जन के दुख को देखकर दुखी होता है। कवि कामना करता है कि-

"हो गई है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिए,
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए।" [8]

2. राजनीतिक भ्रष्टाचार और व्यवस्था पर प्रहार

ग़ज़ल ने सत्ता के अहंकार और राजनीति के गिरते स्तर पर तीखे कटाक्ष किए हैं। नेताओं के झूठे वादों और लोकतांत्रिक संस्थाओं की विफलता को ग़ज़लकारों ने अपनी आवाज़ दी है। नेता आम जनता के अधिकारों का हनन करता हैं। चुनाव में प्यार जताता हैं चुनकर आने के बाद उनकी योजनाओं के पैसे खाता है।

"तुम्हीं से प्यार जताएँ तुम्हीं को खा जाएँ,
अदीब यों तो सियासी हैं कमीन नहीं।" [9]

कवि भ्रष्ट तंत्र के खिलाफ विद्रोह करता है। कवि व्यवस्था बदलने के लिए प्रयासरत है।

"सिर्फ़ हंगामा खड़ा करना मेरा मक़सद नहीं,
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए।" [10]

कवि कहता है कि व्यवस्था, सिस्टम या सत्ता में थोड़े बदलाव (फेर-बदल) से ही पूरी तस्वीर बदल सकती है; अगर आपका नियंत्रण (कॉलर) मज़बूत है तो बाहरी दिखावा (आस्तीन) मायने नहीं रखता, यानी ऊपरी बदलाव से ज़्यादा ज़रूरी है कि असली शक्ति और नियंत्रण आपके हाथ में हो और आप खुद को मज़बूत करें, ताकि आप सिर्फ दिखावा न करें बल्कि असली बदलाव ला सकें, सत्ता के पुर्ज़े न बनें बल्कि खुद मालिक बनें।

"ज़रा-सा तौर-तरीक़ों में हेर-फेर करो,
तुम्हारे हाथ में कॉलर हो, आस्तीन नहीं।" [11]

ISSN : 2581-8848

3. सांप्रदायिक सौहार्द और मानवीय मूल्य

ग़ज़ल ने हमेशा समाज को जोड़ने का काम किया है। इसमें नफरत के खिलाफ प्रेम और धार्मिक कट्टरता के खिलाफ मानवतावाद का संदेश मिलता है। ग़ज़लकार समाज में फैल रहे भेदभाव और वैमनस्य को दूर करने की अपील करते हैं।

"ज़िंदगानी का कोई मक़सद नहीं है,
एक भी क़द आज आदमक़द नहीं है।"[12]

इन पंक्तियों के माध्यम से कवि कहना चाहता है कि आज की दुनिया में लोग बिना किसी ऊँचे आदर्श के जी रहे हैं। मानवता और ऊँचे चरित्र वाले लोगों का अकाल पड़ गया है। हर तरफ भीड़ तो है, पर उस भीड़ में महानता और सार्थकता की कमी है।

4. बाजारीकरण और बदलती जीवनशैली

आज की ग़ज़लें आधुनिकता की दौड़ में खोते जा रहे मानवीय रिश्तों और बाजारीकरण के दौर में मनुष्य के वस्तु बनने की त्रासदी को भी रेखांकित करती हैं। गाँव का पलायन और शहरों की अजनबियत भी इसके महत्वपूर्ण विषय हैं।

"पेड़-पौधे हैं बहुत बौने तुम्हारे,
रास्तों में एक भी बरगद नहीं है।"[13]

इन पंक्तियों के माध्यम से कवि कहना चाहता है कि आज की दुनिया में लोग बिना किसी ऊँचे आदर्श के जी रहे हैं। मानवता और ऊँचे चरित्र वाले लोगों का अकाल पड़ गया है। हर तरफ भीड़ तो है, पर उस भीड़ में महानता और सार्थकता की कमी है।

सन्दर्भ

1. डॉ. प्रेम भण्डारी, हिन्दुस्तानी संगीत में ग़ज़ल गायकी, पृष्ठ- 1
2. रुद्र कशिकेश, गजलिका, पृष्ठ-3
3. फिराक गोरखपूरी, कामरूप, पृष्ठ-1
4. उमेश जोशी, उदल, भारतीय संगीत का इतिहास, पृष्ठ-269
5. साहित्य और समाज, विजयदान देथा राजस्थान शोध संस्थान चोपासनी जोधपुर १९६०, पृष्ठ-05
6. साहित्य का समाजशास्त्र, डॉo नगेन्द्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1980 पृष्ठ-12
7. रामचारितमानस, तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर पृष्ठ-34
8. साये में धूप, दुष्यंत कुमार, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृष्ठ-30
9. साये में धूप, दुष्यंत कुमार, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019 पृष्ठ-64
10. साये में धूप, दुष्यंत कुमार, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृष्ठ-30
11. साये में धूप, दुष्यंत कुमार, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019 पृष्ठ-64
12. साये में धूप, दुष्यंत कुमार, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019 पृष्ठ-41
13. साये में धूप: दुष्यंत कुमार, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019 पृष्ठ 41

*****

'ज़हीर कुरैशी की ग़ज़लों में सामाजिक, राजनीतिक विषमता'

प्रा.हिरामण देवराम टोंगारे
हिंदी विभागाध्यक्ष
डॉ.पतंगराव कदम आर्टस आणि कॉमर्स कॉलेज,
पेण, जि-रायगड, महाराष्ट्र -402107
ई. मेल hirunsk@gmail.com

सारांश

जहीर कुरैशी समकालीन उर्दू ग़ज़ल के ऐसे संवेदनशील शायर हैं जिनकी काव्यदृष्टि समाज और राजनीति की जटिलताओं से गहराई से जुड़ी हुई है। उनकी ग़ज़लों में सामाजिक अन्याय, वर्गीय असमानता, सत्ता का दमन, लोकतांत्रिक मूल्यों का ह्रास और आम आदमी की पीड़ा सशक्त रूप में अभिव्यक्त होती है। प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य जहीर कुरैशी की ग़ज़लों में निहित सामाजिक और राजनीतिक विषमता का पाठ-आधारित एवं आलोचनात्मक अध्ययन करना है तथा यह प्रतिपादित करना है कि उनकी शायरी समकालीन यथार्थ की सशक्त प्रतिध्वनि है। की शायरी मानव-केंद्रित दृष्टि से उद्भूत एक सशक्त, जागरूक और संवेदनशील सामाजिक,राजनीतिक चेतना की प्रभावी संवाहक है।

बीज शब्द – ग़ज़ल, मानवतावाद, मानवीय पीड़ा, सामाजिक यथार्थ, प्रगतिशील चेतना, युग-बोध, लोकतंत्र, वर्गीय असमानता, धार्मिक राजनीति, मानवीय मूल्य, नैतिक पतन, प्रतिरोध की चेतना, आधुनिकता,

प्रस्तावना

ग़ज़ल उर्दू साहित्य की एक अत्यंत लोकप्रिय और कलात्मक विधा है, जिसकी जड़ें अरबी,फ़ारसी काव्य-परंपरा में मिलती हैं। भारतीय उपमहाद्वीप की सामाजिक,राजनीतिक परिस्थितियों से साक्षात्कार करते हुए इसने एक विशिष्ट और जीवंत स्वरूप ग्रहण किया। प्रारंभ में ग़ज़ल का केंद्र प्रेम और व्यक्तिगत अनुभूति रहा, किंतु समय के साथ यह सामाजिक अन्याय, मानवीय असमानता, सत्तासंरचनाओं की विषमता और राजनीतिक दमन की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बन गई। ग़ज़ल ने रूपकात्मक और प्रतीकात्मक भाषा के माध्यम से समाज में व्याप्त वर्गीय भेद, शोषण और नैतिक संकट को स्वर दिया।

भारतीय काव्य-परंपरा में ग़ज़ल का विकास केवल भाषिक या शिल्पगत परिवर्तन नहीं, बल्कि सामाजिक, राजनीतिक दबावों और सांस्कृतिक अंतःक्रिया का परिणाम है। मीर और ग़ालिब जैसे शायरों ने ग़ज़ल को प्रेम-विरह की सीमाओं से निकालकर मानवीय पीड़ा और सामाजिक विसंगतियों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में औपनिवेशिक शासन, सामाजिक दमन, वर्गीय असमानता और राष्ट्रीय चेतना के उभार ने ग़ज़ल को नई वैचारिक दिशा दी।

आधुनिक और उत्तर-आधुनिक काल में फ़िराक़ गोरखपुरी, फ़ैज़ अहमद फ़ैज़, जोश मलीहाबादी और साहिर लुधियानवी जैसे शायरों ने ग़ज़ल को मनुष्य-केंद्रित सामाजिक चेतना से जोड़ा और उसे राजनीतिक असमानता तथा नैतिक पतन के विरुद्ध एक प्रभावशाली सांस्कृतिक दस्तावेज़ के रूप में प्रतिष्ठित किया।

ज़हीर कुरैशी समकालीन उर्दू ग़ज़ल के ऐसे शायर हैं, जिनकी रचनात्मक चेतना सामाजिक यथार्थ से गहराई से जुड़ी है। उनकी शायरी में व्यक्तिगत अनुभव, सामूहिक पीड़ा और सामाजिक जागरूकता का संतुलित समन्वय मिलता है। वे समाज को एक संवेदनशील नागरिक की दृष्टि से देखते हैं। उनकी काव्यदृष्टि में मानवीय करुणा, न्यायबोध और नैतिक विवेक की स्पष्ट प्रधानता है। ज़हीर कुरैशी सत्ता और समाज के संबंधों का आलोचनात्मक विश्लेषण करते हुए उन संरचनाओं पर प्रश्न उठाते हैं, जो असमानता, अन्याय और शोषण को जन्म देती हैं। इसी कारण उनकी ग़ज़लें अपने समय की सामाजिक और राजनीतिक जटिलताओं से सीधा संवाद करती हैं। सामाजिक और राजनीतिक विषमता को व्यक्त करते हुए वे कहते हैं-

"कई मुखौटों में मिलते हैं उनके शुभचिंतक,
तुम्हारे दोस्त उन्हें सावधान कर देंगे।"[1]

प्रस्तुत शेर में कवि समाज और राजनीति में व्याप्त छल, पाखंड तथा स्वार्थपरक संबंधों की तीखी आलोचना करता है। यह पंक्ति उन लोगों की ओर संकेत करती है जो मित्रता और शुभचिंतन का दिखावा करते हैं, किंतु भीतर से स्वार्थी और अवसरवादी होते हैं। वे अपने वास्तविक इरादों को छिपाने के लिए भिन्न रूप धारण करते हैं। दूसरी पंक्तिमें गहरी विडंबना व्यक्त करती है, जहाँ 'दोस्त' शब्द व्यंग्यात्मक है। यह दर्शाता है कि तथाकथित मित्र ही विश्वासघात कर व्यक्ति के विरुद्ध परिस्थितियाँ निर्मित करते हैं। यह शेर मानवीय संबंधों की निष्ठाहीनता और सामाजिक असंवेदनशीलता को उजागर करता है।

राजनीती किस प्रकार से लोगों में खौफ पैदा करती हैं और उसका असर समाज के हर तबके में दिखाई देता हैं। उसके कारण कवि, लेखक, शायर आदि सभी पर उसका असर पड़ा हैं। यह संकेत देता है कि सत्ता केवल असहमति को रोकती नहीं, उसे कुचलती है। यह व्यक्त करते हुएं ज़हीर कुरैशी कहतें हैं -

"वे शायरों की कलम बेज़ुबान कर देंगे,
जो मुँह से बोलेगा उसका 'निदान' कर देंगे।"[2]

प्रस्तुत शेर में कवि ने दमनकारी सत्ता और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर हो रहे प्रहार को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किया है। वे उस व्यवस्था की ओर संकेत करती है जो सत्य, विरोध और जनपक्षधर विचारों को दबाने के लिए रचनात्मक अभिव्यक्ति को मौन कर देना चाहती है। यहाँ 'कलम' विचार, सच और प्रतिरोध का प्रतीक है। दूसरी पंक्ति खुले दमन और भय की राजनीति को उजागर करती है, जहाँ सच बोलने वाले को दंडित, समाप्त या चुप करा दिया जाता है। यह शेर सत्ता की असहिष्णुता, बौद्धिक दमन और लोकतांत्रिक मूल्यों के क्षरण की तीखी आलोचना करता है। राजनीति अपनी स्वार्थी भावना के चलते हुएं लोगों में धार्मिक भावनाओं को हथियार बनाकर निजी जीवन में हस्तक्षेप करते हुएं लोगों को हमेशा धर्म, आस्था में उलझाकर रखने में मशगुल होती है। यह बताते हुए कुरैशी कहते हैं कि -

"वे आस्था के सवालों को यूँ उठाएँगे,
खुदा के नाम तुम्हारा मकान कर देंगे।"[3]

प्रस्तुत शेर में कवि ने धर्म, आस्था और सत्ता की मिलीभगत पर तीखा प्रहार किया है। यह पंक्ति इस ओर संकेत करती है कि किस प्रकार धार्मिक भावनाओं और विश्वासों को जानबूझकर उकसाया या तोडा, मरोड़ा जाता हैं ताकि लोगों को भ्रमित और विभाजित किया जा सके। तो दूसरी पंक्ति गंभीर विडंबना को उजागर करती है, जहाँ ईश्वर या धर्म के नाम पर व्यक्ति की संपत्ति, अधिकार और अस्तित्व तक को छीन लिया जाता है। यहाँ 'मकान' व्यक्ति की सुरक्षा, पहचान और जीवनाधार का प्रतीक है। यह शेर धर्म के राजनीतिक उपयोग, साम्प्रदायिक शोषण और आस्था की आड़ में होने वाले अन्याय की सशक्त आलोचना प्रस्तुत करता है।

राजनीति अक्सर शक्ति और स्वार्थ के बल पर आम आदमी की वास्तविक आवाज़ को दबा देती है। डर, दबाव और भ्रम फैलाकर लोगों की चुप्पी को सहमति बताया जाता है। स्वतंत्र विचार और अभिव्यक्ति सीमित कर दी जाती है, जिससे जनता की भागीदारी घटती है और लोकतंत्र कमजोर हो जाता हैं l इस संदर्भ में ज़हीर कुरैशी कहते हैं -

"तुम्हारी 'चुप' को समर्थन का नाम दे देंगे,
बयान अपना, तुम्हारा बयान कर देंगे।"[4]

इस शेर में कवि ने यह दिखाया है कि सत्ता और ताक़तवर लोग भाषा और विचारों के साथ कैसे चालाकी करते हैं। किसी व्यक्ति की मजबूरी या डर के कारण बनी चुप्पी को जानबूझकर उसकी सहमति बताकर पेश किया जाता है, जबकि वह वास्तव में दबाव का परिणाम होती है। सत्ता अपने फैसलों और विचारों को जनता की राय बताकर प्रचार करती है। इस तरह आम आदमी की असली आवाज़ दबा दी जाती है। यह शेर बताता है कि कैसे लोगों की सोच और बोलने की आज़ादी छीनी जाती है और लोकतंत्र कमजोर किया जाता है।

सत्ता अपने प्रभुत्व की रक्षा के लिए निर्दोषों की बलि देने से भी नहीं हिचकती। राजनीतिक स्वार्थ मानवता पर हावी हो जाते हैं, जिससे करुणा और नैतिक मूल्य नष्ट होते हैं। परिणामस्वरूप समाज भय, अन्याय और असंवेदनशीलता में डूब जाता है। इस संदर्भ में ज़हीर कुरैशी कहते हैं -

"तुम उन पे रोक लगाओगे किस तरीके से,
वे अपने 'बाज़' की 'बुलबुल' में जान कर देंगे।"[5]

प्रस्तुत शेर में कवि सत्ता की हिंसक और दमनकारी प्रवृत्ति की तीखी आलोचना करता है। जब सत्ता स्वयं आक्रामक हो जाती है, तब उसे नियंत्रित करना अत्यंत कठिन हो जाता है। शेर की दूसरी पंक्ति में गहरी प्रतीकात्मकता निहित है, जहाँ 'बाज़' शक्ति और सत्ता का प्रतीक है, जबकि 'बुलबुल' मासूम, निर्दोष जनता का संकेत देती है। कवि यह स्पष्ट करता है कि सत्ता अपने स्वार्थ और प्रभुत्व को बनाए रखने के लिए निर्दोषों की बलि देने से भी पीछे नहीं हटती। इस प्रकार यह शेर राजनीतिक क्रूरता, हिंसा और मानवीय मूल्यों के क्षरण को उजागर करता है तथा पाठक को सत्ता की अमानवीय संरचना पर गंभीरता से विचार करने के

 ISSN : 2581-8848

लिए प्रेरित करता है। इस संदर्भ में शायर यह भी इंगित करता है कि किस प्रकार धर्म का दुरुपयोग कर जनता को भ्रमित करके वास्तविक मुद्दों से भटकाया जाता है -

"तुम्हें पिलाएँगे कुछ इस तरह धरम-घुट्टी,
वे चार दिन में तुम्हें 'बुद्धिमान' कर देंगे।"[6]

प्रस्तुत शेर में कवि धर्म के नाम पर फैलाए जाने वाले वैचारिक भ्रम और मानसिक दासता पर तीखा व्यंग्य करता है। 'धरम की घुट्टी' उस सोच का प्रतीक है जिसे बचपन से या दबाव के माध्यम से लोगों को स्वीकार करने के लिए मजबूर किया जाता है, ताकि वे बिना प्रश्न किए उसे सत्य मान लें। कवि संकेत देता है कि सत्ता और प्रभुत्वशाली वर्ग धर्म का उपयोग इस प्रकार करते हैं कि व्यक्ति शीघ्र ही स्वयं को 'बुद्धिमान' समझने लगता है, जबकि उसकी स्वतंत्र और आलोचनात्मक सोच समाप्त हो जाती है। इस प्रकार धर्म का दुरुपयोग कर जनता को भ्रमित और विवेकहीन बनाया जाता है। समाज में नैतिक और वैचारिक जागरूकता के संदर्भ में ज़हीर कुरैशी कहते हैं की-

"बहुत कम लोग कर पाते हैं ये साहस,
चतुर चेहरों को आईना दिखाते हैं।"[7]

इस शेर में कवि ने साहस और सच्चाई के विरुद्ध सामाजिक चालाकी और पाखंड की स्थिति को रेखांकित किया है। केवल कुछ ही लोग अपने डर और दबाव के बावजूद सत्य और न्याय का सामना करने का साहस दिखा पाते हैं। ये साहसी लोग उन लोगों के असली चेहरे सामने लाते हैं जो चालाकी, छल और दिखावे के मास्क पहनकर दूसरों को भ्रमित करते हैं। शेर यह स्पष्ट करता है कि सच्चाई का सामना करना कठिन है, लेकिन वही समाज में नैतिक और वैचारिक जागरूकता पैदा करता है। जीवन में लगातार आने वाली चुनौतियों के संदर्भ में वे कहते हैं कि-

"नहीं माना निकष हमने उन्हें अब तक,
मगर वो रोज़ हमको आजमाते हैं।"[8]

कवि कहता है कि हमने अभी तक उन्हें पूरी तरह स्वीकार या मान्यता नहीं दी है, फिर भी वे हमें हमेशा अजमाते रहते हैं हमारी सहनशीलता और सामर्थ्य की परीक्षा लेते रहते हैं। इसमें जीवन की कठिन परिस्थितियों, लोगों के व्यवहार या समाज की चुनौतियों की ओर संकेत है, जहाँ व्यक्ति को बिना स्वीकार किए गए भी निरंतर आजमाया जाता है। सामाजिक असमानता और सत्ता के शोषण को लेकर कवि यह कहना चाहता है कि-

"उपयोग के लिए उन्हें झुग्गी भी चाहिए,
झुग्गी के आस-पास ही उनका महल मिला।"[9]

इस शेर में कवि समाज में फैली असमानता और शोषण को साफ़ शब्दों में दिखाता है। गरीब लोगों को सत्ता और अमीर वर्ग अपने फायदे के लिए सिर्फ़ साधन की तरह इस्तेमाल करता है। जिन पर काम और मेहनत का बोझ होता है, उनके जीवन की कोई खास कीमत नहीं समझी जाती। अमीर लोग गरीबों की मेहनत से ऐश करते हैं और उनके पास रहते हुए भी उनसे दूर रहते हैं। यह शेर समाज में मौजूद आर्थिक फर्क, अन्याय और ताक़त के गलत इस्तेमाल की आलोचना करता है। आज के दौर में समाज और राजनीति में नैतिक और वैचारिक विडंबना कैसे की जाती है उस संदर्भ में कवि कहते हैं-

"इक्कीसवीं सदी में ये लगता नहीं अजीब,
नायक की भूमिका में लगातार खल मिला।"[10]

इस शेर के माध्यम से कवि आधुनिक समाज और राजनीति में फैली नैतिक तथा वैचारिक विडंबना को सामने लाता है। आज के समय में अनैतिक और असामान्य घटनाएँ इतनी आम हो गई हैं कि वे चौंकाती नहीं हैं। राजनीति और समाज में कई बार ऐसे लोग नायक या नेता बना दिए जाते हैं, जिनमें सच्चे नैतिक मूल्य नहीं होते, बल्कि स्वार्थ, छल और भ्रष्ट आचरण प्रधान होता है। यह शेर समकालीन समाज की असंवेदनशीलता और सत्ता की संरचना में आए नैतिक पतन की तीखी आलोचना करता है तथा पाठक को आत्ममंथन और मूल्यों पर पुनर्विचार के लिए प्रेरित करता है।

निष्कर्ष :

ज़हीर कुरैशी की ग़ज़लें समकालीन समाज और राजनीति की निर्भीक, तीखी तथा विवेकपूर्ण आलोचना प्रस्तुत करती हैं। उनकी काव्यदृष्टि भावनात्मक अभिव्यक्ति से आगे बढ़कर सामाजिक यथार्थ, सत्तासंरचनाओं और मानवीय संबंधों की

जटिलताओं को उजागर करती है। सत्ता का दमन, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अंकुश, धर्म का राजनीतिक दुरुपयोग, लोकतांत्रिक मूल्यों का क्षरण, सामाजिक असमानता और नैतिक पतन जैसे प्रश्न सशक्त प्रतीकों और व्यंग्यात्मक भाषा में उभरते हैं। 'कलम', 'संविधान', 'चुप्पी', 'मकान' तथा 'बाज' और 'बुलबुल' जैसे प्रतीक सत्ता और जनता के असंतुलित संबंधो को स्पष्ट करते हैं। भय और भ्रम से थोपी गई चुप्पी के विरुद्ध उनकी शायरी साहस और प्रतिरोध का स्वर रचती है, जो सामाजिक परिवर्तन की आशा को जीवित रखती हैं।

संदर्भ :

1. प्रतिनिधि हिंदी ग़ज़ल, संपादक. प्रो. दत्तात्रय मुरुमकर, परिदृश्य प्रकाशन, मुंबई संस्करण 2023 पृ.54
2. वहीं पृ. 54
3. वहीं पृ. 54
4. वहीं पृ. 54
5. वहीं पृ. 54
6. वहीं पृ. 54
7. वहीं पृ. 55
8. वहीं पृ. 55
9. वहीं पृ. 56
10. वहीं पृ. 56

*****

 ISSN : 2581-8848

दुष्यन्त कुमार की ग़ज़ल: प्रगतिशील चेतना

प्रा.डॉ.हनुमंत दत्तु शेवाळे
हिंदी विभाग, शारदा महाविद्यालय,
परभणी

शोध सार:

दुष्यन्त कुमार का साहित्य आम आदमी की छटपटाहट, संघर्षों का साहित्य है। दुष्यन्त कुमार की गजल में तत्कालीन समाज का वास्तविक चित्रण दृष्टिगोचर होता है। हमारा देश कई साल पारतंत्र में रहा और काफी संघर्ष के बाद स्वतंत्र हुआ। स्वतंत्रता के बाद लोगों को लगा था की अब तो जीवन सुकर हो जायेगा। नेताओं ने लोगों को विकास के सपने दिखाये, उन्हें भी आशा थी लेकिन वास्तव में कुछ भी नहीं हुआ। नेताओं ने किये वादें से जनता निराश हो गयी। विकास के नाम पर शुरू हुई योजनाएँ कहाँ तक सफल हुई। मोहभंग, निराशा से संवेदनशील ग़ज़लकार कहते हैं कि चले यहाँ से कहीं दूर, भले न हो तन ढकने के लिए कमीज तो अपने पावों से उसे ढक लेगें। आम आदमी गरीब, शोषित जीवन जीने के लिए मजबूर है, उनकी यही जिंदगी शासन के लिए उपयोगी है। जनता ईश्वर के सहारे सपने देखती है। उन्हें आशा है आज नहीं तो कल उनके दिन बदल जायेंगे। शोषक कठोर है, लेकिन शोषित जाग्रत होकर क्रांति करेगा ऐसा लेखक को विश्वास है। दुष्यन्त कुमार ग़ज़ल में समाज परिवर्तन की आशा और विश्वास व्यक्त करते है। आम आदमी की वेदना का समाधान आज नहीं तो कल मिलेंगा। अन्यायी की जड़े जानना जरूरी है और सही दिशा में क्रांति की आवश्यकता होती है। सालों-साल से पीडित जनता को आवाज उठानी चाहिए। सिर्फ हंगामा खड़ा करना मकसद न होकर सत्य के लिए जाग्रति यह नेक भावना चाहिए।

बीज शब्द: साहित्य, ग़ज़ल, प्रगतिशील, चेतना, समाज

हिंदी साहित्य में उपन्यास, कहानी, नाटक, कविता आदि विधाओं की तरह ग़ज़ल विधा का स्थान भी महत्त्वपूर्ण है। ग़ज़ल उर्दू की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है। उर्दू को यह लोकप्रिय विधा फारसी से मिली। उर्दू कवियों ने अपनी ग़ज़लों में शमा, परवाना, प्रेमिका के नख-शिख सौंदर्य की वर्णन पद्धति आदि बातें फारसी से ही ग्रहण की गई। दिर्घ काल तक ग़ज़ल में इश्क और हुस्न को ही विभिन्न रूपों में चित्रित किया गया। उर्दू ग़ज़ल हिंदुस्तान में लोकप्रिय रहने के कई कारण हैं, जैसे उसकी भाव-संपदा और शायरों के नए-नए प्रस्तुति के ढंग, उनकी कलात्मकता आदि रहे हैं। ''ग़ज़ल का हर शेर स्वयं पूर्ण होता है। इसके दो बराबर के टुकड़े होते हैं, जिनकों 'मिसरा' कहते हैं। जितने शेरों का आखिरी शब्द एक हो और उसके पहले का शब्द एक ही आवाज का हो, उनको एक साथ लिखा जाता है और ऐसे पांच या उससे अधिक शरों के संग्रह को ग़ज़ल कहते हैं। हर शेर के अंत में जितने शब्द बार-बार आयें उनको 'रदीफ' और 'रदीफ' के पहले एक ही आवाज वाले शब्दों को 'काफिया' कहते हैं। जैसे मीर के इस शेर ''पत्ता-पत्ता बूटा बूटा हाल हमारा जाने है। जाने न जाने गुल ही न जाने बाग तो सारा जाने हैं।'' 'जाने है' रदीफ है और 'हमारा' तथा 'सारा' काफिया है।''[1] ग़ज़ल का शाब्दिक अर्थ है-प्रेमिका से वार्तालाप। इसी कारण ग़ज़ल का प्रमुख विषय प्रेम ही माना गया। प्रारंभिक काल में ग़ज़ल की दुनिया इश्क और मोहब्बत तक सीमित रही लेकिन आगे कई शायरों ने आध्यात्मिक संवेदना, जीवन, जगत, ईश्वर आदि से संबंधित ग़ज़ले प्रस्तुत की। इस दृष्टि से मिर्जा ग़ालिब का बहुत बडा योगदान रहा है। ''उर्दू में ग़ज़ल विधा को लोकप्रिय बनाने और उसकी अबाद परंपरा कायम करने का श्रेय दक्षिण के प्रसिद्ध शायर वली औरंगाबादी को है जिनकी सीधी-सादी, प्रभावपूर्ण और मार्मिक ग़ज़लों ने दिल्ली के फारसी विद्वानों और शायरों के उँचे सिंहासनों को हिला दिया और उन्हें उर्दू ग़ज़ल लिखने के लिए बाध्य कर दिया।''[2] मौलाना अल्फात हुसैन 'हाली' ने ग़ज़ल का विषय क्षेत्र विस्तारित करने के संदर्भ में कहा कि ''ग़ज़ल जैसी सशक्त विधा में जीवन की तमाम वास्तविकताओं को मार्मिक ढंग से चित्रित किया जाना चाहिए क्योंकि एक खास विषय पर निरंतर ग़ज़लों की रचना होते रहने से न केवल इससे ऊब पैदा होगी, बल्कि इसका जीवन भी संकटग्रस्त हो जायेगा।''[3] परिणाम स्वरूप ग़ज़ल के विषयवस्तु और चेतना में परिवर्तन आ गया। ग़ज़ल में इश्क़ और हुस्न गायब नहीं हुई किंतु उसमें सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक प्रश्नों एवं संदर्भों को भी अभिव्यक्ति मिलने लगी। ग़ज़ल अब दिल की दास्तान की अपेक्षा युग की दास्तान हो गयी है। अकबर इलाहाबादी, इक़बाल आदि ने ग़ज़ल को नए विचारों और भावों से समृदध करके उसे नयी चेतना दे दि। स्वतंत्रता के बाद तो उर्दू ग़ज़ल में देश की सामाजिक, राजनीतिक समस्याओं को प्रस्तुत किया गया।

हिंदी नवजागरण के दौर में कई हिंदी कवियों ने ग़ज़लें कहीं। भारतेंदू हरिश्चंद्र ने खडीबोली में ग़ज़लें लिखी। जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', रामधारी सिंह 'दिनकर' जैसे आरंभिक कवियों ने भी ग़ज़लें लिखी हैं। ''आज की ग़ज़ल वह चाहे उर्दू की हो या हिंदी की, जन चेतना से लैस होकर अपने सामाजिक दायित्व का बखूबी निर्वाह कर रही है, अब वह जमाने की

ISSN : 2581-8848

आवाज और चेतना बन गयी है।''[4] ''वर्तमान काल में ग़ज़लों के यथार्थवादी चरित्र के कारण यथार्थ का खुरदरापन उसका सौदर्य बनता जा रहा है। अब वह गमों पर मरहम लगाकर व्यथित व्यक्ति को सुलाने की जगह उसे जगाने और कर्म क्षेत्र में संघर्ष करके अपनी तकदीर बदलने की प्रेरणा देने का कार्य कर रही है।''[5] हिंदी ग़ज़ल को प्रगतिवाद का स्वर देने वालों में दुष्यन्त कुमार का नाम सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। कमलेश्वर ने बिल्कुल ठीक कहा है कि ''अगर दुष्यन्त कुमार नहीं होते, हिंदी ग़ज़ल भी नहीं होती..भारतेंदु, हरिऔध, निराला, शमशेर, त्रिलोचन उसे रूपाकार नहीं दे पाए थे... लेकिन इसके बावजूद हिंदी ग़ज़ल को मात्र भाषाई सीमा में कैद करके देखना गलत है।''[6]

हिंदी कविता को नया आयाम देनेवाले कवि दुष्यन्त कुमार का जन्म 1 सितंबर 1933 को उत्तर प्रदेश के बिजनौर जिले के राजपुर नवादा गाँव में हुआ। दुष्यन्त कुमार ने प्रयाग विश्वविद्यालय से बी.ए., एम.ए हिंदी की उपाधि प्राप्त की और उसके पश्च्यात कुछ समय के लिए आकाशवाणी भोपाल के सहायक निर्माता के रूप में कार्य किया। हिंदी साहित्यकार मार्कन्डेय, कमलेश्वर, राजेंद्र यादव, शानी, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना उनके दोस्त रहे हैं। दुष्यन्त कुमार सहज और मनमौजी थे, आगे देखने वाले और प्रगतिशील किस्म के इंसान थे। दुर्भाग्य से केवल 42 साल की अल्पायु में 30 दिसंबर 1975 को उनका निधन हो गया। दुष्यन्त कुमार नई कविता के प्रमुख कवि है। उन्होंने उपन्यास, कहानी, कविता, गजल विधाओं में लेखन किया। दुष्यन्त कुमार के 'सूर्य का स्वागत','आवाज के घेरे','जलते हुए वन का वसन्त' काव्य संग्रह है। 'छोटे-छोटे सवाल','आँगन में एक वृक्ष' उनके उपन्यास है। उनका 'एक कण्ठ विषपायी' काव्य नाटक और 'मन के कोण' नाटक है। 'दुहरी जिंदगी (अप्रकाशित उपन्यास), मसीहा मर गया (अप्रकाशित रेडियो नाटक), साये में घूप (ग़ज़ल संग्रह) प्रसिद्ध है।

दुष्यन्त कुमार के 'साये में घूप' प्रसिद्ध ग़ज़ल संग्रह में 52 ग़ज़लें है। इस ग़ज़ल संग्रह से उन्हें पहले हिंदी ग़ज़लकार के रूप में पहचान मिली, दुष्यन्त कुमार एक युग का नाम है जहा ँ से हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा शुरू होती है। उस वक्त पूरा देश अस्थिर था, आपात्काल चल रहा था और सचमुच 'साये में धूप' लगती थी। दुष्यन्त कुमार ने आपात्काल का विरोध किया उसके कारण उनको बहुत तकलिफें सहनी पडी थी। उन्होंने कहा है-

''लोग कहते थे कि ये बात नहीं कहने की,
तुमने कह दी है तो कहने की सज़ा लो यारों।''[7]

आपात्काल में कई बुद्धिजीवियों, कवियों और साहित्यकारों ने चुप्पी साध रखी थी लेकिन उस समय दुष्यन्त कुमार ने अपनी लेखनी से उस व्यवस्था के खिलाफ कलम की लड़ाई शुरू की, दुष्यन्त कुमार निडर होकर लिखते रहें। दुष्यन्त कुमार संवेदनशील थे, सामाजिक विषमता, नेता के झूठे वादें, भ्रष्टाचार, दयनीय आम आदमी, लोगों का मोहभंग, निराशा आदि देखकर उनका मन अस्वस्थ होता था। दुष्यन्त कुमार ने अपनी ग़ज़लों में इन्हीं विद्रपताओं पर करारा व्यंग्य प्रहार किया। उन्हे लगता था कि आम आदमी अन्याय, अत्याचार चुपचाप सहन करता है। सामाजिक और राजनीतिक यथार्थ को अभिव्यक्त करके लोगों को जाग्रत करना, अन्याय, अत्याचार के विरूद्ध आवाज उठाना ही उनकी ग़ज़लों का मुख्य उद्देश्य है। उन्होंने अपनी प्रतिभा के बलबूते पर हिंदी ग़ज़ल को मनुष्य के यथार्थ जीवन के साथ जोडा। उनकी ग़ज़लों में सामाजिक, राजनीतिक विसंगतियों का चित्रण दिखाई देता है। उनकी ग़ज़लों में देशप्रेम की भावना, भ्रष्ट व्यवस्था, शोषण एवं अत्याचार का विरोध तथा आशावादी दृष्टिकोण न दिखाई देता है। दुष्यन्त कुमार की ग़ज़लों में प्रगतिशील चेतना है। उनकी ग़ज़ल क्रांति की मशाल जलाकर एक बेहतर समाज की उम्मीद जगाती है, जिससे हर नागरीक अपने हक़ के लिए आवाज उठाए। दुष्यन्त कुमार का 'साये में धूप' ग़ज़ल संग्रह इसका सशक्त उदारहरण है, जो निश्क्रियता छोडकर क्रांति और उम्मीद का संदेश देता है। उन्होंने लिखा है-

''कैसे आकाश में सूराख नहीं हो सकता,
एक पत्थर तो तबीयत से उछालो यारों।''[8]

उन्होंने ग़ज़ल के माध्यम से हिंदी और उर्दू के बीच एक सेतु बनाने का महत्वपूर्ण प्रयास किया है। 'साये में धूप' ग़ज़ल संग्रह की प्रस्तावना में दुष्यन्त कुमार लिखते हैं-''उर्दू और हिंदी अपने-अपने सिंहासन से उतरकर जब आम आदमी के पास आती हैं, तो उनमें फ़र्क कर पाना बड़ा मुश्किल होता है। मेरी नीयत और कोशिश यह रही है कि इन दोनों भाषाओं को ज्यादा से ज्यादा क़रीब ला सकूँ। इसलिए ये ग़ज़लें उस भाषा में कही गई हैं, जिसे मैं बोलता हूँ।''[9] दुष्यन्त कुमार के 'साये में धूप' ग़ज़ल संग्रह का हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं में स्वागत हुआ। दुष्यन्त कुमार के बारे में डा ॅ लक्ष्मीनारायण 'चातक' का मतंव्य सटिक है ''इनकी कृतियों में संवेदना की गहराई, अनुभूति की तीव्रता और अभिव्यंजना की मार्मिकता देखी जा सकती है। दुष्यन्त कुमार कृत्रिमता से दूर सहज स्वाभाविक अभिव्यक्ति के कवि है। जिंदगी तो जीने के लिए ही है। इसमें निराशा, पराजय क्यों? आस्था और विश्वास

ISSN : 2581-8848

उनका प्रधान स्वर है।''[10] स्वयं दुष्यन्त कुमार कहते हैं -''मैं जिसे ओढता-बिछाता हूँ, वो ग़ज़ल आपको सुनाता हूँ ।''[11] डाॅ.गिरीष ज.त्रिवेदी लिखते हैं-''हिंदी में ग़ज़ल परंपरा तो थी ही किन्तु एक सशक्त और सर्वप्रिय विधा के रूप में इसे लोकप्रिय दुष्यन्त ने बनाया। दुष्यन्त ने ग़ज़ल को राजदरबारों में से नीचे उतारकर गंगा-यमुना के मैदानों के तट-प्रदेशों में लाकर खड़ा किया। महफिलों में ग़ज़ल लोगों का सिर्फ मनोरंजन करती थी इसे महफिलों से उठाकर उन करोड़ों के बीच लाकर रख दिया जहाँ विवशता, घुटन, आहें, चीख-पुकार मन को, अंतर को व्यग्र कर रहे थें। जीवन के हर पहलुओं को दुष्यन्त ने छुआ और जहाँ स्पर्श करने से टीस उठती थी उसे ही पकड़ा। दुष्यन्त के इस प्रयास के कारण ग़ज़ल सामान्य आदमी की मर्मान्तक पीड़ा की अभिव्यक्ति का साधन बन गई।''[12] डाॅ.रणजीत लिखते हैं कि ''वस्तुतः दुष्यन्त की इन ग़ज़लों ने समकालीन हिंदी कविता के क्षेत्र में हिंदी ग़ज़ल नामक एक नयी विधा को ही प्रवाहित कर दिया है। बच्चन की मधुशाला के बाद शायद ही हिंदी के किसी अन्य काव्य संकलन के इतने संस्करण प्रकाशित हुए हों, जितने 'साये में धूप' के हुए हैं। प्रगतिशील जनवादी भाव और विचार सूत्रों से संग्रंथित इन ग़ज़लों के अनेक शेर सूक्तियों और मुहावरों की तरह प्रबुद्ध लोगों की जबान पर चढे गये है। और आज पच्चीस साल बाद भी सिर्फ साहित्यिक नहीं, अन्य बौद्धिक सेमिनारों और संगोष्ठियों में उसी शिद्दत के साथ सुनाये और सुने जा रहे हैं।''[13] यहाँ स्पष्ट होता है दुष्यन्त कुमार की ग़ज़लों ने आम आदमी की तड़प को आवाज़ दी।

दुष्यन्त कुमार के 'साये में धूप' इस ग़ज़ल संग्रह की ग़ज़लों में तत्कालीन राजनीजिक और सामाजिक व्यवस्था की विसंगतियों, भ्रष्टाचार और जनता विरोधी नीतियों पर प्रहार परिलक्षित होता है। आजादी के बाद देश की जनता को लगता था अब देश आज़ाद हुआ है, उनके जीवन में खुशियाँ आयेगी लेकिन उनका मोहभंग हुआ, नेता जनता से वादें करते रहें हैं। नेताओं ने घोषणा की थी कि हर घर का विकास होगा लेकिन वास्तविकता गांव की बात छोडों यहाँ शहरों में भी सुविधाएं नजर नहीं आती थी। कई शसकिय संस्थाएं जन कल्याण हेतु निर्माण की गई लेकिन उसमें हमें कहाँ तक सफलता मिली। दुष्यन्त कुमार व्यवस्था पर आक्रोश व्यक्त करते हैं, जनता के मोहभंग को लेकर कहते हैं -

''कहाँ तो तय था चिरागाँ हरेक घर के लिए,
कहाँ चिराग़ मयस्सर नहीं शहर के लिए।''[14]

आपातकाल में सत्ता के खिलाफ बात करना कठिन था। बुद्धिमान और आम जनता की चुप्पी पर कटाक्ष करते दुष्यन्त कुमार कहते हैं-

''गूँगे निकल पड़े हैं, जुबाँ की तलाश में,
सरकार के खिलाफ ये साजिश तो देखिए।''[15]

यहाँ सत्ता पर व्यंग्य है कि जो दबे थे वे अब अपनी बात को कहने के लिए आवाज ढूँढ रहे है। यह बदलाव का संकेत है। आपात्काल में गलत व्यवस्था का पर्दाफाश करना कठिन काम था। व्यवस्था के विरूद्ध बोलना, लिखना मतलब उसे चुनौती देना था लेकिन साहित्यकार समाजहित के लिए उस गलत व्यवस्था पर बात करते हैं। अगर आपको परिवर्तन चाहिए तो परिणामों की परवाह नहीं करनी चाहिए, दुष्यन्त कुमार लिखते हैं-

''चट्टानों से पाँवों को बचाकर नहीं चलते,
सहमे हुए पाँवों से लिपट जाते हैं साए।''[16]

दुष्यन्त कुमार कल्पना के बजाय यथार्थवादी जीवन की कठोर सच्चाइयों जैसे गरीबी, बेकारी, असमानता को अपनी ग़ज़लों में ईमानदारी से प्रस्तुत करते हैं, जिससे उनकी ग़ज़लें जन-मानस से जुडती है। जनता को जाग्रत करते हुए कहते हैं-

''तुम्हारे पाँवों के नीचे कोई ज़मीन नहीं,
कमाल ये है कि फिर भी तुम्हें यक़ीन नहीं।"[17]

दुष्यन्त कुमार अपने समय की राजनीति और सामाजिक परिस्थितियाँ जानते थे। आपातकाल में लिखी उनकी ग़ज़लों में चित्रित राजनीतिक व्यवस्था और सामाजिक व्यवस्था में आज भी परिवर्तन नजर नहीं आता है।

''अब तो इस तालाब का पानी बदल दो,
ये कँवल के फूल कुम्हलाने लगे हैं।''[18]

समाज व्यवस्था, राजनीतिक वातावरण को देखकर उनका संवेदनशील मन व्यथित हो जाता है। जनता के हाल देखे नहीं जाते। एक संवेदनशील लेखक को यह हालत देखी नहीं जाती, तब वे व्यथित होकर कहते हैं-

''यहाँ दरख़्तों के साये में धूप लगती है,

चलो यहाँ से चलें और उम्र भर के लिए।''[19]

दुष्यन्त कुमार की ग़ज़ल आम आदमी की आवाज़ है। दुष्यन्त कुमार ग़ज़लों में मजबूर, निम्न वर्ग के संघर्षों , उनकी पीडा और हताशा को अपनी गज़लों का केंद्र बनाते हैं, उन्हें सिर्फ सहानुभूति नहीं बल्कि संघर्ष का मार्ग सुझाते है। आम आदमी मजबूर है, उसे पहनने के लिए वस्त्र नहीं तो वह पैरों को मोड कर पेट ढँक लेंगे ऐसे लोग ही उनके लिए चाहिए जो चूपचाप जीवन जीते हैं। जनता की बदहाली पर दुष्यन्त कुमार कहते हैं-

''न हो कमीज़ तो पाँवों से पेट ढँक लेंगे,
ये लोग कितने मुनासिब हैं, इस सफर के लिए।''[20]

ग़ज़लकार दुष्यन्त कुमार आम आदमी में विश्वास व्यक्त करते हैं । भ्रष्ट व्यक्ति में संवेदना नहीं होती, वे पत्थर दिल होते हैं । कवि आम आदमी को भ्रष्टाचार के विरोध में आवाज उठाने को कहता है। उन्हें विश्वास है कि आज नहीं तो कल वे आवाज उठायेंगे, वे बेकरार है, उस आवाज के लिए।

''वे मुतमइन हैं कि पत्थर पिघल नहीं सकता,
मैं बेक़रार हूँ आवाज़ में असर के लिए।''[21]

दुष्यन्त कुमार सामाजिक यथार्थ और असंवेदनशील राजनीति पर प्रहार करते है। जनता भूख से बेहाल है, रोटी के लिए गुहार लगा रही है अपने हक और अधिकार की माँग कर रही है और सत्ता में बैठे शासक को उनकी परवाह नहीं है वे सिर्फ दिल्ली में बहस कर रहें है। वह बहस केवल दिखाने के लिए है। उसका कोई उपाय नहीं है। यह हालत देखकर दुष्यन्त कुमार कहते हैं-

''भूख है तो सब्र कर, रोटी नहीं तो क्या हुआ,
आजकल दिल्ली में है ज़ेरे बहस ये मुद्आ।''[22]

दुष्यन्त कुमार की ग़ज़ल जन-जागरण और क्रांति की मशाल है। उनकी ग़ज़लों में निष्क्रियता को तोडकर अन्याय के खिलाफ उठ खडे होने और सामाजिक क्रांति लाने की तीव्र इच्छा दिखती है। दुष्यन्त कुमार कहते हैं कि आदमी की पीडा पर्वत के समान है उसे पिघलना चाहिए। अतः हमें समस्याओं से डरना नहीं चाहिए, समस्याएँ हल होने के बजाय बढती जाती है, हमें उसका सामना करना चाहिए, उससे समाधान निकालना चाहिए। दुष्यन्त कुमार कहते हैं कि ऐसी व्यवस्था के खिलाफ हमें आवाज उठानी चाहिए।

''हो गई है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिए,
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए।
आज यह दीवार, परदों की तरह हिलने लगी,
शर्त लेकिन थी कि ये बुनियाद हिलनी चाहिए।
हर सड़क पर, हर गली में, हर नगर, हर गाँव में,
हाथ लहराते हुए हर लाश चलनी चाहिए।''[23]

दुष्यन्त कुमार की ग़ज़लों का मूल स्वर परिवर्तन की पुकार है, वे चाहते है कि इस गलत, दिशाहीन व्यवस्था में परिवर्तन आए, समाज में समरसता आए और हर नागरिक अपने अधिकारों के लिए जागरूक हो जाए। दुष्यन्त कुमार यहाँ समाज को सलाह देते हैं कि सिर्फ हंगामा खडा करना हमारा मकसद नहीं होना चाहिए तो समस्या की जड़े को समाप्त करने की कोशिश होनी चाहिए। दुष्यन्त कुमार की गजलें इंसानियत के लिए, अच्छाई और सच्चाई के लिए तथा अन्याय, अत्याचार के खिलाफ लडने के लिए हर मनुष्य में हौसला उत्पन्न करती है और आगे भी करती रहेगी। वर्तमान में भी दुश्यन्त कुमार की समस्त ग़ज़लें लोगों की जुबान पर है। संगोष्ठियों या सेमिनारों में इनकी ग़ज़ल सुनने को मिलती है। कोई भी साहित्यकार केवल चर्चा के लिए साहित्य नहीं लिखते तो वे उन कमियों में सुधार की अपेक्षा करते हैं , जो वे देखते हैं, अनुभव करते हैं । इसलिए दुष्यन्त कुमार कहते हैं-

''सिर्फ़ हंगामा खड़ा करना मेरा मक़सद नहीं,
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए।
मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही,
हो कहीं आग, लेकिन आग जलनी चाहिए।''[24]

''दुष्यन्त कुमार की ग़ज़लः प्रगतिशील चेतना '' इस विषय का विवेचन-विश्लेषण करने के पश्चात हम बडी विनम्रता से कह सकते हैं कि दुष्यन्त कुमार संवेदनशील लेखक थे। साहित्य समाज का दर्पण माना जाता है वैसे वह प्रदिप भी है। साहित्य

 ISSN : 2581-8848

समाज की कमियों की ओर उँगलि निर्देश करता है, उसकी अपेक्षा होती है कि उसमें सुधार हो जाए। दुष्यन्त कुमार का साहित्य आम आदमी की छटपटाहट, संघर्षों का साहित्य है। दुष्यन्त कुमार की गजल में तत्कालीन समाज का वास्तविक चित्रण दृष्टिगोचर होता है। हमारा देश कई साल पारतंत्र में रहा और काफी संघर्ष के बाद स्वतंत्र हुआ। स्वतंत्रता के बाद लोगों को लगा था की अब तो जीवन सुकर हो जायेगा। नेताओं ने लोगों को विकास के सपने दिखायें, उन्हें भी आशा थी लेकिन वास्तव में कुछ भी नहीं हुआ। नेताओं ने किये वादें से जनता निराश हो गयी। विकास के नाम पर शुरू हुई योजनाएँ कहाँ तक सफल हुई। मोहभंग, निराशा से संवेदनशील ग़ज़लकार कहते हैं कि चले यहाँ से कहीं दूर, भले न हो तन ढकने के लिए कमीज तो अपने पावों से उसे ढक लेगें। आम आदमी गरीब, शोषित जीवन जीने के लिए मजबूर है, उनकी यही जिंदगी शासन के लिए उपयोगी है। जनता ईश्वर के सहारे सपने देखती है। उन्हें आशा है आज नहीं तो कल उनके दिन बदल जायेंगे। शोषक कठोर है, लेकिन शोषित जाग्रत होकर क्रांति करेगा ऐसा लेखक को विश्वास है। दुष्यन्त कुमार ग़ज़ल में समाज परिवर्तन की आशा और विश्वास व्यक्त करते है। आम आदमी की वेदना का समाधान आज नहीं तो कल मिलेंगा। अन्यायी की जडे जानना जरूरी है और सही दिशा में क्रांति की आवश्यकता होती है। सालों-साल से पीडित जनता को आवाज उठानी चाहिए। सिर्फ हंगामा खड़ा करना मकसद न होकर सत्य के लिए जाग्रति यह नेक भावना चाहिए। संक्षेप में दुष्यन्त कुमार की ग़ज़लों की प्रगतिशील चेतना सामाजिक यथार्थ, गलत व्यवस्था विरोध और सामान्य जनता के संघर्शों पर केंद्रित हैं। ग़ज़ल आज़ादी के बाद की यथार्थ परिस्थितियों को उजागर करके सही समाज परिवर्तन, सही क्रांति चाहती है। प्रस्तुत ग़ज़ल संघर्ष की प्रेरणा देती है, समस्याओं के समाधान खोजने के लिए प्रेरित करती है।

संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. .अमरनाथ- हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, पृष्ठ 199
2. वही, पृष्ठ 200
3. वही, पृष्ठ 201
4. वही, पृष्ठ 201
5. वही, पृष्ठ 201,202
6. वही, पृष्ठ 201
7. दुष्यन्त कुमार- साये में धूप, पृष्ठ 49
8. वही, पृष्ठ 49
9. वही, पृष्ठ 06
10. डाॅ.लक्ष्मीनारायण ‘चातक’- आधुनिक हिंदी कविता का इतिहास, पृष्ठ 164
11. दुष्यन्त कुमार - साये में धूप, पृष्ठ 62
12. डॉ. गिरीश ज. त्रिवेदी – दुष्यन्त कुमार व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृष्ठ 122
13. डॉ.रणजीत- हिंदी के प्रगतिशील और समकालीन कवि, पृष्ठ 259
14. दुष्यन्त कुमार- साये में धूप, पृष्ठ 13
15. वही, पृष्ठ 61
16. वही, पृष्ठ 42
17. वही, पृष्ठ 64
18. वही, पृष्ठ 14
19. वही, पृष्ठ 13
20. वही, पृष्ठ 13
21. वही, पृष्ठ 13
22. वही, पृष्ठ 21
23. वही, पृष्ठ 30
24. वही, पृष्ठ 30

*****

धूमिल की कविता में चित्रित राजनीतिक परिदृश्य : संसद से सडक तक काव्य संग्रह के संदर्भ में

प्रा.डॉ.माधुरी परशुराम कांबळे
सहयोगी प्राध्यापक
श्रीमती सी.बी.शाह महिला महाविद्यालय
सांगली, फोन 9823017380
Email- madhurikamble.29@gmail.com.

सारांश:

सुदामा पाण्डेय 'धूमिल' समकालीन हिंदी कविता के उन विशिष्ट कवियों में हैं जिन्होंने कविता को सौंदर्यपरक अभिव्यक्ति से आगे बढ़ाकर सामाजिक–राजनीतिक प्रतिरोध का प्रभावशाली माध्यम बनाया। उनकी कविताएँ स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भारतीय लोकतंत्र में विकसित सत्ता-केंद्रित राजनीति, नैतिक मूल्यों के ह्रास, संसदीय पाखंड तथा आम आदमी के शोषण को तीखे व्यंग्य और आक्रोश के साथ प्रस्तुत करती हैं।

प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य

धूमिल की कविता में चित्रित राजनीतिक परिदृश्य का विश्लेषण करना है। अध्ययन में यह स्पष्ट किया गया है कि धूमिल के काव्य में लोकतंत्र एक आदर्श व्यवस्था के रूप में नहीं, बल्कि एक विडंबनापूर्ण और जनविमुख संरचना के रूप में उभरता है। *संसद से सड़क तक* (2006) को केंद्र में रखते हुए यह शोध धूमिल की कविता को राजनीतिक चेतना, नैतिक प्रतिरोध और जनसंघर्ष का दस्तावेज़ सिद्ध करता है।

बीजशब्द : धूमिल, राजनीतिक कविता, लोकतंत्र, सत्ता, प्रतिरोध, समकालीन हिंदी कविता

प्रस्तावना :

किसी समाज की शासन-व्यवस्था, सत्ता-संरचना और जनता से उसके संबंधों का समग्र प्रतिबिंब राजनीतिक परिदृश्य के माध्यम से प्रकट होता है। स्वतंत्रता के बाद भारतीय राजनीति से समानता, सामाजिक न्याय और जनकल्याण की अपेक्षा की गई थी, किंतु व्यवहार में सत्ता का केंद्रीकरण, अवसरवाद और जनविमुखता निरंतर बढ़ती चली गई। लोकतंत्र औपचारिक रूप से स्थापित हुआ, परंतु सामाजिक–आर्थिक विषमताएँ और राजनीतिक पाखंड गहराते गए।

इसी ऐतिहासिक–राजनीतिक पृष्ठभूमि में समकालीन हिंदी कविता ने यथार्थवादी और प्रतिरोधी स्वर अपनाया। सुदामा पाण्डेय 'धूमिल' इस धारा के ऐसे कवि हैं जिन्होंने कविता को सत्ता-विरोध और जनपक्षधर चेतना का सशक्त औज़ार बनाया। धूमिल की राजनीतिक कविता लोकतंत्र की विडंबनाओं, संसदीय पाखंड और नेताओं की अवसरवादी मानसिकता को उजागर करती है। वे सत्ता की भाषा में बात करने के बजाय सड़क, मज़दूर और आम आदमी की भाषा को कविता का माध्यम बनाते हैं। यह भाषा स्वयं में प्रतिरोध का रूप ले लेती है, क्योंकि वह स्थापित सत्ता-संरचना को असुविधाजनक प्रश्नों से घेरती है।

धूमिल और समकालीन राजनीतिक चेतना :

धूमिल की कविता समकालीन भारतीय राजनीति के उस यथार्थ को उद्घाटित करती है जहाँ सत्ता और जनता के बीच दूरी निरंतर बढ़ती गई है। उनके काव्य में संसद, प्रशासन और राजनीतिक संस्थाएँ जनता की समस्याओं से कटी हुई दिखाई देती हैं। लोकतंत्र जनता के नाम पर संचालित होता है, किंतु वास्तविक सत्ता जनता के हाथों में नहीं होती। धूमिल के अनुसार राजनीति सेवा का माध्यम न रहकर सत्ता-प्राप्ति और स्वार्थ-संरक्षण का उपकरण बन चुकी है। यह दृष्टि उन्हें अन्य समकालीन कवियों से अलग पहचान देती है।

धूमिल की कविता में राजनीति का स्वरूप :

धूमिल की कविता में राजनीति सत्ता की चमक-दमक के बजाय उसकी कुरूप वास्तविकता के रूप में उपस्थित होती है। उनकी प्रसिद्ध कविता *'जनतंत्र के सूर्योदय में'* लोकतंत्र को अत्यंत तीखे शब्दों में व्यक्त किया गया है—

" संविधान की धाराएँ, नाराज आदमी की परछाई को देश के नक्शे में बदल देती है. " (1) यह पंक्तियाँ संकेत करती हैं कि स्वतंत्रता के बाद प्रयुक्त 'जनतंत्र' और 'समाजवाद' जैसे शब्द व्यवहार में खोखले हो चुके हैं। राजनीति आम आदमी को केंद्र में लाने के बजाय उसे हाशिये पर धकेल देती है।

लोकतंत्र की विडंबना और सत्ता का चरित्र :

धूमिल लोकतंत्र को एक आदर्श व्यवस्था के रूप में नहीं, बल्कि एक विडंबनापूर्ण संरचना के रूप में देखते हैं। उनके अनुसार जनता की भूमिका केवल मतदान तक सीमित कर दी गई है। चुनाव के बाद जनता की आवाज़ सत्ता-तंत्र में अनसुनी रह जाती है।

संसद से सड़क तक में धूमिल लिखते हैं—
"क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगो का नाम है
जिन्हे एक पाहिया ढोता है
या इसका कोई खास मतलब होता है." (२)

यह प्रश्न लोकतंत्र की वास्तविकता पर गहरी शंका प्रकट करता है और सत्ता के नैतिक पतन को उजागर करता है।

आम आदमी और राजनीतिक शोषण :

धूमिल के अनुसार राजनीतिक व्यवस्था आम आदमी के जीवन को बेहतर बनाने के बजाय उसे लगातार शोषण का शिकार बनाती है। सत्ता जनता के नाम पर काम करने का दावा करती है, लेकिन वास्तविकता में राजनीतिक निर्णयों का बोझ आम आदमी पर ही पड़ता है। महँगाई, कर, बेरोज़गारी और असमान अवसर उसी के हिस्से आते हैं, जबकि सत्ता-संपन्न वर्ग सुविधाओं का उपभोग करता है। यही राजनीतिक शोषण का मूल स्वरूप है।

इस संग्रह में धूमिल यह स्पष्ट करते हैं कि आम आदमी लोकतंत्र का आधार होते हुए भी सत्ता की संरचना से बाहर रखा जाता है। वह केवल मतदाता बनकर रह जाता है—निर्णयकर्ता नहीं। चुनाव के समय उसके नाम पर नारे लगाए जाते हैं, पर चुनाव के बाद उसकी आवाज़ अनसुनी कर दी जाती है। इस प्रकार लोकतंत्र आम आदमी को भागीदार बनाने के बजाय उसे इस्तेमाल करने का साधन बन जाता है।

धूमिल सत्ता की भाषा और आम आदमी की भाषा के बीच के अंतर को उजागर करते हैं। सत्ता की भाषा वादों, घोषणाओं और औपचारिक शब्दों से भरी होती है, जबकि आम आदमी की भाषा अनुभव, पीड़ा और संघर्ष की भाषा है। राजनीतिक शोषण इसी भाषा-भेद के माध्यम से भी संचालित होता है—जहाँ आम आदमी की वास्तविक समस्याएँ सत्ता की भाषा में स्थान नहीं पातीं।

धूमिल की कविता *'वसंत'* पारंपरिक ऋतु-वर्णन नहीं है। यहाँ वसंत राजनीतिक घोषणाओं और सरकारी प्रचार का प्रतीक बन जाता है।

यह कविता स्पष्ट करती है कि विकास और खुशहाली केवल काग़ज़ों और भाषणों तक सीमित हैं, जबकि आम आदमी का जीवन जस का तस बना रहता है। धुमिल लिखते है –

"मेरे लिये वसंत
बिलो के भुगतान का मौसम है ." (3)

धूमिल आम आदमी को केवल पीड़ित के रूप में नहीं, बल्कि चेतन और प्रश्नाकुल व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत करते हैं। उसके भीतर असंतोष, क्रोध और प्रतिरोध की भावना है। यह असंतोष ही राजनीतिक शोषण के विरुद्ध संभावित प्रतिकार का आधार बनता है। धूमिल की कविता आम आदमी को चुप दर्शक बने रहने के बजाय सवाल उठाने के लिए प्रेरित करती है।

नैतिकता बनाम राजनीति :

धूमिल राजनीति में नैतिकता के अभाव को सबसे बड़ा संकट मानते हैं। उनके अनुसार बिना नैतिक मूल्यों के लोकतंत्र केवल एक औपचारिक ढाँचा बनकर रह जाता है।

मोचीराम कविता में वे लिखते है –

"बाबूजी! सच कहु – मेरी निगाह में
न कोई छोटा है
न कोई बडा है
मेरे लिए, हर आदमी एक जोडी जुता है
जो मेरे सामने

मरम्मत के लिए खडा है.” (४)

'मोचीराम' कविता में साधारण श्रमिक के माध्यम से वे मानवीय समानता और नैतिक दृष्टि को सामने रखते हैं। यह दृष्टिकोण राजनीति के वर्गीय और अवसरवादी चरित्र पर तीखा प्रहार करता है।

राजनीतिक यथार्थ और प्रतिरोध

धूमिल की कविता केवल राजनीतिक यथार्थ का वर्णन नहीं करती, बल्कि उसका प्रतिरोध भी करती है। उनकी भाषा आक्रामक, व्यंग्यात्मक और सड़क की भाषा से जुड़ी हुई है। यह भाषा स्वयं सत्ता के लिए असुविधाजनक बन जाती है। कविता *'पटकथा'* में सत्ता और जनता के बीच मौजूद हिंसक अंतर्विरोधों को प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो राजनीतिक अमानवीयता को उजागर करता है। उन्होने पटकथा कविता में लिखा है –

“ मुझे लगा – आवाज
जैसे किसी जलते हुए कुए से
आ रही है
एक अजीब सी प्यारभरी गुराँहट
जैसे कोई मादा भेडिया
अपने छौने को दुध पिला रही है और
साथ ही किसी मेमने का सिर चबा रही है .” (5)

केवल जनतंत्र और शाषण पद्धती का चित्रण पटकथा कविता नही करती साथ ही जनता में व्याप्त अनैतिकता असंतोष को प्रस्तुत करती है

लोकतंत्र :

कवि के यहाँ लोकतंत्र केवल मतदान तक सीमित दिखाई देता है। चुनाव के बाद जनता हाशिये पर चली जाती है। निर्णय जनता के लिए नहीं, बल्कि सत्ता के लिए लिए जाते हैं। इस प्रकार लोकतंत्र एक औपचारिक प्रक्रिया बनकर रह जाता है, जबकि उसका वास्तविक उद्देश्य—जन-कल्याण—लुप्त हो जाता है। धुमील लिखते है –

“चुनाव ही सही इलाज है
क्योकि बुरे और बुरे के बीच से
किसी हद तक ‘कम से कम बुरे को’ चुनते हुए
न उन्हे मलाल है, न भय है
न लाज है” (६)

लोकतंत्र की सबसे बड़ी विडंबना यह है कि जनता की भूमिका केवल मतदान तक सीमित कर दी गई है। चुनाव के समय जनता महत्वपूर्ण होती है, लेकिन चुनाव के बाद वही जनता हाशिये पर चली जाती है। निर्णय जनता द्वारा नहीं, बल्कि जनता के नाम पर लिए जाते हैं।

निष्कर्ष :

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि धूमिल की कविता केवल साहित्यिक कृति नहीं, बल्कि राजनीतिक चेतना का दस्तावेज़ है, जो आज भी पाठक को सोचने और सवाल करने के लिए प्रेरित करती है।

धूमिल की कविता ‘राजनीति’ नैतिकता और सत्ता के बीच चल रहे संघर्ष का सशक्त दस्तावेज़ है। यह कविता राजनीति के नैतिक पतन की आलोचना करते हुए आम आदमी के पक्ष में एक स्पष्ट वैचारिक स्थिति प्रस्तुत करती है। संसद से सड़क तक के माध्यम से धूमिल राजनीति को यह याद दिलाते हैं कि नैतिकता के बिना लोकतंत्र केवल एक खोखली संरचना बन जाता है।

इस प्रकार धूमिल की कविता समकालीन हिंदी साहित्य में राजनीतिक चेतना और नैतिक प्रतिरोध का महत्त्वपूर्ण उदाहरण है।

ISSN : 2581-8848

संदर्भ :

१.धूमिल. (2006). *संसद से सड़क तक*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।पृ.11

२. धूमिल. (2006). *संसद से सड़क तक*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन। पृ. 10

3.धूमिल. (2006). *संसद से सड़क तक*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन। पृ. २०

४.धूमिल. (2006). *संसद से सड़क तक*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन। पृ. ३७

५.धूमिल. (2006). *संसद से सड़क तक*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन। पृ. ११२

6.धूमिल. (2006). *संसद से सड़क तक*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन। पृ. ११९

7.राहुल. (1992) विपक्ष का कवि धुमील : नीरज बुक सेंटर १२६ पटपट गंज नई दिल्ली

8. डॉ.रुक्साना शेख.(2004) आधुनिक हिंदी- उर्दू काव्य का तुलनात्मक अध्ययन

*****

 ISSN : 2581-8848

आधुनिक हिंदी गजलों में प्रगतिशीलता

डॉ. मच्छिंद्र भगवान कुंभार
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
भारती विद्यापीठ संचालित,
मातोश्री बयाबाई श्रीपतराव कदम महाविद्यालय,
कड़ेगांव मोबाइल नंबर - 9372641771
ई-मेल पता- machindrakumbhar82@gmail.com

शोध सार:

आधुनिक काल के गजलकारों ने अपनी गजलों को परंपरागत विषय के दायरे से बाहर निकालकर आम आदमी के जीवन की त्रासदी एवं परिस्थितियों के साथ जोड़ा है।जो प्रगतिशीलता का बड़ा उदाहरण कहा जा सकता है। आधुनिक युग के हिंदी गजलकारों ने अपनी रचनाओं में प्रगतिशीलता को अत्यंत गहराई और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। जिसमें मनुष्य जीवन का यथार्थ, शोषितों के प्रति सहानुभूति और शोषकों के प्रति विद्रोह की भावना, परिवर्तन की आशा, क्रांति और विद्रोही की भावना ,सामाजिक एवं राजनीतिक यथार्थ, मानवीय मूल्य, मानवतावाद आदि को मार्मिकता से अभिव्यक्ति मिली है। जिससे मनुष्य यथार्थ से परिचित होता है। गलत रूढ़ियों और परंपराओं का विरोध कर अपने जीवन में प्रगति के मार्ग पर चल सकता है। यह प्रगतिशीलता से युक्त गजलें आम आदमी को चेतनशील बनाकर जीवन से संघर्ष कर लड़ना सिखाती हैं। जिससे मनुष्य मानवता को अपनाकर अपने जीवन में आनंद प्राप्त कर सकता है। अतः प्रगतिशीलता से युक्त गजलें मनुष्य जीवन में आनंदरूपी प्रकाश फैलाकर उन्हें जीवन संघर्ष के लिए प्रेरित करती है।

बीज शब्द: साहित्य, समाज, गज़ल, विचार, यथार्थ

प्रस्तावना:

साहित्य और समाज का गहरा संबंध होता है। साहित्य समाज सापेक्ष होता है। समाज के हर पहलुओं को, घटनाओं को सामाजिक सह्ददय के भावों को, व्यक्ति की समस्याएं, उलझने आदि अनेक पहलुओं को अपने में समेटने की ताकत साहित्य में होती है। गद्य-पद्य की अनेक विधाओं में साहित्य समाज को अभिव्यक्ति देता है और यही समाज साहित्य को पढ़कर उससे प्रभावित होता है। अतः साहित्य की पद्यात्मक विधा जैसे - महाकाव्य, खंडकाव्य, प्रगीत, कविता, गजल और गद्यात्मक विधाएं - कहानी उपन्यास, नाटक, एकांकी आदि विधाओं में समाज की यथार्थ अभिव्यक्ति होती हैं। मनुष्य की भावनाएं और विचारों को साहित्य कल्पना और विशिष्ट शैली से गद्यात्मक एवं पद्यात्मक रूप से अभिव्यक्ति देता है। गजल यह पद्य साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा है। वस्तुतः गजल फारसी और उर्दू से हिंदी भाषा में आयी पद्य विधा मानी जाती है। जिसमें गजलकार अपनी भावनाओं और विचारों को विशिष्ट शैली में अभिव्यक्त करता है।

गजल आधुनिक युग की महत्वपूर्ण काव्य विधा है। जिसे सामान्य अर्थ होता है - माशूका से बातचीत या स्त्री के संदर्भ में की गई बात या स्त्री से की गई से बात। गजल के शुरुआती दौर में गजल श्रृंगार से संबंधित थी। परंतु वर्तमान काल में गजल एक ऐसी विधा है जो मनुष्य के जीवन के किसी भी पक्ष को उतनी ही गहराई और प्रभावशीलता से अभिव्यक्ति देने में सक्षम है। इसलिए आज गजल का दायरा संकुचित न रहकर विस्तृत हो चुका है। गजल किसी भी भाव, विचार, शिल्प की सीमा में बंधी नहीं है। वह अपने पंख खोलकर पूरे विश्वरूपी आकाश में मंडरा रही है। वह देश-विदेश में पहुंच भ्रमण करती सभी मनुष्य को मानवता के दायरे में लाकर विश्वबंधुत्व, धर्मनिरपेक्षता आदि की संकल्पनाओं को बिखेर रही है। इस संदर्भ में निदा फ़ाज़ली कहते हैं कि, "गजल का इतिहास बहुत लंबा-चौड़ा चौड़ा है। इसमें कई देशों की संस्कृति और तहजीबों का सौंदर्य शामिल है। इसमें कई सदियों का फैलाव है, जिसको समेटने की कोशिश करूं, तो यूं कहूंगा- गजल अरब के रेगिस्तान में इठलाई, ईरान के बागों में लहराई और वहां से चलकर जब गंगा और हिमालय के देश आई, तो उसका हुस्न कुछ ऐसा था, उसके माथे पर जोरोस्टर का नूर था, दिल में गीता थी, हाथों में कुरान था और उसका नाम धर्मनिरपेक्ष हिंदुस्तान था।"[1]

अतः गजल भावाभिव्यक्ति की एक सशक्त और लोकप्रिय विधा है। आज यह विधा केवल अरबी, फारसी और उर्दू भाषा तक सीमित नहीं रही, बल्कि इसे हिंदी, मराठी भाषा के साहित्यकारों ने सहजता से स्वीकार किया है और ग़ज़ल विधा को समृद्ध करने का प्रयास किया है। इसकी अदा ने इसे लोकप्रिय बनाया है। इस संदर्भ में निदा फ़ाज़ली का कथन है- "हिंदी में इसे शमशेर और त्रिलोचन ने गले लगाया है, गुजराती में चीनू मोदी और मरीज़ जैसे कलाकारों ने इसे अपनाया है, मराठी में सुरेश भट्ट

और मंगेश पाड़गावकरने इसमें जादू जगाया है, पंजाबी में अमृता प्रीतम और मंजीत टिवाणा ने अपनी धड़कनों से इसे सजाया है। सिंधी में शेख अयाज़ और नारायण शाम ने अपना सुख-दुख इसमें गया है, उर्दू में गालीब और फ़िराक़ ने इसे ऊंचाइयों पर पहुंचा है। इन चंद भाषाओं के अलावा अनेक देशी-विदेशी ज़ुबानें हैं, जिन्होंने इसी आईने में स्वयं को दर्शाया है। ग़ज़ल की इसी बहुमुखी लोकप्रियता में, इस विधा की बनावट और बुनावट का बड़ा हाथ है।"[2]

इस तरह से गजल विधा ने वर्तमान साहित्य पर अपना विशेष अधिकार प्राप्त किया है। साहित्य में प्रचलित विभिन्न विचारधाराओं से गजल यह विधा भी प्रभावित रही है। साहित्य में प्रवाहित वाद जैसे - छायावाद, मार्क्सवाद, प्रयोगवाद, प्रगतिवाद, आधुनिकतावाद आदि गजल में भी प्रवाहित हुआ है। प्रगतिशील विचारधारा मुख्यतः पश्चात विचारों की देन है। इसके मूल में मार्क्सवाद है। जिसका लक्ष्य है, मानवतावाद और आर्थिक विषमता। प्रगतिशीलता मूल अर्थ होता है - नवीनता की ओर विकास, साथ ही यथार्थ परिस्थितियों का अंकन। हिंदी साहित्य में यह विचारधारा का उद्भव सन् 1936 से शुरू होता है। जिसमें मानवतावाद को लेकर मनुष्य जीवन के यथार्थ को सामने रखकर आर्थिक विषमता के खिलाफ संघर्ष प्रमुख रहा है। प्रगतिशीलता व्यष्टि से अधिक समष्टि को महत्व देती है। इसमें व्यक्ति नहीं समाज प्रमुख होता है। प्रगतिशील साहित्य के संदर्भ में शिवकुमार मिश्र कहते हैं कि ,"प्रगतिवाद काव्य में व्यक्ति के स्थान पर समाज और जनजीवन के कल्याण की, निराशा, पराजय और स्थायी रोमान्स के स्थान पर आशा, उत्साह और स्वस्थ प्रेम की दिशाओं में साहित्य को गतिशील किया।"[3]

अतः कह सकते हैं प्रगतिशीलता से गद्य-पद्य साहित्य की सभी विधाएं प्रभावित रही है। ग़ज़ल भी इसके लिए अपवाद नहीं रही। हिंदी के आधुनिक गजलकारों ने अपनी गजलों की अभिव्यक्ति में प्रगतिशीलता का चित्रण अत्यंत सहजता से किया है। उन्होंने अपनी गजलों में प्रगतिशील विचारधारा को अपनाकर समाज की यथार्थता, शोषितों के प्रति सहानुभूति और शोषक वर्ग के प्रति विद्रोह का चित्रण, परिवर्तन की आशा-अपेक्षा का अंकन, क्रांति और विद्रोह का स्वर, मानवतावादी दृष्टि तथा मानवीय मूल्यों की अभिव्यक्ति का नग्न यथार्थ अपनी गजलों में अंकित कियाहै।

गजल एक गेयात्मक विधा होने के साथ-साथ भावात्मकता और संक्षिप्तता से युक्त हैं। इसके बावजूद गज़ल प्रगतिशीलता को अपने में समेट कर मानवता का यथार्थ चित्रण करती है। वर्तमान हिंदी गजलकरो में दुष्यंत कुमार, जहीर कुरैशी, चिरंजीत, गोपालदास नीरज, त्रिलोचन शास्त्री, कुमार शिव, ज्ञान प्रकाश विवेक, प्रमोद तिवारी, मासूम गाजियाबादी, गुलज़ार, कुंवर बेचैन, जावेद अख्तर, फिराक गोरखपुरी, राहत इंदौरी, निदा फ़ाज़ली, अशोक मिजाज, शहरयार आदि के नाम लिए जा सकते हैं। जिन्होंने अपनी गजलों में प्रगतिशीलता का अंकन बड़ी सजगता और सहजता से किया है।

दुष्यंत कुमार गजल के शहंशाह माने जाते हैं। उनकी गजलें हिंदी साहित्य की मौलिक रचनाएं हैं। उन्होंने अपनी गजलों में प्रेम और श्रृंगार से हटकर जनता की जुबान को अपनाकर गरीब, पीड़ित सर्वहरा वर्ग का यथार्थ, मानवतावाद, मानवीय मूल्य तथा व्यक्ति की उलझन एवं सुलझन को मार्मिकता से अभिव्यक्त किया है। 'साये में धूप' दुष्यंत कुमार का लोकप्रिय एवं बेजोड़ गजल संग्रह है, जो प्रगतिशीलता से युक्त है। जिसमें दुष्यंत कुमार ने सामाजिक यथार्थ को बड़ी सहजता से उभरा है। इस संदर्भ में डॉ. सिद्धनाथ कुमार का कहना है कि "दुष्यंत कुमार ने अपनी गजलों में मुख्य रूप से सामाजिक अनुभूतियों को ही अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया।"[4]

दुष्यंत कुमार की प्रगतिशीलता से युक्त रचनाओं में सामाजिक यथार्थता प्रमुख रही। इन गजलों में सामाजिक चेतना और यथार्थ की धार ही प्रमुख रही हैं। शोषण, पराजय, पीड़ा, मोहभंग और दुर्व्यवस्था की निर्भीक अभिव्यक्ति भी रही। दुष्यंत कुमार ने अपने गजल संग्रह 'साये में धूप' की पहली गजल में आजादी के बाद के मोहभंग, आशा-अपेक्षाओं को अपनी ग़ज़ल में वाणी देने का काम किया। आजादी के बाद लोगों को लग रहा था कि सब कुछ ठीक होगा। अंग्रेजी सरकार के अन्याय-अत्याचार और शोषण से पीड़ित जनता अमन से जीना चाहती थीं । परंतु आजादी के बाद भी परिस्थितियों में परिवर्तन न आने के कारण आम जनता का मोहभंग हो गया। आम लोगों की आशा, उम्मीद, विश्वास सब कुछ बिखर गया। इस भाव को दुष्यंत कुमार ने अपनी ग़ज़ल का विषय बनाया -

"कहां तो तय था चिरागां हर एक घर के लिए,
कहां चिराग मयस्सर नहीं शहर के लिए।"[5]

अतः आम आदमी की आशा निराशा में बदल जाती हैं। जो सपने आजादी के पहले बने थे। वह आजादी के बाद भी पूरे नहीं होते। इसी अभाव और मोहब्बत का यथार्थ चित्रण उनकी गजलों में मिलता है। सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्ति देते हुए दुष्यंत कुमार कहते हैं -

"रोज जब रात को बाहर का गजर होता है,
यातनाओं के अंधेरे में सफर होता है।"[6]

इस तरह व्यक्ति आज भी विवश, बेबस और दयनीयता में अपनी जिंदगी बिता रहा है। सामाजिक यथार्थ यह है कि आज व्यक्ति हर समय चिंता और यातनाओं से गुजर रहा है।

जहीर कुरैशी आधुनिक हिंदी के बड़े गजलकार हैं। जिन्होंने अपनी गजलों में प्रगतिशीलता का चित्रण बड़ी सूक्ष्मता से किया है। प्रगतिशील विचार रखनेवाले जहीर कुरैशी जी ने मानव मन की पीड़ा, अकेलापन, कुंठा, संत्रास, वर्तमान राजनीति की प्रवृत्ति आदि पर अपनी गजलों में कसकर प्रहार किया। प्रगतिशीलता सामाजिक दशा की अभिव्यक्ति करती हैं। जहीर कुरैशी ने राजनीतिक याथार्थ को स्पष्ट करते हुए अपनी ग़ज़ल 'रोज तूफान आकर डराते हैं' में कहते हैं कि नेता और जनता ऊपर से एक दिखाई देते हैं। परंतु कूट राजनीति में नेता लोग जनता की सेवा का व्रत भूल जाते हैं। अपने स्वार्थ और अहंकार के चलते आम जनता को कुचलने के लिए हमेशा तैयार रहते हैं। आम जनता को डर दिखाकर अपनी राजनीतिक स्वार्थ को पूरा करते हैं। इसलिए नेता लोग हर समय झूठ के रास्ते पर ही चलता है। जहीर कुरैशी लिखते हैं कि-

"झूठ, सच की तरह बोलने का हमें,
राजनीतिज्ञ जादू सीखनते रहे।"[7]

कार्ल मार्क्स ने सामाजिक और आर्थिक समानता की बात करते हुए मनुष्य के विकास का सिद्धांत सामने रखा। प्रगतिशीलता मार्क्स की वैचारिक धारणा है। समाज में पूंजीवाद पहले भी था, जो अत्यंत सबल था। आज भी वही स्थितियां है। सबल हमेशा निर्बोलों का शोषण कर उन पर अन्याय-अत्याचार करता आया है। चाहे वह नारी हो या पुरुष, दलित हो या सव्रन इनका शोषण, अन्याय-अत्याचारों को अपनी गजलों में जगह देनेवाले जहीर कुरैशी ने अपनी ग़ज़ल 'जब भी औरत ने अपनी सीमा रेखा को पार किया' में नारी, और दलितों के शोषण, अन्याय-अत्याचारों को अभिव्यक्ति दी। वह लिखते हैं-

"निर्बल कोई भी हो, औरत, हरिजन अथवा शीशमहल,
निर्बल पर ताकतवर ने हर युग में अत्याचार किया।"[8]

इस तरह निर्बोलों पर हुए अत्याचार को सहने के बाद वह एक दिन क्रांति की मिसाल बनकर जागरूक होते हैं और निर्बल सबला का विरोध कर विद्रोही बनते हैं। जहीर कुरैशी कहते हैं कि-

"तमाम जुल्मों को सहने के बाद होता है,
निबल का जब भी सबल से विवाद होता है।"[9]

इस तरह गजलकार जहीर कुरैशी ने आम जनता के प्रति सहानुभूति दिखाते हुए उसका नग्न यथार्थ प्रस्तुत किया है। प्रगतिशील चेतना मनुष्यों को विकास की राह पर ले जाती है। परंतु मनुष्य प्रगतिशीलता से युक्त अपने विकास और उन्नति में इतना धुंद हो जाता है कि उसे अपने नैतिक मूल्यों का ध्यान नहीं रहता आधुनिकता के दौर में औद्योगीकरण बढ़ रहा है। आज हर युवा अपनी उन्नति की राह खोजने के लिए शहर की ओर भाग रहा है और उसके बूढ़े मां-बाप सुख की आशा नैनों में लिए शहर गए बेटे की ताक में बैठे हैं। जिसे शहर के रीति-रिवाज ने कैद कर रखा है। इसी शहरी संस्कृति के मूल्यों को अभिव्यक्ति देते हुए गजलकार उदय प्रताप सिंह अपनी गजल 'पुरानी कश्ती को पार लेकर' में कहते हैं कि -

"उदास चेहरे की झुरियों को बरसाती आंखें सुन रही थी,
हमारे सपनों को सच बनाने जिगर का टुकड़ा शहर गया है।"[10]

उपर्युक्त गजल के शेर में गजलकार ने शहर गए अपने बेटे की राह देखते माता-पिता की त्रासदी को मार्मिकता से बया किया है। बढ़ते शहरीकरण ने और मनुष्य के स्वार्थ ने मनुष्य को खोखला बनाया है। वह अपने रिश्ते-नाते और मानवता को भूलकर एहसानफरामोश बन गया है। वही गांव में भी अभी तक बची मानवता और रिश्तों की अहमियत प्रकट करते हुए गजल कर उदय प्रताप सिंह कहते हैं कि-

"शहर में मां-बाप भी लगते मुसीबत की तरह,
आज भी मेहमान हैं मेहमान गांव की तरफ।"[11]

सरकारी अनुदान और योजनाओं का यथार्थ अपनी गजलों में प्रस्तुत कर उदय प्रताप सिंह आम जनता को जागना चाहते हैं। वह सरकार की भ्रष्ट नीतियों को उजागर करते हुए अपनी ग़ज़ल 'कुछ कह रहे हैं खेत' में लिखते हैं कि -

"क्या पढ़ाई, क्या सिंचाई, क्या दवाई के लिए,

सिर्फ कागज पर गए अनुदान गांव की तरफ।"[12]

गोपालदास 'नीरज' आधुनिक हिंदी गजल के प्रमुख हस्ताक्षर हैं। जिन्होंने 'दर्द दिया है', 'असावरी', 'नीरज की पांती', 'बादलों से सलाम लेता हूं' आदि ग़ज़ल संग्रहों का निर्माण किया है। जो प्रगतिशीलता से युक्त है। उनकी गजलों में प्रेम, जीवन का यथार्थ, मानवीय संवेदना, सामाजिक सच्चाई, आशावादी स्वर, सामाजिक चेतना आदि को अभिव्यक्ति मिली है। वर्तमान युग में जातिवाद, धर्मावाद, धार्मिक कट्टरता ने आम जनता को बेहाल कर दिया है। सभी ओर जाति और धर्म के नाम पर अराजकता फैली है। जिस पर टिप्पणी करते हुए गोपालदास 'नीरज' अपनी ग़ज़ल 'अब तो मज़हब कोई' में कहते हैं-

"अब तो मज़हब कोई ऐसा भी चलाया जाए,
जिसमें इंसान को इंसान बनाया जाए।"[13]

इस तरह नीरज मानवता को भूले मानव को मानवता का रास्ता दिखाना चाहते हैं। जिससे सही रूप में मानव प्रगति कर सकता है और अपने जीवन को सुख और अमन से जी सकता है।

'नीरज' ने अपनी गजलों में अपने समय की सामाजिक और राजनीतिक यथार्थ को बड़ी सूक्ष्मता से उतारा है। जिसमें वर्तमान ढोंगी साधु-संतों की संतों का गंदा आचरण और मनुष्य की दोहरेपन को प्रस्तुत किया है। वह कहते हैं –

"लुटेरे डाकू भी अपने पे नाज़ करने लगे,
उन्होंने आज जो संतों का आचरण देखा।"[14]

नीरज हमारे देश की बदलती परिस्थितियों पर गौर करते हुए अत्यंत संवेदनशील होकर कहते हैं -

"मैंने सोचा कि मेरे देश की हालत क्या है,
एक कातिल से तभी मेरी मुलाकात हुई।"[15]

अतः उपर्युक्त गजल के शेर में नीरज कहना चाहते हैं कि वर्तमान में हमारे देश की हालत काफी खराब है। सभी ओर हिंसा भड़की है। सभी ओर गुंडे-मवाली खुलेआम घूम रहे हैं और कत्लेआम कर रहे हैं। ऐसी स्थिति से परिचित कराते हुए हमें इन परिस्थितियों से जागृत होने का संदेश देते हैं।

वर्तमान राजनीति और माफिया की मिली-बगत से देश के हालात काफी खराब हो चुके हैं। अपने देश में हिंसा का रूप किस हद तक बढ़ गया है। इसे अत्यंत सूक्ष्मता से चित्रित करनेवाले आधुनिक काल के महत्वपूर्ण गजलकर हैं - चिरंजीत। चिरंजीत अपनी गजलों में बढ़ती हिंसा और भ्रष्ट राजनीति पर प्रहार करते हैं। वह अपनी ग़ज़ल 'यह अंधेरा' के शेरों में लिखते हैं -

"बांटता बारूद है जो रात को
वह कबूतर शांति के छठवां रहा
सब लुटेरे एक मिलकर हो गए
घर कलह से टूट-बंटता जा रहा।"[16]

वर्तमान राजनीतिक भ्रष्टता, उसके नैतिक मूल्य को लेकर चिरंजीत ने राजनीति के गिरते मापदंड पर कठोर प्रहार किया है। राजनीतिक यथार्थ अपनी गजलों में प्रस्तुत करते हुए गजलकार ने जाति-धर्म पर हो रही हिंसा, हत्या और गोला-बारूद के दम पर हो रही वोट चोरी, पैसों के बल पर वोट का सौदा आदि विभिन्न विषयों को अपनी गजलों के माध्यम से यथार्थ रूप से अभिव्यक्ति दी है। 'चरवाहे के कुशल हाथ में' चिरंजीत की काफी प्रसिद्ध गजल है। जिसमें वह वर्तमान राजनीति का खोखलापन और ठगेबाजी तथा मूल्यहीनता का चित्रण करते हैं। अपनी इस ग़ज़ल के शेरों में वह लिखते हैं -

"नाम राम का और खुद का, लेकर हत्या होती हैं,
मंदिर-मस्जिद जला-जलाकर सेंक रहा वह रोटी हैं।
बम चाकू त्रिशूल और किरपान लिए वहां नाच रहा
लाशों की चौसर पर चलती वोंटों की हर गोटी है।"[17]

इस तरह ज्ञान प्रकाश, विवेक, त्रिलोचन शास्त्री, देवेंद्र मांझी, बालस्वरूप साही, मासूम गाजियाबादी, रामअवतार त्यागी, निदा फ़ाज़ली, शहरयार आदि गजलकारों ने अपनी गजलों में प्रगतिशीलता को बड़ी सहजता से चित्रित करने का प्रयास किया है। जिससे आम जनता की समस्याओं को और भावनाओं को सूक्ष्मता से अभिव्यक्ति मिली है।

 ISSN : 2581-8848

निष्कर्ष

निष्कर्ष स्वरूप से कहा जा सकता है कि आधुनिक काल के गजलकारों ने अपनी गजलों को परंपरागत विषय के दायरे से बाहर निकालकर आम आदमी के जीवन की त्रासदी एवं परिस्थितियों के साथ जोड़ा है।जो प्रगतिशीलता का बड़ा उदाहरण कहा जा सकता है। आधुनिक युग के हिंदी गजलकारों ने अपनी रचनाओं में प्रगतिशीलता को अत्यंत गहराई और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। जिसमें मनुष्य जीवन का यथार्थ, शोषितों के प्रति सहानुभूति और शोषकों के प्रति विद्रोह की भावना, परिवर्तन की आशा, क्रांति और विद्रोही की भावना ,सामाजिक एवं राजनीतिक यथार्थ, मानवीय मूल्य, मानवतावाद आदि को मार्मिकता से अभिव्यक्ति मिली है। जिससे मनुष्य यथार्थ से परिचित होता है। गलत रूढ़ियों और परंपराओं का विरोध कर अपने जीवन में प्रगति के मार्ग पर चल सकता है। यह प्रगतिशीलता से युक्त गजलें आम आदमी को चेतनशील बनाकर जीवन से संघर्ष कर लड़ना सिखाती हैं। जिससे मनुष्य मानवता को अपनाकर अपने जीवन में आनंद प्राप्त कर सकता है। अतः प्रगतिशीलता से युक्त गजलें मनुष्य जीवन में आनंदरूपी प्रकाश फैलाकर उन्हें जीवन संघर्ष के लिए प्रेरित करती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. तमाशा मेरे आगे - निदा फ़ाज़ली, पेज नंबर, 45
2. तमाशा मेरे आगे - निदा फ़ाज़ली, पेज नंबर, 42
3. नया हिंदी काव्य - डॉ. शिवकुमार मिश्र, पेज नंबर, 150
4. दुष्यंत कुमार एक विद्रोही गजलकार - डॉ. एन. सिंह, मधुमति, पेज नंबर, 35
5. साये में धूप - दुष्यंत कुमार, पेज नंबर - 13
6. साये में धूप - दुष्यंत कुमार, पेज नंबर - 57
7. भीड़ से सबसे अलग - जहीर कुरैशी, पेज नंबर,15
8. समंदर बयान आया - जहीर कुरैशी, पेज नंबर, 11
9. हिंदी गजल शतक - संपा. शेरजंग गर्ग, पेज नंबर, 34
10. हिंदी गजल शतक - संपा. शेरजंग गर्ग, पेज नंबर, 20
11. हिंदी गजल शतक - संपा. शेरजंग गर्ग, पेज नंबर, 17
12. हिंदी गजल शतक - संपा. शेरजंग गर्ग, पेज नंबर, 17
13. हिंदी गजल शतक - संपा. शेरजंग गर्ग, पेज नंबर, 25
14. हिंदी गजल शतक - संपा. शेरजंग गर्ग, पेज नंबर, 28
15. हिंदी गजल शतक - संपा. शेरजंग गर्ग, पेज नंबर, 27
16. हिंदी गजल शतक - संपा. शेरजंग गर्ग, पेज नंबर, 29
17. हिंदी गजल शतक - संपा. शेरजंग गर्ग, पेज नंबर, 32

*****

हिंदी गीत–ग़ज़ल में प्रगतिशील चेतना (एक समालोचनात्मक अध्ययन)

डॉ प्राची अनर्थ
सहायक प्राध्यापक शिक्षा विभाग
पंडित हरिशंकर शुक्ल स्मृति महाविद्यालय
रायपुर छत्तीसगढ़

सारांश:

हिंदी साहित्य में गीत और ग़ज़ल ऐसी काव्य विधाएँ हैं जिन्होंने जनसामान्य की संवेदनाओं, सामाजिक अनुभवों और ऐतिहासिक यथार्थ को सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की है। बीसवीं शताब्दी में विकसित प्रगतिशील साहित्य आंदोलन ने साहित्य को सामाजिक उत्तरदायित्व से जोड़ा, जिसके परिणामस्वरूप कविता की पारंपरिक सीमाएँ विस्तृत हुईं इस चेतना का प्रभाव हिंदी गीत और ग़ज़ल पर भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य हिंदी गीत–ग़ज़ल में निहित प्रगतिशील चेतना का विश्लेषण करना है। इस अध्ययन में यह प्रतिपादित किया गया है कि किस प्रकार गीत और ग़ज़ल प्रेम, सौंदर्य और वैयक्तिक अनुभूति से आगे बढ़कर सामाजिक विषमता, वर्ग-संघर्ष, शोषण-विरोध, स्त्री-चेतना तथा लोकतांत्रिक मूल्यों की अभिव्यक्ति का माध्यम बने। साहिर लुधियानवी, कैफ़ी आज़मी, मजरूह सुल्तानपुरी, शैलेन्द्र और दुष्यंत कुमार जैसे रचनाकारों के कृतित्व के आलोक में यह शोध सिद्ध करता है कि हिंदी गीत–ग़ज़ल प्रगतिशील चेतना के प्रभावी संवाहक रहे हैं।

बीज शब्द: हिंदी गीत, हिंदी ग़ज़ल, प्रगतिशील चेतना, सामाजिक यथार्थ, वर्ग-संघर्ष, स्त्री-विमर्श, जनचेतना।

प्रस्तावना

हिंदी साहित्य की परंपरा में गीत और ग़ज़ल का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। गीत भारतीय लोकसंस्कृति, भावनात्मकता और सामूहिक अनुभूति से जुड़ा हुआ है, जबकि ग़ज़ल मूलतः उर्दू काव्य परंपरा की विधा होते हुए भी हिंदी साहित्य में व्यापक रूप से स्वीकार की गई है। प्रारंभिक काल में इन विधाओं का विषय-क्षेत्र प्रेम, विरह, सौंदर्य और आध्यात्मिक अनुभूति तक सीमित था, किंतु सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तनों के साथ-साथ इनका स्वरूप भी परिवर्तित हुआ।

स्वतंत्रता आंदोलन, औपनिवेशिक शासन की शोषणकारी नीतियाँ, औद्योगीकरण, नगरीकरण और सामाजिक विषमता ने साहित्यकारों को समाज की वास्तविक समस्याओं की ओर उन्मुख किया। परिणामस्वरूप साहित्य में प्रगतिशील चेतना का उदय हुआ। यह चेतना गीत और ग़ज़ल जैसी लोकप्रिय विधाओं के माध्यम से जनमानस तक पहुँची। प्रस्तुत शोध-पत्र इसी संदर्भ में हिंदी गीत-ग़ज़ल की प्रगतिशील भूमिका का सम्यक अध्ययन प्रस्तुत करता है।

अध्ययन के उद्देश्य

इस शोध-अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1. हिंदी गीत और ग़ज़ल की परंपरा में प्रगतिशील चेतना की अवधारणा को स्पष्ट करना।
2. हिंदी गीतों में सामाजिक यथार्थ और जनचेतना के स्वरूप का विश्लेषण करना।
3. हिंदी ग़ज़ल में विषयगत परिवर्तन और प्रगतिशील दृष्टिकोण का अध्ययन करना।
4. प्रमुख गीतकारों एवं ग़ज़लकारों के योगदान का मूल्यांकन करना।
5. यह प्रतिपादित करना कि हिंदी गीत–ग़ज़ल सामाजिक परिवर्तन के प्रभावी माध्यम रहे हैं।

शोध-प्रणाली

प्रस्तुत शोध-पत्र में वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध-प्रणाली का प्रयोग किया गया है। अध्ययन के लिए प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है। प्राथमिक स्रोतों के अंतर्गत चयनित गीतों और ग़ज़लों का पाठ-विश्लेषण किया गया है, जबकि द्वितीयक स्रोतों में आलोचनात्मक ग्रंथों, शोध-पत्रों और संदर्भ पुस्तकों का सहारा लिया गया है। सामग्री का विश्लेषण सामाजिक-ऐतिहासिक संदर्भ में किया गया है।

साहित्य समीक्षा

हिंदी साहित्य में प्रगतिशील चेतना पर अनेक विद्वानों ने विचार किया है। रामविलास शर्मा ने प्रगतिशील साहित्य को सामाजिक यथार्थ से जोड़ते हुए उसकी वैचारिक भूमिका को रेखांकित किया है। नामवर सिंह ने आधुनिक कविता के संदर्भ में प्रगतिशील मूल्यों की विवेचना की है। दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों पर आधारित आलोचनात्मक ग्रंथों में उन्हें जनचेतना का कवि माना

गया है। हालांकि गीत और ग़ज़ल में प्रगतिशील चेतना का समग्र तुलनात्मक अध्ययन अपेक्षाकृत कम हुआ है, जिसे यह शोध-पत्र पूर्ण करने का प्रयास करता है।

प्रगतिशील चेतना : वैचारिक पृष्ठभूमि

प्रगतिशील चेतना का मूल आधार सामाजिक समानता, आर्थिक न्याय और मानवीय गरिमा है। साहित्य में इसका उद्देश्य समाज की विसंगतियों को उजागर कर परिवर्तन की चेतना उत्पन्न करना है। प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना (1936) ने हिंदी साहित्य को नई दिशा प्रदान की। गीत और ग़ज़ल जैसी विधाओं ने इस चेतना को जनस्तर तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

हिंदी गीत में प्रगतिशील चेतना

1 सामाजिक विषमता और शोषण

आधुनिक हिंदी गीतों में सामाजिक असमानता और शोषण के प्रति तीव्र संवेदना दिखाई देती है। साहिर लुधियानवी के गीत युद्ध, गरीबी और सत्ता की अमानवीयता पर तीखा प्रहार करते हैं। उनके गीतों में मानवतावादी दृष्टि प्रमुख है।

2 श्रमिक और किसान जीवन

शैलेन्द्र के गीत श्रमिक और किसान जीवन के यथार्थ को सहज भाषा में प्रस्तुत करते हैं। इनमें संघर्ष के साथ-साथ आशा और विश्वास का भाव भी विद्यमान है, जो प्रगतिशील चेतना का सकारात्मक पक्ष है।

स्त्री चेतना

कैफ़ी आज़मी के गीतों में स्त्री की सामाजिक स्थिति, उसके अधिकार और आत्मसम्मान का प्रश्न प्रमुखता से उठाया गया है। यह दृष्टि उन्हें प्रगतिशील गीतकार के रूप में प्रतिष्ठित करती है।

हिंदी ग़ज़ल में प्रगतिशील चेतना

विषयगत विस्तार

आधुनिक हिंदी ग़ज़ल ने पारंपरिक प्रेम-केन्द्रित दृष्टि से आगे बढ़कर सामाजिक और राजनीतिक यथार्थ को अपनाया। इससे ग़ज़ल का दायरा विस्तृत हुआ।

दुष्यंत कुमार की ग़ज़लें

दुष्यंत कुमार की ग़ज़लें लोकतांत्रिक चेतना, जनआक्रोश और व्यवस्था-विरोध का सशक्त स्वर हैं। उनकी ग़ज़लों में आम आदमी की पीड़ा और असंतोष मुखर रूप में व्यक्त हुआ है।

समकालीन संदर्भ

समकालीन हिंदी ग़ज़ल में भी प्रगतिशील चेतना जीवंत है। सत्ता, भ्रष्टाचार और सामाजिक अन्याय के विरुद्ध ग़ज़ल आज भी प्रभावी अभिव्यक्ति का माध्यम बनी हुई है।

भाषा और शिल्प

प्रगतिशील गीत-ग़ज़ल की भाषा सरल, प्रतीकात्मक और जनसामान्य के अनुकूल होती है। शिल्प की दृष्टि से ये रचनाएँ परंपरा और आधुनिकता का संतुलन प्रस्तुत करती हैं, जिससे इनकी संप्रेषणीयता बढ़ जाती है।

निष्कर्ष

"गीत बने आवाज़ जन-मन की, ग़ज़ल ने सच का दीप जलाया,
शोषण, पीड़ा, भूख और अन्याय पर शब्दों ने प्रश्न उठाया।
प्रेम से आगे बढ़कर कविता ने समाज को दर्पण दिखलाया,
प्रगतिशील चेतना ने गीत–ग़ज़ल को परिवर्तन का स्वर बनाया।"

इस शोध-अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि हिंदी गीत और ग़ज़ल में प्रगतिशील चेतना ने साहित्य को सामाजिक उत्तरदायित्व से जोड़ा है। इन विधाओं ने जनचेतना को जाग्रत किया और सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वर्तमान समय में भी हिंदी गीत-ग़ज़ल की प्रगतिशील भूमिका प्रासंगिक बनी हुई है।

संदर्भ:

1. आज़मी, कैफ़ी. आज के बाद. राजकमल प्रकाशन, 2008।
2. कुमार, दुष्यंत. साये में धूप. राजपाल एंड सन्स, 2010।
3. लुधियानवी, साहिर. तल्खियाँ. राजकमल प्रकाशन, 2009।
4. शर्मा, रामविलास. प्रगतिशील साहित्य की भूमिका. राजकमल प्रकाशन, 2007।
5. सिंह, नामवर. कविता के नए प्रतिमान. राजकमल प्रकाशन, 2011।
6. शुक्ल, रामचंद्र. हिंदी साहित्य का इतिहास. नागरी प्रचारिणी सभा, 2006।
7. बच्चन, हरिवंश राय. आधुनिक हिंदी कविता. लोकभारती प्रकाशन, 2005।

*****

ISSN : 2581-8848

हिंदी ग़ज़लों में प्रगतिशील चेतना

डॉ. संतोष वसंत कोळेकर
हिंदी विभाग,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर।
मो.नं. 7606033007,
santoshkolekar079gmail.com

सारांश :

हिंदी ग़ज़लों में प्रगतिशील चेतना का उदय उस दौर में हुआ जब देश में सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिवर्तन तेजी से हो रहे थे। पहले जहाँ ग़ज़ल प्रेम और व्यक्तिगत भावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम थी, वहीं समाज में बढ़ती असमानता, शोषण और संघर्षों ने ग़ज़लकारों को अपनी दिशा बदलने के लिए प्रेरित किया। इस परिवर्तन ने ग़ज़ल को महज़ भावुकता की सीमाओं से निकालकर सामाजिक यथार्थ का सशक्त रूप बना दिया। प्रगतिशील ग़ज़लों में मनुष्य के संघर्षों, मजदूर-किसान की पीड़ा, स्त्री के दमन, दलित समाज की उपेक्षा और राजनीतिक पाखंड जैसे विषय प्रमुखता से उभरने लगे। ग़ज़ल का शेर अब केवल प्रेम की कोमल तरंगों तक सीमित नहीं रहा, बल्कि अन्याय, शोषण और सामाजिक विषमता पर तीखा सवाल भी उठाने लगा। ग़ज़ल की यही बदलती संवेदना उसे आम जन की जिंदगी से जोड़ती है और उसे सामाजिक न्याय की दिशा में सक्रिय भूमिका निभाने का अवसर देती है। भाषा और शैली में भी स्पष्ट बदलाव दिखाई देता है। प्रगतिशील ग़ज़लकारों ने साधारण, बोली-बानी की भाषा का प्रयोग किया, जिससे ग़ज़ल अभिजात्य दायरे से निकलकर जन-सुलभ हो सकी। उर्दू के कठिन शब्दों की जगह हिंदी की सहज अभिव्यक्ति ने ग़ज़ल को व्यापक पाठकवर्ग तक पहुँचाया। इस प्रक्रिया में ग़ज़ल ने अपनी कलात्मकता नहीं खोई, बल्कि उसकी भावनात्मक और विचारात्मक शक्ति और अधिक प्रभावी हुई। आज भी हिंदी ग़ज़लों की प्रगतिशील चेतना अत्यंत महत्वपूर्ण है। आधुनिक समय की समस्याएँ—जैसे बेरोजगारी, सांप्रदायिक तनाव, स्त्री अस्मिता और आर्थिक असमानता—ग़ज़ल को नई संवेदनाएँ देती हैं। ग़ज़ल समाज को आईना दिखाती है और मनुष्य को मानवीय मूल्यों से जोड़ती है। इस तरह प्रगतिशील चेतना ने हिंदी ग़ज़ल को न सिर्फ विचारशील बनाया बल्कि उसे सामाजिक परिवर्तन का सक्रिय माध्यम भी बना दिया।

बीज शब्द : गजल, पर्यावरण, हिंदी ग़ज़ल, प्रगतिशील चेतना, सामाजिक यथार्थ, जन-संवेदना, सामाजिक न्याय, वर्ग-संघर्ष, मजदूर-किसान,

प्रस्तावना:

हिंदी ग़ज़ल सदैव भारतीय साहित्य की संवेदनशील विधाओं में रही है, जो कम शब्दों में गहरे भावों की अभिव्यक्ति का सामर्थ्य रखती है। प्रारंभिक दौर में यह मुख्यतः प्रेम, सौंदर्य और व्यक्तिगत अनुभूतियों की दुनिया में सीमित दिखाई देती थी, परन्तु समाज-जीवन में उभरते संघर्षों ने इसकी दिशा बदल दी। जैसे-जैसे भारतीय समाज में वर्गीय विषमता, राजनीतिक अस्थिरता, स्त्री दमन, गरीबी और उपेक्षित समुदायों के प्रश्न सामने आते गए, ग़ज़ल ने भी अपनी संवेदना का दायरा विस्तृत किया। इसी विस्तार ने उसमें प्रगतिशील चेतना का संचार किया। ग़ज़ल केवल दिल की बात नहीं, बल्कि जमाने के दर्द की आवाज बनने लगी। छोटी-सी भूमि में बड़े सामाजिक यथार्थ को समाहित करना हिंदी ग़ज़ल की विशेषता बन गया। इस प्रगतिशील धारा ने ग़ज़ल को जनजीवन से जोड़कर साहित्य को समाज के परिवर्तनकारी मूल्यों का आधार प्रदान किया। विचार और सौंदर्य—इन दोनों का संतुलन ग़ज़ल को वह स्वर देता है, जो पाठक और समाज दोनों को भीतर से छूता और बदलने की प्रेरणा देता है। इसी रूपांतरण के कारण हिंदी ग़ज़ल आधुनिक काल में न केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति का माध्यम रही, बल्कि सामाजिक चेतना की वाहक भी बन गई।

मुख्य विश्लेषण:

हिंदी ग़ज़ल का संसार शुरुआत से ही भावनाओं, सौंदर्य-बोध, प्रेम, पीड़ा और आत्मीय संवेदनाओं का क्षेत्र रहा है, किंतु बीसवीं शताब्दी में सामाजिक बदलावों के साथ इस विधा में एक नई धारा का प्रवेश हुआ, जिसे आज हम प्रगतिशील चेतना के रूप में पहचानते हैं। ग़ज़ल परंपरागत रूप से उर्दू की विरासत मानी जाती रही, पर भाषा के संसार में सीमाएँ कभी स्थायी नहीं रहतीं। जब हिंदी साहित्य में जन-जागरण, सामाजिक संघर्ष और यथार्थवादी दृष्टि प्राथमिक बनी, तो ग़ज़ल—जो पहले विरह-विलाप या श्रृंगार की कोमल भावनाओं तक सीमित मानी जाती थी—धीरे-धीरे सामाजिक प्रश्नों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बन गई। यह परिवर्तन अचानक नहीं आया, बल्कि समय, समाज और साहित्य की परस्पर क्रिया से उपजा। मजदूर आंदोलनों, किसान संघर्षों, उपनिवेशवाद के खिलाफ चेतना और लोकतांत्रिक मूल्यों ने साहित्य के हर रूप को प्रभावित किया। ग़ज़ल भी

इससे अछूती नहीं रही। वह पहले सिर्फ हृदय की बेचैनी कहती थी, अब वह जन-मन की बेचैनी कहने लगी। डॉ विवेक श्रीवास्तव के अनुसार, "हिंदी ग़ज़ल में प्रगतिशील चेतना का उदय इस बात का संकेत था कि साहित्यकार अपने समय के प्रति सजग हो चुका है। प्रेम और सौंदर्य को केंद्र में रखने वाली भावभूमि अब सामाजिक यथार्थ की कठोर जमीन पर उतर रही थी। यह वह समय था जब व्यवस्था से असहमति सिर्फ राजनीतिक मंचों पर नहीं, बल्कि साहित्य की धड़कनों में भी दर्ज होने लगी थी।"[1] ग़ज़ल का शेर जो पहले निजी अनुभवों की धुंधली रोशनी में चमकता था, अब समाज की सामूहिक पीड़ा का उजाला बनने लगा। भाषा की संवेदनशीलता और ग़ज़ल की लयात्मकता ने इसे इतना सक्षम बनाया कि वह आम आदमी की आवाज बन सके। यह आवाज कभी धीमी कराह थी, कभी तड़पती चीख थी, कभी प्रतिरोध का नारा थी, तो कभी परिवर्तन का सपना।

हिंदी ग़ज़ल की यह प्रगतिशील यात्रा मूलतः मध्यवर्गीय समाज के भीतर से उठी। यह वही समाज था जो आधुनिकता और परंपरा के द्वंद्व में फँसा था, परंतु नई चेतना को स्वीकारने के लिए व्याकुल भी था। औद्योगिकरण, वर्ग-विभाजन, शोषण, बेरोजगारी और राजनीतिक भ्रम की परिस्थितियों ने साहित्यकारों को नए विषय दिए। इन विषयों को प्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुत करने के लिए ग़ज़ल की छोटी, तीक्ष्ण और काव्यात्मक संरचना उपयुक्त सिद्ध हुई। शेर का सौंदर्य उसकी संक्षिप्तता में ही छिपा है। यही संक्षिप्तता उसे सारगर्भित और प्रहारक बनाती है। प्रगतिशील विचारधारा के लिए यह अत्यंत अनुकूल था, क्योंकि बदलाव की भाषा अक्सर तीखी, सटीक और स्पष्ट होती है। हिंदी ग़ज़ल में प्रगतिशील चेतना केवल मजदूर-किसान के संघर्ष का बयान भर नहीं है। यह मनुष्य की गरिमा, समानता और स्वतंत्रता की आकांक्षा से उपजी व्यापक मानवीय संवेदना है। डॉ अलका यादव के अनुसार, "प्रगतिशीलता सिर्फ विद्रोह नहीं, बल्कि उम्मीद भी है—और ग़ज़ल उम्मीद की यह लय बड़ी खूबसूरती से गुनगुना सकती है।"[2] जब साहित्यकारों ने समाज की टूटती हुई संरचनाओं, विडंबनाओं और अन्यायों को देखा, तो उन्होंने ग़ज़ल से प्रेम की जगह छीनकर उसे संघर्ष के निकट बैठा दिया। अब वह महबूब के रूठने की बात नहीं करती थी, बल्कि वेतन न मिलने से परेशान मजदूर के रोते घर की पीड़ा कहती थी। उसकी तान अब मयखाने की शराब पर नहीं, बल्कि खेत में पसीना बहाते किसानों की मेहनत पर टिक गई थी।

प्रगतिशील ग़ज़लों की भाषा का स्वर भी बदलता गया। वह अब अधिक बोलचाल की, सरल और जन-सुलभ हो गई। पारंपरिक उर्दू ग़ज़ल में प्रयुक्त फारसी लहजा हिंदी संस्करण में सहज-सरल रूप लेकर आया, जिससे समाज के साधारण पाठक भी ग़ज़ल की बारीकियों से जुड़ सके। यही लोकतांत्रिक परिवर्तन इसकी सबसे बड़ी पहचान है—ग़ज़ल अब जनता की कविता बन रही थी। इस परिवर्तन में अनेक कवियों का योगदान रहा, जिन्होंने जीवनानुभवों को ग़ज़ल की सूक्ष्म संरचना में पिरोकर उसे सामाजिक यथार्थ की धार दी। वे जानते थे कि ग़ज़ल की खूबसूरती उसकी कसावट में है, इसलिए उसमें सामाजिक विषयों का प्रवेश सहज, स्वाभाविक और कलात्मक ढंग से होना चाहिए—न कि घोषणा-पत्र की तरह। इसी संतुलन ने हिंदी ग़ज़ल को प्रगतिशील आंदोलन के भीतर विशेष स्थान दिया। इस दौर में लिखी गई ग़ज़लों में एक ओर व्यवस्था की आलोचना दिखाई देती है, तो दूसरी ओर मानव-मन की टूटन भी। प्रगतिशील चेतना केवल बाहरी संसार का चित्रण नहीं करती, बल्कि मनुष्य की आत्मा को झकझोरने वाले प्रश्न भी उठाती है। बेरोजगार युवक की निराशा, गरीब माँ की लाचारी, दलित स्त्री की पीड़ा, विस्थापित आदिवासी की पुकार—ये सब विषय ग़ज़ल के नए आयाम बन जाते हैं। एक छोटा-सा शेर समूची व्यवस्था पर सवाल खड़ा कर देता है। उसकी दो पंक्तियाँ कभी अदालत की गवाही बन जाती हैं, कभी सड़क पर उतरे जनसमूह की आवाज। यह परिवर्तन साहित्यिक और सामाजिक दोनों स्तरों पर महत्वपूर्ण था। हिंदी ग़ज़लों में प्रगतिशील चेतना के पीछे एक मनोवैज्ञानिक कारण भी था। मनुष्य का हृदय प्रेम, वियोग और आत्मीय भावनाओं के साथ-साथ न्याय और समानता की इच्छा से भी भरा होता है। ग़ज़ल प्राचीनकाल से इस भाव-विश्व को अभिव्यक्त करती आई है, परंतु जब युग बदला और सामाजिक-राजनीतिक संकट गहराने लगे, तो मनुष्य का आंतरिक जगत भी बदलने लगा। कवि अब व्यक्तिगत पीड़ा को व्यापक सामाजिक पीड़ा से जोड़कर देखने लगा। आज मनुष्य का अस्तित्व ना के बराबर है। नज़्म सुभाष इस संदर्भ में लिखते हैं कि,

"आप जिंदा है या मुर्दा मायने रखता नहीं
आपका अस्तित्व केवल कागजी आधार है।"[3]

वह समझने लगा कि अकेले किसी प्रेम-विरह की कथा लिखना पर्याप्त नहीं; ज़रूरी यह है कि समाज के टूटे हुए सत्य को भी कहा जाए। यह सच कहने की साहसिकता ही प्रगतिशील चेतना का मूल है। भाषा और भाव की दृष्टि से भी यह चेतना ग़ज़ल में कई नए प्रयोग लेकर आई। पहले ग़ज़ल का कथ्य अधिक सजावटी, रूपकपूर्ण और प्रतीकात्मक होता था; पर प्रगतिशील कवियों ने भाषा में सादगी, स्पष्टता और आधुनिक अनुभवों का मिश्रण प्रस्तुत किया। उन्होंने शहरों की धूल, गाँवों की गरीबी, मजदूरों के

ISSN : 2581-8848

जख्म, और वर्ग-विरोध की आग को ग़ज़ल के भीतर जगह दी। इससे ग़ज़ल की परंपरागत सुरुचि में एक नया तेवर जुड़ा—जिसे सहज रूप से 'ललकार का सौंदर्य' कहा जा सकता है। यह ललकार आक्रामक नहीं, बल्कि मानवीय करुणा से उपजी आत्मीय पुकार थी। इस पुकार ने ग़ज़ल को 'व्यक्ति' से निकालकर 'समाज' के केंद्र में स्थापित किया।

ग़ज़ल की यह प्रगतिशीलता केवल राजनीतिक या सामाजिक आंदोलनों से प्रेरित नहीं थी; यह सांस्कृतिक चेतना का भी हिस्सा थी। हिंदी समाज में जाति, धर्म, भाषा, लिंग और वर्ग के आधार पर जो भेदभाव थे, वे साहित्य की दृष्टि से चुनौतीपूर्ण विषय थे। ग़ज़ल ने इन जटिल प्रश्नों को सधे हुए ढंग से उठाया, ताकि न तो उसका काव्यत्व कमजोर हो और न ही उसका सामाजिक उद्देश्य। ग़ज़ल जब सामंती मानसिकता की बात करती है, तो वह किसी एक व्यक्ति पर आरोप नहीं लगाती; बल्कि पूरे तंत्र को आईना दिखाती है। जब वह स्त्री की पीड़ा कहती है, तो केवल करुणा नहीं जगाती, बल्कि न्याय की मांग भी करती है। यही उसका प्रगतिशील स्वर है—वह रुदन को प्रतिरोध में, और प्रतिरोध को उम्मीद में बदलती है। प्रगतिशील ग़ज़ल की एक बड़ी विशेषता यह है कि वह परिवर्तन का सपना रचती है। वह सिर्फ वर्तमान की विसंगतियों को नहीं दिखाती, बल्कि भविष्य की संभावना भी गढ़ती है। उसकी कल्पना में एक ऐसी दुनिया है जहाँ मनुष्य मनुष्य से बराबरी का व्यवहार करता है; जहाँ श्रम को सम्मान मिलता है; जहाँ धर्म और जाति के नाम पर नफरत नहीं फैलती; जहाँ स्त्री को वस्तु की तरह नहीं देखा जाता। ग़ज़ल का यह स्वप्न गहरी मानवीय संवेदनशीलता का प्रतीक है। इस संदर्भ में विनोद निर्भय लिखते हैं कि,

"दिलों को जोड़कर नफरत मिटाने की जरूरत है,
नया हो या पुराना गम भुलाने की जरूरत है।"[4]

साहित्य का यही काम है—मानवता को उसके श्रेष्ठ रूप में देखने की प्रेरणा देना। इस दृष्टि से हिंदी ग़ज़लों में प्रगतिशील चेतना न केवल साहित्यिक आंदोलन है, बल्कि सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया का एक अभिन्न हिस्सा है। हिंदी ग़ज़लों पर प्रगतिशील विचारधारा का प्रभाव समय के साथ और भी मजबूत होता गया। चाहे वह स्वतंत्रता-पूर्व संघर्ष का दौर हो या स्वतंत्रता के बाद निराशा, भ्रष्टाचार और असमानता की नई परतें—हर युग में ग़ज़ल ने अपनी भूमिका निभाई। वह कभी चेतावनी की घंटी बनी, कभी जन-आक्रोश का स्वर, कभी चेतना का दीप। सामाजिक गिरावट, टूटते मूल्य, राजनीतिक पाखंड और आर्थिक विषमता—इन सबकी परख हिंदी ग़ज़ल में अत्यंत सूक्ष्म ढंग से मिलती है। यह ग़ज़ल नकारात्मकता का चित्रण नहीं करती, बल्कि उसके भीतर छिपी मानवीय जिद को सामने लाती है—वह जिद जो कहती है कि अँधेरा चाहे कितना भी गहरा हो, हर सुबह की शुरुआत एक किरण से होती है।

ग़ज़ल की प्रगतिशीलता को समझने के लिए यह जानना भी जरूरी है कि यह आंदोलन साहित्य में समानांतर रूप से उभरते अन्य विमर्शों—स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श और सांस्कृतिक पहचान के प्रश्नों—से गहरा संबंध रखता है। यह ग़ज़ल इन सब विमर्शों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से छूती है। दलित पीड़ा का वर्णन जब ग़ज़ल के भीतर आता है, तो वह केवल शोषण का इतिहास नहीं बनता, बल्कि आत्मसम्मान की लड़ाई बन जाता है। स्त्री की आवाज जब ग़ज़ल में प्रवेश पाती है, तो वह न केवल निजी संघर्ष की कथा कहती है, बल्कि पितृसत्ता की संरचनाओं को भी सवालों के घेरे में लाती है। यह बहुस्तरीयता हिंदी ग़ज़ल को विशिष्ट बनाती है। ग़ज़ल की प्रगतिशील चेतना साहित्यिक कौशल की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। उसने छंद, लय और तुकांत के पारंपरिक ढाँचों के भीतर रहते हुए नए प्रयोग किए। कई कवियों ने गैर-रोमांटिक और कठोर विषयों को भी ग़ज़ल की कोमल संरचना में इस प्रकार पिरोया कि उसकी सौंदर्य-गंभीरता बनी रही। यह अपेक्षाकृत कठिन कार्य था, क्योंकि ग़ज़ल की भावभूमि परंपरागत रूप से सौम्य और शिष्ट समझी जाती थी। लेकिन प्रगतिशील कवियों ने सिद्ध किया कि ग़ज़ल न केवल प्रेम का गीत है, बल्कि संघर्ष का भी संगीत बन सकती है। उन्होंने शिल्प की परंपरा को तोड़े बिना विषय का विस्तार किया, जो हिंदी ग़ज़ल इतिहास की अद्वितीय उपलब्धि है। आज जब हम हिंदी ग़ज़लों में प्रगतिशील चेतना की बात करते हैं, तो यह सिर्फ इतिहास का वर्णन नहीं, बल्कि वर्तमान का सत्य भी है। आज का समाज भी अनेक संकटों से जूझ रहा है—सामाजिक विभाजन, आर्थिक असमानता, तकनीकी तनाव, वैश्विक राजनीति के प्रभाव और बदलती मानवीय संवेदनाएँ। इन सबके बीच ग़ज़ल की भूमिका पहले से अधिक प्रासंगिक हो गई है। प्रगतिशील गजलकर आम जनता का आक्रोश अभिव्यक्त कर रहे हैं आम जनता की पीड़ा को अभिव्यक्त करते हुए गजल कर नीरज कुमार लिखते हैं कि,

"ऐ सियासत! कभी तेरे आगे
आदमी झुनझुना नहीं होगा।
इश्क पर गौर भी करेंगे हम

भूख जब मसअला नहीं होगा।"[5]

प्रगतिशील सोच अब केवल विचारधारा नहीं, बल्कि लोकतंत्र की बुनियादी आवश्यकता है। ग़ज़ल जब मनुष्य को उसकी मानवीयता की याद दिलाती है, तब वह समाज को बेहतर बनाने की दिशा में पहला कदम उठाती है। यही उसकी शक्ति है।

हिंदी ग़ज़ल में प्रगतिशील चेतना के महत्व को इस दृष्टि से भी समझा जा सकता है कि उसने पाठकों और श्रोताओं के भीतर एक नैतिक और मानवीय दृष्टिकोण विकसित किया। जब कोई शेर सामाजिक अन्याय का दर्द कहता है, तो वह केवल शब्दों की कलात्मकता नहीं होता; वह मन में प्रश्न भी जगाता है। यह प्रश्न सामाजिक परिवर्तन की शुरुआत है। हिंदी ग़ज़ल की यह प्रगतिशीलता न तो किसी एक कवि पर निर्भर है, न किसी एक काल पर। यह निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। समय बदलता रहेगा, समाज नई चुनौतियों का सामना करता रहेगा, और ग़ज़ल अपने संगीत में इन परिवर्तनों को आत्मसात करती रहेगी। संभव है कि भविष्य में प्रगतिशील चेतना के नए रूप सामने आएँ—तकनीकी दुनिया के असमानता प्रश्न, पर्यावरणीय संकट, युद्ध, विस्थापन तथा पहचान के नए संघर्ष—ये सब ग़ज़ल के भीतर नई संवेदनाएँ पैदा करेंगे। आज पर्यावरण ऱ्हास एक बड़ी समस्या बन गई है। पवित्र माननेवाली गंगा नदी की मैली हो रही है। इससे गजलकार चिंतित है। जल संकट पर चिंता व्यक्त करते हुए हस्तीमल हस्ती लिखते हैं कि,

"मैली न होती गंगा तो फिर होता और
हर कोयले ने अपने यहां हाथ धो लिए।"[6]

'क्यों' स्पष्ट है कि ग़ज़ल का मूल मानवीय स्वर कभी नहीं बदलेगा। यह स्वर हमेशा कमजोर का साथ देगा, अन्याय के विरुद्ध खड़ा होगा और उम्मीद की लौ जलाए रखेगा। जब हम हिंदी ग़ज़लों में प्रगतिशील चेतना को समग्रता से देखते हैं, तो पाते हैं कि यह ग़ज़ल के सौंदर्य को कम नहीं करती, बल्कि उसे और अधिक जीवंत बनाती है। भावुकता और संघर्ष का यह संगम ग़ज़ल को साहित्य की सबसे प्रभावी विधाओं में एक बनाता है। वह न तो केवल भावनाओं की कविता है, न केवल विचारों का मंच—वह इन दोनों का ऐसा अद्भुत समन्वय है जिसकी मिसाल बहुत कम विधाओं में मिलती है। प्रेम के साथ संघर्ष और संघर्ष के साथ करुणा—यही वह विशिष्टता है जो हिंदी ग़ज़ल को प्रगतिशील चेतना के केंद्र में स्थापित करती है। अंततः यह कहा जा सकता है कि हिंदी ग़ज़लों में प्रगतिशील चेतना साहित्य की वह धारा है जिसने ग़ज़ल को नई पहचान दी। उसने उसे प्रेम और सौंदर्य के दायरे से निकालकर सामाजिक न्याय, समानता और मानव-गरिमा के बड़े प्रश्नों का कवि बना दिया। उसने ग़ज़ल को सिर्फ एक कलात्मक अभिव्यक्ति नहीं रहने दिया, बल्कि समाज के प्रति जिम्मेदार साहित्य का दर्जा दिया। ग़ज़ल अब महफिलों की शायरी नहीं, बल्कि जनजीवन की पुकार बन गई है। वह उम्मीद की वही चिंगारी है जो अँधेरे समय में भी बुझती नहीं। यही उसकी प्रगतिशील चेतना का सार है।

निष्कर्ष :

हिंदी ग़ज़लों में प्रगतिशील चेतना ने इस विधा को नई ऊँचाइयाँ प्रदान की हैं। जिस ग़ज़ल को कभी केवल प्रेम और सौंदर्य की अभिव्यक्ति का क्षेत्र माना जाता था, वही आज समाज की समस्याओं का आईना बन गई है। मजदूरों के दुख, किसानों की पीड़ा, स्त्रियों के संघर्ष, दलित समाज की व्यथा और राजनीतिक अन्याय जैसे प्रश्न जब ग़ज़ल की पंक्तियों में जगह पाते हैं, तो वह केवल कविता नहीं रहती, बल्कि जागरूकता का माध्यम बन जाती है। इस चेतना ने ग़ज़ल को जन-संवेदना से जोड़ा और उसे सामाजिक परिवर्तन की दिशा में सक्रिय भूमिका निभाने योग्य बनाया। भाषा की सरलता और अभिव्यक्ति की गहराई ने ग़ज़ल को अधिक व्यापक पाठकवर्ग तक पहुँचाया। आज भी आधुनिक चुनौतियों के बीच प्रगतिशील ग़ज़ल समाज को मानवीय मूल्यों की याद दिलाती है और अन्याय के विरुद्ध खड़े होने का साहस देती है। यही इसकी सबसे बड़ी उपलब्धि है कि वह मनोरंजन से आगे बढ़कर समाज की सोच को बदलने वाली साहित्यिक शक्ति के रूप में स्थापित हुई है। हिंदी ग़ज़लों का यह रूप बताता है कि कविता केवल भावनाओं की दुनिया नहीं, बल्कि विचारों और परिवर्तन की आग भी बन सकती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1) डॉ विवेक श्रीवास्तव, हिंदी ग़ज़लों में सामाजिक एवं राजनीतिक भूमिका, डायमंड पब्लिकेशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2021, पृष्ठ क्रमांक 72

2) डॉ अलका यादव, वर्तमान गजलों में सामाजिक चेतना, भावना प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2022, पृष्ठ क्रमांक 137
3) नज़्म सुभाष, अदहन, न्यू वर्ल्ड पब्लिकेशन, नई दिल्ली, वर्ष 2022, पृष्ठ क्रमांक 9
4) अविनाश भारती, अदम्य, श्वेतवर्णा प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2022, पृष्ठ क्रमांक 16
5) वही, पृष्ठ क्रमांक 34
6) हरेराम नेमा, समीप, समकालीन हिंदी गजलकार एक अध्ययन, भावना प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017, पृष्ठ क्रमांक 243

*****

ISSN : 2581-8848

हिंदी गजलों में सामाजिक चेतना

डॉ. शैलजा धोंडिराम गवळी,
गिरिस्थान आर्ट्स अँड कॉमर्स कॉलेज,
महाबलेश्वर, मो. नं. 9511651428
ई मेल : shailasakolekar4@gmail.com

सारांश :

हिंदी ग़ज़लों में सामाजिक चेतना का विकास आधुनिक साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। प्रारंभिक ग़ज़लों में जहाँ प्रेम, विरह और मनोभावों का प्रमुख स्थान था, वहीं समाज में बढ़ती असमानता, संघर्ष, गरीबी, शोषण और राजनीतिक विडंबनाओं ने ग़ज़ल को नई दिशा दी। ग़ज़लकारों ने महसूस किया कि साहित्य का उद्देश्य केवल व्यक्तिगत भावनाओं की अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि समाज की पीड़ा को उजागर करना भी है। इसी भावना से हिंदी ग़ज़ल में सामाजिक चेतना का उदय हुआ। इस चेतना के अंतर्गत ग़ज़लकारों ने मजदूर, किसान, स्त्री, दलित, गरीब और उपेक्षित समुदायों के दुख को अपनी रचनाओं में स्थान दिया। शहरों की बेरुख़ी, गाँवों का विघटन, बेरोजगारी, रिश्तों का टूटना, भ्रष्ट राजनीति और सामाजिक नैतिकता के संकट जैसे मुद्दों ने ग़ज़ल को एक नई संवेदनशीलता दी। ग़ज़लकार ने महसूस किया कि मनुष्य का निजी दुख सामाजिक स्थितियों से अलग नहीं हो सकता। इसलिए ग़ज़ल का स्वर व्यक्तिगत से सामाजिक होता गया। हिंदी ग़ज़लों की सामाजिक चेतना भाषा और शैली में भी दिखाई देती है। सरल हिंदी, बोलचाल की अभिव्यक्ति और समाज से जुड़ी रूपक-प्रतीक शैली ने ग़ज़ल को आम लोगों तक पहुँचाया। आधुनिक जीवन की जटिलताएँ—खालीपन, निजी तनाव, तकनीकी दूरी—भी ग़ज़लों के नए विषय बन गए। ग़ज़ल केवल समस्याओं का चित्रण नहीं करती, बल्कि मानवता, प्रेम, न्याय और समानता जैसे मूल्यों को भी पुष्ट करती है। वह समाज में सुधार और जागरूकता की प्रेरणा देती है। आज हिंदी ग़ज़ल सामाजिक चेतना का सशक्त माध्यम बन चुकी है। यह समाज को आईना दिखाती है और मनुष्य को बेहतर बनने की प्रेरणा देती है। ग़ज़ल अब केवल सौंदर्य की अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि विचार, संघर्ष और परिवर्तन की आवाज़ बन गई है।

बीज शब्द : सामाजिक चेतना, मानवता, अभिव्यक्ति

प्रस्तावना :

हिंदी ग़ज़ल साहित्य की वह विधा है, जो कम शब्दों में गहरी भावनाएँ व्यक्त करने की क्षमता रखती है। प्रारंभिक दौर में यह प्रेम और मनोभावों की अभिव्यक्ति का माध्यम मानी जाती थी, परन्तु समाज में बढ़ते परिवर्तनों ने इसकी दिशा बदल दी। जिस समाज में मनुष्य संघर्ष कर रहा था, उस समाज की पीड़ा और विडंबनाएँ ग़ज़लकारों को मूक नहीं रख सकीं। ग़ज़ल ने व्यक्तिगत अनुभवों से ऊपर उठकर सामूहिक अनुभवों को स्वर देना शुरू किया। यही परिवर्तन हिंदी ग़ज़लों में सामाजिक चेतना का आधार बना। ग़ज़ल की पंक्तियाँ समाज का आईना बन गईं और साहित्य मानवीय संघर्षों का दस्तावेज बनने लगा। सामाजिक चेतना ने हिंदी ग़ज़ल को साहित्य की उन विधाओं में शामिल किया, जो केवल सौंदर्य नहीं, बल्कि यथार्थ को भी अभिव्यक्ति देती हैं।

मुख्य विश्लेषण :

हिंदी ग़ज़ल भारतीय काव्य परंपरा का एक अत्यंत संवेदनशील और प्रभावशाली रूप है। यह अभिव्यक्ति की वह विधा है जो कम शब्दों में बड़े अर्थ समेट लेती है, और जिसे पढ़ते ही मनुष्य के भीतर भावनाओं का समुद्र उमड़ पड़ता है। प्रारंभिक काल में हिंदी ग़ज़ल प्रेम, विरह, सौंदर्य, मनोभावों और व्यक्तिगत अनुभवों तक सीमित समझी जाती थी, परन्तु समय के साथ यह सीमाएँ टूटती चली गईं। समाज में जब-जब परिवर्तन हुआ, ग़ज़ल ने स्वयं को उसी के अनुरूप ढाला और उसी का संदेश फैलाया। इसी क्षेत्र में हिंदी ग़ज़लों में सामाजिक चेतना का उदय अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। आज हिंदी ग़ज़ल केवल प्रेम की टूटती कड़ियों की कहानी नहीं, बल्कि समाज की टूटती मान्यताओं, बदलते मूल्यों, संघर्षों और विडंबनाओं का सशक्त दस्तावेज बन चुकी है। सामाजिक चेतना का अर्थ है समाज के भीतर मौजूद समस्याओं, असमानताओं, अन्याय, संघर्षों एवं विसंगतियों के प्रति जागरूक होना और उन पर विचार प्रस्तुत करना। डॉ विवेक पाठक के अनुसार, "ग़ज़लकार जब अपनी रचना में समाज की पीड़ा, सुख-दुख, वर्गीय संक्रमण, नैतिक टूटन, राजनीतिक दमन, स्त्री के संघर्ष, मजदूर के शोषण, किसान की दुर्बलता, शहरों की बेरुख़ी और गाँवों के विघटन को स्थान देता है, तभी उसे सामाजिक चेतना से पूर्ण माना जाता है।" ग़ज़ल का उद्देश्य केवल सौंदर्य नहीं रहता, बल्कि वह समाज को आईना दिखाने का कार्य भी करती है। यही कारण है कि हिंदी ग़ज़लों में सामाजिक चेतना का प्रवाह साहित्यिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ के रूप में सामने आया।

समय बदलने के साथ समाज की संरचना भी बदलती है। औद्योगिकीकरण, पूँजीवाद, राजनीतिक परिवर्तन, जाति-व्यवस्था के संकट, वैश्वीकरण, सांप्रदायिक तनाव और मानसिक जीवन की जटिलताएँ—इन सभी ने मनुष्यता को प्रभावित किया है। हिंदी ग़ज़ल इन परिवर्तनों की साक्षी रही है। एक ग़ज़लकार तब तक केवल कवि नहीं होता, जब तक वह अपने लोगों के दुख को महसूस न करे। ग़ज़ल की संवेदना मूलत: मानवीय संवेदना है। वह व्यक्ति की अनुभूति से निकलकर समाज की अनुभूति में बदल जाती है। यही परिवर्तन हिंदी ग़ज़लों में सामाजिक चेतना की आधारभूमि तैयार करता है। हिंदी ग़ज़लकारों ने सामाजिक विषमता को अत्यंत संवेदनशीलता से अभिव्यक्त किया है। समाज में धनी और गरीब के बीच बढ़ती खाई एक गंभीर समस्या बन गई है। ग़ज़लकार ने देखा कि मजदूर दिन भर काम करता है, परन्तु उसका श्रम उसे पर्याप्त जीवन नहीं दे पाता। किसान मौसम, कर्ज, राजनीति और बाजार के दोहरे बोझ से जूझता है। शहर के लोग रात-दिन भागदौड़ में रहते हुए रिश्तों और मानवीय जुड़ाव से दूर होते चले जाते हैं। इन परिस्थितियों ने ग़ज़ल को भीतर से प्रभावित किया और ग़ज़लकार की कलम सामाजिक यथार्थ का चित्रण करने लगी। ग़ज़ल में मजदूर की थकान, किसान की बेबसी और आम आदमी की विवशता के संवेदनशील बिंब स्पष्ट दिखाई देने लगे। दो रामनाथ शोधार्थी ऐसे माहौल से चिंतित है, वह इस स्तर पर लेखनी चलते हुए लिखते हैं कि,

"सभी को एक दिन मरना है लेकिन,
सभी करने से पहले मर रहे हैं।"

जब शब्द मनुष्य के दुख का हिस्सा बनते हैं, तभी वे सत्य के सबसे निकट पहुँचते हैं। यह निकटता ही सामाजिक चेतना का आधार है। सामाजिक चेतना केवल आर्थिक स्थितियों पर आधारित नहीं होती, बल्कि यह मनोवैज्ञानिक और नैतिक चेतना भी होती है। हिंदी ग़ज़लों ने जब समाज में नैतिक मूल्यों के विघटन को देखा, तो उन्होंने भी इस पर अपनी प्रतिक्रिया दी। रिश्तों में बनावटीपन, मनुष्यता का ह्रास, विश्वास का टूटना, लोग–लोगों के बीच दूरी, और संवेदनाओं का क्षरण—इन सभी ने ग़ज़ल की आत्मा को झकझोर दिया। ग़ज़ल का सौंदर्य तभी पूर्ण होता है, जब वह जीवन की सच्चाई को अपने भीतर समाहित करती है। इसलिए कई ग़ज़लों में टूटते रिश्तों की त्रासदी केवल व्यक्तिगत दुख नहीं रह गई, बल्कि यह आधुनिक समाज की सामूहिक मानसिकता का बयान बन गई। प्रेम और विरह का स्वर भी सामाजिक स्वर में रूपांतरित होने लगा, क्योंकि मनुष्य का निजी जीवन कभी भी समाज से अलग नहीं होता।

सामाजिक चेतना का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण पक्ष स्त्री चेतना है। समाज में स्त्री को सदैव संघर्ष करना पड़ा है। हिंदी ग़ज़ल ने इन संघर्षों को अनदेखा नहीं किया। स्त्री के प्रति होने वाला भेदभाव, घरेलू हिंसा, सामाजिक पाबंदियाँ, कार्यस्थल पर उत्पीड़न, पितृसत्ता की कठोर दीवारें—ये सभी विषय ग़ज़ल में नए रूप में सामने आए। ग़ज़लकार ने स्त्री को एक वस्तु के रूप में नहीं, बल्कि एक संपूर्ण व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत किया, जिसके सपने, इच्छाएँ, परेशानियाँ और संघर्ष हैं। ग़ज़लों में स्त्री की आवाज़ उतनी ही मुखर हुई जितनी कि पुरुष की। यह परिवर्तन समाज में स्त्री के बदलते स्थान को भी दर्शाता है। ग़ज़लकारों ने यह भी बताया कि समाज तब तक पूर्ण नहीं हो सकता, जब तक स्त्री और पुरुष दोनों समान रूप से सम्मानित न हों। जातिवाद भारतीय समाज की एक पुरानी समस्या है। हिंदी ग़ज़ल ने इसे भी अपनी संवेदनाओं में स्थान दिया। दलित समुदाय के दुख, उपेक्षा, सामाजिक दूरी, भेदभाव और अन्याय से जुड़े अनुभव ग़ज़लों में नए प्रतिमानों के साथ उभरे। ग़ज़लकार ने महसूस किया कि जब समाज का एक बड़ा वर्ग हीनता का शिकार हो, तो साहित्य का दायित्व है कि वह उसके साथ खड़ा हो। कई ग़ज़लों में दलित जीवन की पीड़ा को स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया गया। यह केवल साहित्यिक प्रयोग नहीं था, बल्कि एक मानवीय प्रतिबद्धता थी। विनोद निर्भय नफरत की आग मिटाकर मानवता को अपनाने पर बल देते हैं वह लिखते हैं कि, "दिलों को जोड़कर नफरत मिटाने की जरूरत है, नया हो या पुराना गम भुलाने की जरूरत है।" ग़ज़ल ने बताया कि समाज की समरसता तभी संभव है जब हर व्यक्ति को सम्मान और समान अवसर मिले। राजनीतिक चेतना भी सामाजिक चेतना का अनिवार्य हिस्सा है। हिंदी ग़ज़लकारों ने राजनीतिक भ्रष्टाचार, सत्ता का दुरुपयोग, जनतंत्र की विसंगतियाँ, चुनावी छल, नेताओं की वादाखिलाफी और जनता की उम्मीदों के टूटने पर सीधे तथा निर्भीक रूप से लिखा। ग़ज़ल, जो कभी केवल प्रेम का गीत समझी जाती थी, वही परिवर्तन के स्वर का माध्यम बन गई। जब राजनीति में नैतिकता टूटती है, तब ग़ज़लकार की कलम और तेज़ हो जाती है। वह समाज से प्रश्न पूछती है, उसे चेताती है और उसे जागरूक रहने की सीख देती है। इस प्रकार ग़ज़ल सामाजिक संवाद का हिस्सा बनकर समाज में राजनीतिक प्रबोधन का कार्य करती है।

ग़ज़ल का एक महत्वपूर्ण पहलू उसकी भाषा है। हिंदी ग़ज़लों में सामाजिक चेतना इसलिए भी प्रभावशाली है क्योंकि इसकी भाषा सरल, सहज और सीधे मन को छूने वाली है। पहले ग़ज़ल में उर्दू के कठिन शब्दों का प्रयोग होता था, जिससे उसका पाठक वर्ग सीमित हो जाता था। परन्तु जब हिंदी ग़ज़ल सामाजिक चेतना के साथ आगे बढ़ी, तब उसने भाषा को भी बदल लिया।

ISSN : 2581-8848

सरल हिंदी, बोलचाल के शब्द, लोकजीवन से उठाए गए रूपक और सामाजिक संदर्भ इसके अंग बने। इससे ग़ज़ल व्यापक समाज तक पहुँची और उसका असर कई गुना बढ़ गया। साहित्य जब भाषा के माध्यम से सरल होता है, तभी वह समाज में परिवर्तन का माध्यम बन सकता है। आधुनिक समय में हिंदी ग़ज़ल का स्वर और भी व्यापक हो गया है। तकनीक, वैश्वीकरण, उपभोक्तावाद और सोशल मीडिया के प्रभाव ने मानव जीवन को जटिल बना दिया है। खुशियाँ आभासी हो गई हैं, रिश्ते स्क्रीन पर सीमित हो रहे हैं, और मनुष्य भीतर से खाली होता जा रहा है। हिंदी ग़ज़ल इन नई समस्याओं को भी गहराई से समझती है। खालीपन, अकेलापन, मानसिक तनाव और सामाजिक दूरी आज ग़ज़लों में नए प्रतीकों के रूप में दिखाई देते हैं। ग़ज़ल को पढ़ते हुए यह महसूस होता है कि वह समय के साथ-साथ चल रही है और मनुष्य की बदलती दुनिया को समझने की कोशिश कर रही है। यही ग़ज़ल की प्रासंगिकता है और यही उसकी सामाजिक चेतना का विस्तार।

हिंदी ग़ज़लों की सामाजिक चेतना केवल समस्याओं तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें आशा, संवेदना, प्रेम और मानवीय मूल्यों का भी समावेश है। ग़ज़लकार केवल दुख के वर्णन से संतुष्ट नहीं होता, बल्कि वह समाधान की दिशा भी सुझाता है। समरसता, भाईचारा, मानवता, न्याय, शांति और समानता—ये सभी मूल्य ग़ज़ल की पंक्तियों में समाहित होते हैं। गजलकार सांप्रदायिक हिंसा से चिंतित है वह मानवता की पहल करते हैं। इस संदर्भ में विनोद निर्भय लिखते हैं कि, "धरम के नाम पर यू आशियां हर दिन जलाओ मत, हमें मिलकर नई बस्ती बसाने की जरूरत है।" ग़ज़ल मनुष्य को इस संसार में एक बेहतर इंसान बनने की प्रेरणा देती है। साहित्य का उद्देश्य केवल यथार्थ को दिखाना नहीं होता, बल्कि मनुष्य के भीतर अच्छाई को जगाना भी होता है। हिंदी ग़ज़लों ने यह कार्य अत्यंत संवेदनशीलता और सादगी के साथ किया है। आज हिंदी ग़ज़ल सामाजिक चेतना का वह सशक्त माध्यम बन चुकी है, जो लोगों को विचार करने, स्वयं को समझने और समाज की समस्याओं पर सक्रिय होने के लिए प्रेरित करती है। ग़ज़ल अब केवल कवियों की निजी अनुभूति नहीं, बल्कि समाज के सामूहिक हृदय की धड़कन है। वह जनचेतना की वाहक है, परिवर्तन का स्वर है, और भविष्य की उम्मीद है। ग़ज़ल ने यह साबित कर दिया कि वह जितनी सुरीली है, उतनी ही शक्तिशाली भी है। उसकी कोमलता में भी क्रांति की आग छिपी है और उसकी लय में भी सामाजिक परिवर्तन की धड़कनें सुनाई देती हैं।

निष्कर्ष :

हिंदी ग़ज़लों में सामाजिक चेतना ने इस विधा को एक नई ऊँचाई प्रदान की है। ग़ज़ल अब केवल भावुकता का गीत नहीं, बल्कि समाज की समस्याओं का सशक्त बयान है। इसमें मजदूर, किसान, स्त्री, दलित, गरीब और आधुनिक मनुष्य की बेचैनी के स्वर स्पष्ट सुनाई देते हैं। ग़ज़लकारों ने सामाजिक असमानता, राजनीतिक भ्रष्टाचार, नैतिक पतन, शोषण और आधुनिक जीवन की जटिलताओं पर तीखी प्रतिक्रिया दी। ग़ज़ल की यही बदलती संवेदना उसे समाज से जोड़ती है और उसे परिवर्तन का माध्यम बनाती है। आज हिंदी ग़ज़ल वह ध्वनि बन चुकी है जो मनुष्य को संवेदनशील भी बनाती है और जागरूक भी। यह समाज को विचार करने के लिए प्रेरित करती है और मानवीय मूल्यों को पुनः स्थापित करने में सहायक होती है। इस प्रकार हिंदी ग़ज़लों की सामाजिक चेतना साहित्य और समाज दोनों के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण और प्रेरणादायक सिद्ध होती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1) डॉ विवेक पाठक, समकालीन गजलकारों की भूमिका, डायमंड प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2014, पृष्ठ क्रमांक 117
2) अविनाश भारती, अदम्य, श्वेतवर्णा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2022, पृष्ठ क्रमांक 71
3) वही पृष्ठ क्रमांक 16
4) वही पृष्ठ क्रमांक 16

*****

ISSN : 2581-8848

अदम गोंडवी के गजलों में चित्रित राजनीतिक परिदृश्य

डॉ. प्रकाश राजाराम मुंज
सहयोगी शिक्षक, हिंदी विभाग,
शिवाजी विश्वविद्यालय,
कोल्हापुर। मो. 9552338189
ई-मेल – prakashmunj80@gmail.com

सारांश

हिंदी के प्रसिद्ध गजलकार रामनाथ सिंह उर्फ 'अदम गोंडवी' की गजलें भारतीय लोकतंत्र के उस समय को रेखांकित करती है, जहाँ स्वतंत्रता के बाद सत्ता का चरित्र औपनिवेशिक, भ्रष्ट, अवसरवादी, भोग-विलासी और जनविरोधी रहा है। राजनेताओं के दोहरे चरित्र, सांप्रदायिक राजनीति, विकासात्मक झूठे आँकड़े तथा पूँजीवादी गठजोड़ की सशक्त आलोचना करते हैं। गजलकार राष्ट्रवाद, विकास और प्रशासन इन तीनों के भीतर छिपे पाखंड को बेनकाब कर भारतीय राजनीति के नैतिक पतन को विश्लेषित करते हैं। जनसेवा का दावा करनेवाली सत्ता धीरे-धीरे जनशोषण में रूपांतरित होती दृष्टिगोचर होती है।

प्रस्तुत शोध आलेख इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि अदम गोंडवी उन स्वातंत्र्योत्तर कवियों में विशिष्ट स्थान रखते हैं, जिन्होंने आम जनता के पक्ष में राजनीति के कठमुल्लों की बड़ी निडर आलोचना की है। भारतीय राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार, पाखंड, सत्ता-लोभ और औपनिवेशिक मानसिकता की निरंतरता पर तीखा व्यंग्य प्रस्तुत करती है। उनकी गजलें केवल सत्ता-विरोध का स्वर नहीं, बल्कि लोकतंत्र के भीतर व्याप्त जन-विस्थापन और नैतिक संकट के प्रति जागरूक प्रतिरोध का साहित्यिक रूप हैं। यह शोध पाठ-विश्लेषण पद्धति के माध्यम से अदम गोंडवी की गजलों में निहित राजनीतिक चेतना और प्रतिरोधी स्वर को रेखांकित करता है।

बीजशब्द: अदम गोंडवी, राजनीतिक गजल, सत्ता का नैतिक पतन, जनपक्षधर कविता, भारतीय लोकतंत्र, भ्रष्टाचार

प्रस्तावना

साहित्य, विशेषतः जनपक्षधर काव्य, सत्ता और व्यवस्था के प्रति आलोचनात्मक दृष्टि विकसित करने का सशक्त माध्यम है। यही भूमिका हिंदी गजल परंपरा में दुष्यंत कुमार, धूमिल, साहिर लुधियानवी, कैफी आजमी जैसे रचनाकारों द्वारा निभाई गई है। इसी परंपरा में अदम गोंडवी का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। उत्तर प्रदेश के गोंडा जनपद स्थित आटा परसपुर ग्राम में अदम गोंडवी (22 दिसंबर 1947 – 18 दिसंबर 2011) का जन्म हुआ। उनका मूल नाम रामनाथ सिंह था। यद्यपि उनकी औपचारिक शिक्षा प्राथमिक स्तर तक ही रही, बावजूद इसके उनकी सृजनशील प्रतिभा की व्यापक स्वीकृति ने यह सिद्ध कर दिया कि रचनात्मक चेतना किसी अकादमिक उपाधि की मोहताज नहीं होती। उनके साहित्यिक अवदान के प्रति सम्मान व्यक्त करते हुए जहाँ से उन्होंने प्रारंभिक शिक्षा ली, उसी विद्यालय को 'अदम गोंडवी विद्यालय' के रूप में नामित किया। उन्हें भोपाल के 'दुष्यंत कुमार अलंकरण'(1998), उन्नाव के 'निराला सम्मान'(2000) जैसे कई पुरस्कारों से नवाजा गया है।

अदम गोंडवी के दो गजल संग्रह प्रकाशित हुई हैं। इनमें 'धरती की सतह पर' (अनुज प्रकाशन, नई दिल्ली, 1988) तथा 'समय से मुठभेड़' (वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010) शामिल हैं। इन संग्रहों में भूख, बेकारी, महँगाई, धोखाधड़ी, अन्याय, शोषण, दमन जैसे तमाम विषयों को रेखांकित किया है। साथ ही भारतीय लोकतंत्र की विडंबनाओं, राजनीतिक पाखंड, स्वार्थी और दोहरे चरित्र, भ्रष्टाचार, सांप्रदायिक राजनीति पर बेखौफ प्रहार किए हैं। प्रसिद्ध गजलकार कैफ भोपाली के शब्दों में ''अदम की शायरी का राजनीति से गहरा वास्ता रहा है। रोजमर्रा की घटनाओं को वे राजनीति और आम आदमी के सरोकारों को केंद्र में रखकर ही देखते थे।'' 1 स्पष्ट है कि अदम गोंडवी राजनीति को एक जीवंत सामाजिक यथार्थ के रूप में देखते हैं, जो सीधे आम आदमी के जीवन को प्रभावित करता है।

गजल का शाब्दिक अर्थ ''प्रेमालाप'' 2 है। यह अरबी से फारसी और उर्दू में आई श्रृंगारप्रधान काव्य शैली है। भारत में सूफी कवियों ने भक्तिपरक गजलें लिखी हैं। ''हिंदी कवियों में सर्वप्रथम भारतेंदु हरिश्चंद्र ने गजल लिखने का प्रयास किया। प्रसाद जी की 'भूल' शीर्षक कविता गजल शैली में लिखी गई है। निराला ने भी गजल शैली अपनाई थी।'' 3 आज गजल ने साहित्यिक विधा के रूप में लोकप्रियता हासिल की है। कभी इश्क-मुहब्बत के जज्बात बयां करती हुई गजल अब समाज, सियासत तथा विविध भावनाओं को शब्दों में पिरोती है। राजनीति शब्द की उत्पत्ति मूलतः राज और नीति के संयोजन से हुई है। इसका आशय ''राज्य की वह नीति जिसके अनुसार प्रजा का शासन तथा पालन और अन्य राज्यों से व्यवहार होता है।4'' व्यापक अर्थ में

राजनीति वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा शासन व्यवस्था स्थापित होती है तथा समाज के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक जीवन को दिशा प्रदान करती है।

वर्तमान युग में राजनीति की अवधारणा और उसका व्यवहारिक स्वरूप काफी हद तक परिवर्तित हुआ है। चुनावों में व्यक्तिगत आरोप-प्रत्यारोप, जातिगत टिप्पणियाँ, पारिवारिक स्तर पर कटु बयानबाजी, जाति और संप्रदाय के आधार पर समाज को विभाजित कर साम, दाम, दंड, भेद जैसे माध्यमों से राजनीतिक लाभ अर्जित करने की प्रवृत्ति बढ़ गई है। अब समाज में यह धारणा प्रबल हुई है कि राजनीति में मर्यादा, नैतिकता और उत्तरदायित्व के लिए कोई स्थान शेष नहीं रहा है। राजनीति अब एक नैतिक मूल्यों से रहित अवसरवादी गतिविधि बन गई है। ऐसे माहौल में अदम गोंडवी की गजलें जनजागृति हेतु कारगर साबित होती है।

सांप्रदायिक राजनीति

सांप्रदायिक राजनीति इस विचार का समर्थन करती है कि समान धर्म वाले लोगों के हित समान होते हैं और उनका धर्म अन्य धर्मों से ऊपर होता है। सांप्रदायिक हिंसा धार्मिक नहीं, बल्कि सत्ता-प्रेरित राजनीतिक रणनीति होती है। धर्म यहाँ जनता को विभाजित करने और सत्ता को स्थिर करने का औजार बन जाता है। धर्म और राजनीति के गठजोड़ को अदम गोंडवी गहरी सूझ-बूझ के साथ उजागर करते हैं- "खुदा का वास्ता दे कर किसी का घर जला देना/यह मजहब की वफादारी हकीकत में सियासी है"5 स्पष्ट है कि जब 'खुदा का वास्ता' देकर हिंसा की जाती है, तब वह धार्मिक आस्था नहीं, बल्कि राजनीतिक स्वार्थ का परिणाम है। 'घर जलाना' सांप्रदायिक हिंसा और अल्पसंख्यक उत्पीड़न का प्रतीक है, जबकि 'मजहब की वफादारी' का मुखौटा सत्ता-साधना का औजार बन जाता है। गजलकार यह स्थापित करता है कि धार्मिक उन्माद सत्ता की रणनीतियाँ हैं, जिनके माध्यम से आम जनता को विभाजित और नियंत्रित किया जाता है। राजनीतिक दृष्टि से यह शेर धर्म, सत्ता और वर्ग-संघर्ष के अंतर्संबंधों को समझने का महत्त्वपूर्ण शेर है, जो प्रासंगिक है।

राजनीतिक पाखंड

अदम गोंडवी की गजलें समकालीन समय में पनप रही राजनीति पाखंडों को उजागर करती हैं। सत्ता-तंत्र द्वारा प्रस्तुत विकास के झूठे रिपोर्ट और पूँजीवादी संरचना पर सशक्त प्रहार करती है- *"तुम्हारी फ़ाइलों में गाँव का मौसम गुलाबी है/मगर ये आँकड़ें झूठे हैं ये दावा किताबी है"6* यहाँ 'फ़ाइलों' और 'किताबी दावे' सत्ता की नौकरशाही भाषा के प्रतीक हैं, जबकि 'गाँव का मौसम' वास्तविक जीवन की कठिन परिस्थितियों का संकेत है। सरकार द्वारा जारी झूठे रिपोर्ट जमीनी सच्चाइयों को छुपाने का उपकरण बनी हुई दृष्टिगोचर होती हैं।

अदम जी आगे राष्ट्रवाद के प्रदर्शनात्मक स्वरूप पर गहरा प्रहार करता है- *"ये वन्देमातरम् का गीत गाते हैं सुबह उठकर/मगर बाजार में चीजों का दुगुना दाम कर देंगे।"7* 'वंदेमातरम्' यहाँ भावनात्मक राष्ट्रभक्ति का प्रतीक है, जबकि 'दुगुना दाम' आर्थिक शोषण का। गजलकार स्पष्ट करता है कि सत्ता राष्ट्रवादी नारों का उपयोग जनभावनाओं को भड़काने के लिए करती है, पर नीतियाँ आम जनता को ही सबसे अधिक प्रभावित करती हैं। यह शेर आर्थिक राजनीति और भावनात्मक राष्ट्रवाद के गठजोड़ को उजागर करता है।

लोकतंत्र का बाजारीकरण

अदम गोंडवी स्वतंत्र भारत के शासकों की तुलना औपनिवेशिक शासकों से करते हैं- *"जो 'डलहौजी' न कर पाया वो ये हुक्काम कर देंगे/कमीशन दो तो हिन्दुस्तान को नीलाम कर देंगे।" 8* 'डलहौजी' ब्रिटिश उपनिवेशवादी नीति का प्रतीक है, जबकि 'हुक्काम' स्वतंत्र भारत के शासक-प्रशासक हैं। औपनिवेशिक शोषण और शासकों की मानसिक समानता को रेखांकित किया है। आशय है कि सत्ता-लोभ और कमीशनखोरी ने राष्ट्रीय हितों को बाजारू वस्तु में बदल दिया है। यह शेर राज्य के निजीकरण और राष्ट्र के बाजारीकरण की राजनीतिक आलोचना करता है।

लोकतंत्र के बाजारीकरण को स्पष्ट करता है। संसद का 'नक्शा बदल जाना' इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि धनबल ने जनमत का स्थान ले लिया है। जैसे- *"पैसे से आप चाहें तो सरकार गिरा दें/संसद बदल गई है यहाँ के नखाश में।।"9* गजलकार लोकतांत्रिक संस्थाओं के भीतर जड़ जमाए भ्रष्टाचार की निरंतरता को सामने लाता है- *"सदन में घूस देकर बच गई कुर्सी तो देखोगे/ये अगली योजना में घूसखोरी आम कर देंगे।"10* 'कुर्सी' सत्ता का प्रतीक है और उसका 'घूस देकर बचना' राजनीतिक नैतिकता के पतन का संकेत है। अब भ्रष्टाचार अपवाद नहीं, बल्कि नीति-निर्माण की संरचनात्मक प्रक्रिया बन चुका है।

लोकतंत्र की सर्वोच्च संस्था संसद की अश्लील भाषा लोकतांत्रिक मूल्यों के पतन और राजनीतिक संवाद की गिरती मर्यादा को उजागर करती है। देश की ज्वलंत स्थिति और सत्ताधारी वर्ग की भूमिका पर तीखा व्यंग्य है- *“जल रहा है देश, यह बहला रही है कौम को/किस तरह अश्लील है संसद की भाषा देखिए।”11* यह शेर सत्ता की असंवेदनशीलता और राजनीतिक संवाद के नैतिक पतन को रेखांकित करता है। देश के ‘जलने’ की प्रतीकात्मकता सामाजिक, आर्थिक और नैतिक संकटों की ओर संकेत करती है।

लोकतांत्रिक व्यवस्था में सत्ता का संचालन प्रायः नैतिक मूल्यों के बजाय बाजारू तर्कों से होता है। योग्यता, सत्य और जनहित की कीमत तभी स्वीकार होती है जब वह किसी प्रभावशाली शक्ति के अनुकूल हो। इस प्रकार राजनीति एक नैतिक संस्था न रहकर व्यवहारिक सौदेबाजी का अखाड़ा बन जाती है। *“सियासी बज्म में अक्सर ‘जुलेखा’ के इशारों पर/हकीकत ये है ‘युसूफ’ आज भी नीलाम होता है।”12* राजनीति में व्याप्त सत्ता, पूँजी और नैतिक पतन के गहरे अंतर्संबंध को प्रतीकात्मक भाषा में उजागर करता है। यहाँ ‘सियासी बज्म’ राजनीति के उस मंच का प्रतीक है जहाँ निर्णय जनहित से अधिक स्वार्थ, सौदेबाजी और प्रभाव के आधार पर लिए जाते हैं। ‘जुलेखा’ का प्रतीक सत्ता-समर्थ संरचनाओं, प्रभावशाली वर्गों या पूँजी-केन्द्रों की ओर संकेत करता है, जिनके इशारों पर राजनीतिक प्रक्रियाएँ संचालित होती हैं। इसके विपरीत ‘युसूफ’ सत्य, ईमानदारी, नैतिकता और प्रतिभा का प्रतिनिधि है। ‘युसूफ’ अर्थात सच्चाई और योग्यता नीलाम हो रही है, यानी सौदे की वस्तु बना दी गई है।

भ्रष्टाचार और ऐश्वर्य में डूबी सत्ता:

अदम गोंडवी की गजल भारतीय लोकतंत्र, राजनीति और सत्ता-संरचना की नैतिक विडंबनाओं पर तीखा और निर्भीक प्रहार करती है। तथाकथित ‘जनसेवक’ की वास्तविक आकांक्षाओं को नग्न रूप में प्रस्तुत करता है। *“एक जनसेवक को दुनिया में अदम क्या चाहिए/चार छै चमचे रहें माइक रहे माला रहे।”13* ‘चमचे’, ‘माइक’ और ‘माला’ राजनीतिक सत्ता की प्रतीकात्मक पूँजी हैं, जो सेवा-भाव की जगह प्रदर्शन और आत्म-प्रचार को स्थापित करती हैं। यह शेर लोकतांत्रिक मूल्यों के पतन का अत्यंत सटीक चित्रण करता है।

इसी संदर्भ में तथाकथित ‘रामराज्य’ की अवधारणा पर अदम जी का व्यंग्य अत्यंत तीखा है-*“काजू भुने प्लेट में व्हिस्की गिलास में/उतरा है रामराज विधायक निवास में॥”14* यह शेर तथाकथित ‘रामराज्य’ की अवधारणा को व्यंग्यात्मक रूप में प्रस्तुत करता है। यहाँ ‘रामराज’ धर्म, नैतिकता और न्याय का प्रतीक न होकर भोग-विलास, सत्ता और विशेषाधिकार का पर्याय बन जाता है। आदर्शों का दावा करने वाली राजनीति वास्तव में ऐश्वर्य में डूबी होने के संकेत हैं। *“तालिब-ए-शोहरत हैं कैसे भी मिले मिलती रहे/आए दिन अखबार में प्रतिभूति घोटाला रहे”15* राजनीति के घोटाला-केंद्रित विमर्श को उजागर करता है। यहाँ ‘अखबार’ मीडिया की उस भूमिका की ओर संकेत करता है, जहाँ भ्रष्टाचार भी राजनीतिक प्रसिद्धि का साधन बन जाता है। यह शेर सत्ता, मीडिया और पूँजी के गठजोड़ पर तीखा कटाक्ष है।

अदम की इन गजलों में सत्ता का चरित्र सेवा-भाव से नहीं, बल्कि प्रदर्शन, आत्म-प्रचार और ऐश्वर्य से संचालित दृष्टिगोचर होता है। लोकतंत्र के भीतर जनसेवा के नाम पर चल रही सत्ता-संस्कृति की सटीक आलोचना करता है। ‘चमचे’, ‘माइक’ और ‘माला’ राजनीतिक सत्ता की प्रतीकात्मक पूँजी हैं, जिनके माध्यम से लोकतंत्र एक दृश्यात्मक तमाशे में बदल जाता है। यहाँ रामराज नैतिक शासन का प्रतीक न रहकर सत्ता-सुख और उपभोग का पर्याय बन जाता है।

जन-प्रतिरोध और विद्रोह की चेतना:

अदम गोंडवी लोकतंत्र में जनता की निष्क्रियता पर प्रश्न उठाते हैं और दो टुक कहते हैं कि, *“आँख पर पट्टी रहे और अक्ल पर ताला रहे/अपने शाहे-वक्त का यूँ मर्तबा आला रहे”*16 ‘आँख पर पट्टी’ और ‘अक्ल पर ताला’ रूपक जनता की स्वेच्छिक अज्ञानता का संकेत देते हैं, जबकि ‘शाहे-वक्त’ शब्द लोकतांत्रिक शासक को निरंकुश शासक में रूपांतरित होते दिखाता है। यह शेर सत्ता के वैधीकरण में जन-मौन की भूमिका पर गंभीर प्रश्न उठाता है।

राष्ट्र का नाम लेकर जनता को बंधक बनाए जाने की यह अत्यंत प्रभावशाली प्रतीकात्मक छवि है-

“भारत माँ की एक तस्वीर मैंने यूँ बनाई है,
बँधी है *एक बेबस गाय खूँटे में कसाई के।”17*

‘भारत माँ’ की यह छवि सत्ता-समर्थ राष्ट्रवाद की क्रूर सच्चाई को उजागर करती है। यह शेर राजनीतिक राष्ट्रवाद बनाम मानवीय यथार्थ का तीखा विरोधाभास रचता है। राष्ट्रवाद के खोखले प्रतीकों पर गहरा व्यंग्य करता है।

ISSN : 2581-8848

आखिर में जब लोकतांत्रिक माध्यम निष्प्रभावी हो जाएँ, तब जनता के लिए विद्रोह केवल भावनात्मक प्रतिक्रिया नहीं, बल्कि चेतन और विवेकपूर्ण विकल्प बन जाता है। और अंततः अदम गोंडवी अपना सत्ताधारियों के खिलाफ विद्रोह को विवेकपूर्ण विकल्प के रूप में प्रस्तुत करते हैं—

"जनता के पास एक ही चारा है बग़ावत।
ये बात कह *रहा हूँ मैं होश-ओ-हवास में।।"18*

भाषा और शिल्प:

अदम गोंडवी की भाषा सहज, बोलचाल की और जनसुलभ है। मधु खराटे के शब्दों में "ठेठ ग्रामांचल भाषा में वे व्यवस्था विरोधी भावनाओं को अभिव्यक्त किया करते थे।" 19 वे शिल्प के जटिल प्रयोगों से अधिक अर्थ की तीव्रता पर बल देते हैं। उनकी गजलें सीधे जनमानस को संबोधित करती हैं, जिससे वे जनकवि के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं।

निष्कर्ष

अदम गोंडवी की गजलों में भारतीय राजनीति का वह चेहरा सामने आता है, जो जनसेवा का मुखौटा ओढ़े हुए भीतर से भ्रष्टाचार, भोग-विलास और आत्म-प्रचार से संचालित होता है। राजनेताओं के सार्वजनिक भाषणों और निजी आचरण के बीच मौजूद गहरा अंतर्विरोध उनकी रचनाओं का केंद्रीय विषय है। उनकी गजलें राष्ट्रवाद और विकास जैसे बड़े राजनीतिक विमर्शों को जन-जीवन की कसौटी पर परखते हुए सत्ता की नैतिक जिम्मेदारी पर प्रश्नचिह्न लगाती हैं। 'माला', 'माइक', 'शराब', 'कमीशन' और 'घोटाले' जैसे प्रतीक सत्ता के नैतिक पतन और राजनीतिक पाखंड को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त करते हैं। इस दृष्टि से अदम गोंडवी की गजलें भारतीय लोकतंत्र के समकालीन संकटग्रस्त स्वरूप का सशक्त दस्तावेज है, जो वर्तमान परिदृश्य में दृष्टिगोचर होता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. गोंडवी अदम, समय से मुठभेड़, वाणी प्रकाशन, 2010, भूमिका से
2. पांडेय (संपा.) सुधाकर, हिंदी विश्वकोश, नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी, 1976, पृ. 353
3. वहीं, पृ. 353
4. संपादक मंडल, नालन्दा विशाल शब्द सागर, आदीश बुक डिपो, नई दिल्ली, 1997, पृ. 1169
5. गोंडवी अदम, धरती की सतह पर, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ. 37
6. वहीं, पृ. 41
7. वहीं, पृ. 23
8. वहीं, पृ. 23
9. वहीं, पृ. 52
10. वहीं, पृ. 23
11. वहीं, पृ. 21
12. वहीं, पृ. 49
13. वहीं, पृ. 26
14. वहीं, पृ. 52
15. वहीं, पृ. 26
16. वहीं, पृ. 26
17. वहीं, पृ. 54
18. वहीं, पृ. 52
19. खराटे मधु, हिंदी गजल के नवरत्न, विद्या प्रकाशन, कानपुर, सं. 2014, पृ. 85

*****

 ISSN : 2581-8848

प्रेम तथा व्यवस्था चित्रण का सशक्त माध्यम 'ग़ज़ल'

प्रो.डॉ.एम.डी.इंगोले
(हिंदी विभागाध्यक्ष तथा शोधनिर्देशक)
कला वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय
गंगाखेड जि.परभणी-४३१५१४
मो. 9970721935,
ईमेल:ingolemunjaji@gmail.com

शोध सार:

मशहूर गजलकारों ने अपनी ग़ज़लों में प्रेम की पीड़ा, वेदना भी प्यार के खातिर सहनीय होती हैं। चाहे वह मिलन में आंनद देती है या विरह में वेदना। प्रेम के खातिर हीर-रांझा, लैला-मजनूं, हीर-फरींद जैसे प्रेम वीरों को प्रेम के ज़ालिम दुश्मनों से लड़ना पड़ा, यहां तक कि अपनी जान भी दांव पर लगानी पड़ी। आधुनिक काल में ग़ज़ल ने अपना एक नया रूप धारण कर लिया। प्रेम इश्क की धरातल से उठाकर उसे सामाजिक वास्तविकता से संबंध्द किया। समाज और राजनीति में जहां-जहां वैषम्य, अन्याय, अत्याचार, शोषण, बुराई दिखाई दीं वहां-वहां कलमकारों ने बड़ी बेबाकी से अपनी कलम चलाई और उसका पर्दाफाश किया। यही नहीं उन्होंने समाज व्यवस्था परिवर्तन की जमीन भी तैयार करने की भरसक कोशिश की हुई दिखाई देती हैं।

बीज शब्द : प्रेम, व्यवस्था, गजल समाज

ग़ज़ल का अर्थ, स्वरूप एवं परंपरा:

ग़ज़ल यह शब्द अरबी है। ग़ज़ल से ग़ज़ाला शब्द बना है। गजाला हिरनी को कहा जाता है। शिकारी का तीर तेज गति से जैसे हिरनी को जाकर लगता है, तो वह वेदना से कराह उठती हैं, उसके क्रंदन या आर्तनाद को ही गजल कहा जाता है। ग़ज़ल का हर शेर अपने आप में स्वतंत्र होता है, वह पाठक के मन को सीधे तीर समान बेध देता है। ग़ज़ल का शाब्दिक अर्थ है,'प्रेमिका से वार्तालाप।' इसका मुख्य विषय प्रेम है। नालंदा विशाल शब्द सागर के अनुसार ग़ज़ल यह एक,'फारसीऔर उर्दू में श्रृंगार रस की कविता है।' हिंदी साहित्य कोश में,'गजल में प्रेम भावनाओं का चित्रण होता है। अर्थात नारियों से प्रेम की बातें करना।' शास्त्रीय और संरचनात्मक की दृष्टि से ग़ज़ल का अर्थ है, "शे'रों का ऐसा मज्मुआ या संग्रह, जिसमें मतला हो, मक्ता हो, काफिया-रदीफ हो और एक निश्चित बहर भी हो, जिसमें शे'र अभिव्यक्त किए जाएं।"१ वर्तमान में उर्दू और हिंदी दोनों भाषाओं में ग़ज़ल यह महत्वपूर्ण काव्य रचना रुप माना जाता हैं। रहस्यमय और सामान्य शब्दों में शिल्प विधान की दृष्टि से लिखि काव्य रचना को गजल कहा जाता है। इसमें पांच या सात शेर होते हैं। ग़ज़ल में प्रेम, सामाजिक, राजनीतिक, वैयक्तिक, वैज्ञानिक, तात्विक कोई भी विषय हो सकता हैं। इस विधा में विषय वैविध्य की व्यापकता की संभावना हो सकती है। ग़ज़ल के सभी शेर अपने आप में विषय की दृष्टि से स्वतंत्र होते हैं या वे पूरी ग़ज़ल में एक दूसरे से संबद्ध भी हो सकते हैं। कुछ विशेषज्ञों का मानना है, ग़ज़ल यह असंबद्ध कविता है। अहमद फैज के शब्दों में कहें तो,"ग़ज़ल में भावनाओं या विषय-वस्तु की नहीं, मुड़ की इकाई(यूनिटी) या भावधारा होती है।"२ अर्थात ग़ज़ल मनुष्य की भाव भावनाओं का प्रकटीकरण हैं।

गजल का काव्य रुप उर्दू और फारसी साहित्य में बहुत ही लोकप्रिय है। इसकी शुरुआत सातवीं शताब्दी में फारस(आवाम ईरान) में मानी जाती है, बाद में यह भारत में भी बहुत प्रसिद्ध हुई। ग़ज़ल की परंपरा में मीर तकी, मीर्जा गालीब, गुलज़ार, फ़ैज़ अहमद फ़ैज़, जिगर मुरादाबादी, फिराक गोरखपुरी और आधुनिक कवियों में कुंवर बेचैन, दुष्यंत कुमार जैसे ग़ज़लकार महत्वपूर्ण हैं।

ग़ज़ल में मुख्य रूप से प्रेम को अभिव्यक्त किया जाता है। प्रेम मनुष्य का स्थाई भाव और मूलतत्व हैं। यह मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक उसमें निहित होता है। प्रेम के दो मुख्य पक्ष-संयोग और वियोग होते हैं। प्रेम मिलन तथा विरह का चित्रण किया जाता है। साथ ही प्रेम के विभिन्न रूप भी होते हैं। मानव का मानव से प्रेम, मानव का पशुओं से प्रेम, मानव का प्रकृति से प्रेम और माता-पिता तथा संतानों का एक दूसरे के प्रति प्रेम,भाई-बहन, पति-पत्नी का प्रेम, नायक नायिका का प्रेम, मित्र-प्रेम, गुरु-शिष्य का प्रेम आदि। हिंदी गजलों में नायक-नायिका के प्रेम हास-विलास अधिकांश रूप में चित्रित हुआ है। विशेष कर नयी कविता में भी प्रेम का बड़ी मात्रा में चित्रांकन हुआ है। प्रकृति का आलंबन और प्रतिकात्मक रूप में प्रयोग भी हमें दृष्टिगोचर होता है।

मिर्ज़ा ग़ालिब उर्दू साहित्य के महत्वपूर्ण शायर गज़लकार हैं। उनकी गजलों के शेरों में मनुष्य जिंदगी के सभी आयाम विद्यमान है, जिसके कारण उनकी शायरी हरेक के दिल की धड़कन बन जाती हैं। ग़ालिब ने छोटे छोटे विषयों को बड़ा आयाम दिया है। अपने इश्क संबंधी लिखते हैं, "अर्जे-निजामे-इश्क के काबिल नहीं रहा। जिस दिल पे नाज़ था मुझे, वो दिल नहीं रहा।।"३ अर्थात वे अपनी प्रियसी के सम्मुख अपने इश्क की प्रणय याचना भी नहीं कर सकते क्योंकि उन्हें जिस दिल पर बड़ा गर्व या नाज़ था, वह दिल अब नहीं रहा है।

गज़ल के अंत में वे यह भी लिखते हैं कि, "बेदादे-इश्क से नहीं डरता, मगर 'असद' जिस दिल पे नाज़ था मुझे, वो दिल नहीं रहा।"४ मतलब प्रेम में उन पर होने वाले अत्याचार से नहीं डरते हैं लेकिन उन्हें जिस दिल पर अभिमान था वही अब नहीं रहा है।

गुलज़ार उर्दू और हिंदी के लोकप्रिय गज़लकार के रूप में प्रतिष्ठित हैं। "वे एक मशहूर शायर, अप्रतिम फिल्मकार, संजीदा कहानी लेखक और बेहतरीन पटकथा लेखक भी हैं।"५ गुलज़ार ने अपनी गज़लों में सफलता के साथ प्रेम की अभिव्यक्ति की है। वे अपनी प्रियसी की आंतरिक मनोदशा या संवेदना को बड़े ही मनोहारी ढंग से चित्रित करते हैं। अपनी प्रियतमा को नसीहत देते हुए कहते हैं कि, "हाथ छूटे भी तो रिश्ते नहीं छोड़ा करते। वक्त की शाख से लम्हे नहीं तोड़ा करते।।"६ मतलब जीवन सफर में एखाद बार भले ही हाथ छूट जाएं किन्तु रिश्ता कभी नहीं छोड़ना चाहिए। जिस प्रकार समय की डालों से जीवन में जिये हुए लम्हों को तोड़ा नहीं जा सकता है। अर्थात वे सुख दुःख के क्षण हमारे साथ हमेशा-हमेशा के लिए संबंध्द होते हैं। किसी भी हालत में उन्हें तोडा नहीं जा सकता। इश्क संबंधी एक जगह ग़ालिब लिखते हैं, "इश्क से तबीअत ने जीस्त का मजा पाया। दर्द की दवा पायी, दर्द बे-दवा पाया।"७ यह शेर दिल को छू लेने वाला है। इसका अर्थ यह है कि, इश्क में पड़ने पर मेरी तबीयत(जीवन)को नया मजा मिला है। मैंने दर्द की दवा पा ली हैं(इश्क में दर्द भी है लेकिन वह भी एक तरह की दवा है) लेकिन यह दर्द अब बे-दवा(अद्वितीय) हो गया है। इसके आगे वे लिखते हैं, "दिल उसीको पहले ही नाजों-अदा से दे बैठे। हमें दिमाग कहां हुस्न के तकाज़ा का।"८ यह शेर मन पर गहरा प्रभाव डालने वाला है। इस शेर का अर्थ है- मैंने मेरा दिल पहले ही उस(माशूका)को उसकी नाज़ और अदा(अंदाज़) से दे दिया है। मुझे तो हुस्न(सुंदरता) के तकाज़े(मांग) की समझ ही नहीं है, यानी मैं तो पहले ही उस पर फिदा हो गया हूँ। यह शेर बताता है कि कैसे इश्क में पड़ने से व्यक्ति अपना होश-हवास खो देता है और माशूका के आगे बेबस हो जाता है।

"इश्क ने ग़ालिब निकम्मा कर दिया, वरना हम भी आदमी थे काम के।"९ इस शेर का मतलब यह है कि, इश्क ने मुझे(ग़ालिब को) निकम्मा याने बेकार कर दिया है, वरना मैं भी एक काम का आदमी था। यानी इश्क में पड़ने से मैं अपना काम-धाम भूल गया हूँ और अब कुछ नहीं कर पा रहा हूँ। यह शेर बताता है कि कैसे इश्क में पड़ने से व्यक्ति अपना काम-धाम भूल जाता है और उसके लिए कुछ भी महत्वपूर्ण नहीं रह जाता है।

आधुनिक काल में दुष्यंत कुमार जैसे गज़लकार कवियों ने सामाजिक, राजनीतिक और संपूर्ण व्यवस्था पर करारा व्यंग किया हैं। दुष्यंत कुमारजी का 'साये में धूप' हिंदी गज़ल संग्रह काफी लोकप्रिय रहा हैं। अरबी, उर्दू और फारसी में गज़ल तथा शेरों का संबंध प्रेमिका के सौंदर्य एवं उसके प्रेमपाल से जोड़ा गया था। दुष्यंत कुमारजी ने गज़ल के परंपरागत विषय प्रेम, श्रृंगार और प्रेमियों के दुःख या शोक, निराशा या ग़म जैसे विषयों के स्थान पर समकालीन जीवन की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक यथार्थ को अपनी गज़ल का विषय बनाया। उस पर गज़ल के माध्यम से करारी चोट की हैं। उसे अपने व्यंग्य का लक्ष्य बनाया ताकि राजनीतिज्ञों में सुधार ला सकें। उनमें दिन-ब-दिन घटते नैतिकता के अध:पतन को रोका जा सके। उनकी गज़लें में व्यक्ति की पीड़ा या वेदना, सामाजिक विषमता, राजनीतिक षडयंत्र और साजिशें, भ्रष्ट व्यवस्था के प्रति आक्रोश और विद्रोही स्वर क्रांति की आगाज़ उनकी गजलों में प्रकट रूप से उजागर होती हैं। भारतीय स्वतंत्रता के बाद हमारे पूर्वजों ने(स्वतंत्रता सेनानियों ने) खुशहाल और संपन्न देश वासियों के जीवन का सपना देखा था। किंतु कवि को घोर निराशापूर्ण स्थिति का सामना करना पड़ा है। इसलिए वें लिखते हैं, "कहां तो तय था चिरागॉं हर घर के लिए, कहॉं चिराग मयस्सर नहीं शहर के लिए।"१० आपातकालीन स्थिति में छीनीं गई संवैधानिक व्यक्ति स्वतंत्रता पर विवश होकर लिखते हैं, "तेरा निजाम है सिल दे जुबां शायर को, ये यहतियात जरुरी है इस बहर के लिए।"११ यही नहीं उन्होंने शियासत द्वारा समाज में लोगों पर हो रहे अन्याय, अत्याचार, शोषण को देखते हुए अपनी अकुलाहट को परिवर्तन का अस्त्र बनाने की कोशिश की हैं। वें आगे लिखते हैं, "सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं, मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए।"१२

किसी भी देश के लिए उसका संविधान सर्वोपरि होता हैं। उसका अस्तित्व अबाधित रहना चाहिए। लोकतांत्रिक व्यवस्था लोगों के अधिकार बरकरार रहना चाहिए। उस पर कोई आंच नहीं आनी चाहिए। लेकिन देश दुखद स्थिति, दुर्दशा

राजनयिकों ने कर दी हैं। देश का संविधान ख़तरे में है। उन्होंने देश की श्रेष्ठता को अपनी गज़ल में प्रकट किया है, "वो आदमी नहीं मुकम्मल बयान है, माथे पे उसके चोट का निशान है। सामान कुछ भी नहीं है फटेहाल है मगर, झोले में उसके पास कोई संविधान।।"१३ दुष्यंत कुमार जी अपनी गज़ल को क्रांति की एक 'मशाल' की तरह प्रतिकात्मक ढंग से प्रयुक्त करते हैं, "मेरी जुबान से निकली तो सिर्फ नज्म बनीं, तुम्हारे हाथ में आई तो एक मशाल हुई।"१४

निष्कर्ष:

सारांश रुप में हम यह कह सकते हैं कि, मशहूर गजलकारों ने अपनी गज़लों में प्रेम की पीड़ा, वेदना भी प्यार के खातिर सहनीय होती हैं। चाहे वह मिलन में आंनद देती है या विरह में वेदना। प्रेम के खातिर हीर-रांझा, लैला-मजनूं, हीर-फरींद जैसे प्रेम वीरों को प्रेम के ज़ालिम दुश्मनों से लड़ना पड़ा, यहां तक कि अपनी जान भी दांव पर लगानी पड़ी। आधुनिक काल में गज़ल ने अपना एक नया रूप धारण कर लिया। प्रेम इश्क की धरातल से उठाकर उसे सामाजिक वास्तविकता से संबंध्द किया। समाज और राजनीति में जहां-जहां वैषम्य, अन्याय, अत्याचार, शोषण, बुराई दिखाई दीं वहां-वहां कलमकारों ने बड़ी बेबाकी से अपनी कलम चलाई और उसका पर्दाफाश किया। यही नहीं उन्होंने समाज व्यवस्था परिवर्तन की जमीन भी तैयार करने की भरसक कोशिश की हुई दिखाई देती हैं।

संदर्भ संकेत:

१.हिंदी साहित्य ज्ञानकोश-संपा.शंभुनाथ, वाणी प्रकाशन,४६९५,२१-ए,दरिया गंज,नयी दिल्ली -११०००२, खंड:३(पृ.११४७)
२.वही.(पृष्ठ.११४३)
३.गालिब मशहूर शायरों की नुमाइंदा शायरी- मंजुल पब्लिशिंग हाऊस, कॉर्पोरेट एवं संपादकीय कार्यालय, द्वीतिय तल, उषा प्रीत कॉम्प्लेक्स, ४२ मालवीय नगर, भोपाल -४६२ ००३(पृ.९)
४.वही.(पृ.१०)
५.यार जुलाहे... गुलज़ार- संपा.यतींद्र मिश्र, वाणी प्रकाशन, २१-ए, दरियागंज नई दिल्ली -११०००२(पृ.फ्लैप से)
६.वही.पृ.३४)
७.गालिब मशहूर शायरों की नुमाइंदा शायरी- मंजुल पब्लिशिंग हाउस, कॉर्पोरेट एवं संपादकीय कार्यालय, द्वितीय तल, उषा प्रीत कॉम्प्लेक्स, मालवीय नगर, भोपाल - ४६२००३.(पृ.२६)
८.वही.(पृ.३७)
९.वही.(पृ.४१)
१०.साये में धूप-दुष्यंत कुमार, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली (पृ.१३)
११.वही.(पृ.१३)
१२.वही.(पृ.३०)
१३.वही.(पृ.५९)
१४.वही.(पृ.५८)

*****

हिंदी फ़िल्मी गीतकार एवं ग़ज़लकार : एक अध्ययन

रिज़वाना शानूर मुलाणी,
हिंदी विभाग, मुंबई विश्वविद्यालय,
डॉ. पतंग राव कदम आर्ट्स,
साइंस एंड कॉमर्स कॉलेज, पेन, ज़िला रायगढ़,
Phone.No-9049040445
Mail: rizwanasayyad46@gmail.com

प्रो. डॉ. संगीता सूर्यकांत चित्रकोटी
को. ए. सो. लक्ष्मी शालिनी
महिला महाविद्यालय,
पेझारी, अलीबाग

सारांश

कला आत्मा को संपन्न एवं समृद्ध बनाती है। आत्म तृप्ति के लालसा से ही कला का जन्म होता है। मानव सभ्यता के आरंभ से ही जीवन में कला का अभूतपूर्व महत्व रहा है। कुल 64 कलाओं में संगीत ने अपना स्थान उच्चतर रखा हुआ है। पाश्चात्य विचारवंत फ्रेडरिक ने संगीत की परिभाषा "without music life would be an error "[1] की है। हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भी शिक्षा में संगीत को उच्च स्थान देने का समर्थन किया है।

"Music is the universal language of mankind"[2]

हिंदी फ़िल्मी संगीत इतिहास भारतीय सांस्कृतिक परंपरा,जन चेतना का विहंगम संगम प्रस्तुत करता है। हिंदी फ़िल्मी गीतकारों और गज़लकारो ने न केवल हिंदी सिनेमा को सौंदर्य पूर्ण भाषा दी है बल्कि,संपूर्ण विश्व के जन चेतना में एक ऊर्जा प्रदान की है।

"हिंदी फ़िल्मी गीतकार एवं गज़लकार "यह शोध आलेख हिंदी फ़िल्मी गीत के प्रमुख रचनाकार जिन्होंने अपनी कलम से समाज के मन मानस पर अनोखी छाप छोड़ी है उनका काव्य सौंदर्य ,भाषा शिल्प ,सामाजिक ,सांस्कृतिक प्रभाव का सटीक विश्लेषण करेगा।

मुख्य शब्द (Keyword) -गीतकार ,कला, संस्कृति, सभ्यता संगीत ,गुलजार

परिचय –

सामाजिक ,सांस्कृतिक प्रगति में हिंदी सिनेमा का योगदान अतुल्य रहता आया है और रहेगा। हिंदी सिनेमा का आत्मा उसके अमर गीत है जो हर जनमानस के मन का संचित है। सृष्टि अपनी सर्जना से भाव प्रवण कलाकार को ही अपनी कृपा दृष्टि से भर देती है। कोई भी गीत मनोरंजन का माध्यम नहीं होता है बल्कि सामाजिक यथार्थ ,प्रेम , वियोग दर्शन ,देशभक्ति ,स्त्री के मन की तरल अनुभूति ,मानवीय भाव भावना संवेदना जिसे गीतकार शब्द और संगीत के सांचे में ढ़ालकर समाज के दिल पर अधिराज्य करता है। साथ ही साथ जहां गीतकारों ने फ़िल्मी संगीत को लोकप्रियता की नहीं ऊंचाई तक पहुंचा तो दूसरी और गज़ल परंपरा ने उर्दू हिंदी के सांस्कृतिक सेतु को और प्रबल करने का प्रयास किया। भाषा में नफ़ासत, अर्थ गहराई और भाव व्यंजना आपको नई ऊंचाई तक लेकर गई। निष्कर्ष कहां कहा जा सकता है कि दोनों विधाएं परस्पर स्वतंत्र होते हुए भी एक दूसरे की संवेदनशीलता से प्रभावित रही है हिंदी फ़िल्मी गीत भारतीय जनमानस के भाव विश्वास से गहराई से जुड़े हैं। भारतीय सिने गीत केवल गीत ही नहीं यह शब्द और संगीत का सम्मिलित संस्कृत अनुभव है।

उद्देश्य-

इस शोध आलेख का उद्देश्य प्रमुख गीतकार एवं ग़ज़लकारों का भारतीय संगीत को प्राप्त योगदान का विश्लेषण करना है। साथ-साथ फ़िल्मी गीतकारों और ग़ज़लकारों द्वारा भारतीय समाज पर पड़े प्रभाव को रेखांकित करना है और यह पता लगाना कि उनके अमर गीतों ने समाज को किस प्रकार नैतिक, भावनात्मक और सांस्कृतिक स्तर पर प्रभावित एवं मार्गदर्शित किया है। गीत गजल केवल मन को प्रफुल्लित करने का माध्यम नहीं बल्कि साहित्यिक दस्तावेज के रूप में प्रस्तुत करता है। गीत और गजल के माध्यम से समाज की संवेदनाओं का मूल्यांकन करना, साथ ही साथ हिंदी फ़िल्मी गीतकारों की रचना शैली और विषय वस्तु का विश्लेषण करना शोध का प्रमुख लक्ष्य है।

शोध पद्धति

गीत समाज का आईना होते हैं "फ़िल्मी गीतकार और गज़लकार "इस शोध विषय में हम समाजशास्त्रीय शोध पद्धति का अवलंब करेंगे साथ ही साथ गीतकार और गज़लकार का समय ,सामाजिक परिस्थितियां,फ़िल्मी उद्योग के दशा-दिशा का प्रभाव गीतकार पर पड़ता है तो हम इस शोध पद्धति में ऐतिहासिक शोध पद्धति का भी अवलंब करेंगे।

मूल आलेख

भारत की पहली फीचर फ़िल्म सन 1913 में प्रदर्शित हुई थी जिसका नाम था 'राजा हरिश्चंद्र' इस फ़िल्म को सबसे पहले मुंबई में कोरोनेशन थियेटर में प्रदर्शित किया गया था। दादा साहेब फाल्के के निर्देशन में बनी इस फिल्म का प्रदर्शन मुंबई, लंदन, रंगून एवं कोलंबो में किया गया था। उस कल में महिला कलाकारों की फिल्मों में अभिनय की अरुचि एवं सामाजिक प्रतिष्ठा के कारण फिल्म में काम करने कोई तैयार नहीं होता था। इसीलिए राजा हरिश्चंद्र की पत्नी की भूमिका अन्ना सालुंके को निभानी पड़ी थी। दमदार अभिनय के बलबूते जहां दर्शकों से राजा हरिश्चंद्र फ़िल्म को खूब सारी सराहना मिली वहीं कालांतर में भारतीय सिनेमा जगत के लिए भी यह फ़िल्म मिल का पत्थर साबित हुई।हिंदुस्तानी फिल्म जगत में जब सर्वप्रथम बोलते चलचित्रों का दौर आरंभ हुआ तब गीत फिल्मों का एक अहम हिस्सा बनकर साथ ही मानव चेतना को जागृत करने का माध्यम बनकर उभर कर आया। सबसे पहले बोलते चलचित्र आलमआरा जो 1931 में प्रदर्शित हुई उसमें 7 गाने थे। उसके बाद शीरी फ़रहाद फिल्म आई जिसमें 42 गाने थे इन गीतों की विशेषता यह हुआ करती थी कि जो फ़िल्मी किरदार हुआ करते थे वह खुद अपनी आवाज में गीत गाते थे और परदे के पीछे बैठे साज़िंदे संगीत दिया करते थे यहां से फ़िल्मी गीतकार की प्रवाह धारा का आग़ाज़ हुआ। जो निरंतर आगे बढ़ता ही जा रहा है।

"यह वह दौर था जब एक तरफ हिंदी साहित्य में छायावादी कवियों का बोलबाला था जैसे जयशंकर प्रसाद ,महादेवी वर्मा, सुमित्रानंदन पंत और दूसरी और उर्दू में ग़ालिब और अमीर की विरासत को मोमिन,हाफिज़, मजाज़ आदि आगे बढ़ा रहे थे इन सब के अलावा दिनकर और अल्लामा इकबाल वीर रस ,देश प्रेम और राष्ट्रवाद के चमकते सितारे थे।"[3]

इस दशक के बाद फ़िल्मी गीत मानो आम जनता के जीवन का मधुर तान बनने लगे। गीतकार अपनी कलम की जादुई शक्ति से लोगों के दिल के गहराई में उतरकर गीत लिखने लगे। कुछ गीत तो समाज के जीवन का अभिन्न हिस्सा बन गए मानो शुभ अवसर कोई भी मंगल प्रसंग उन गीतों के बगैर अधूरा सा था जैसे शादी में विदाई के वक्त गाने जाने वाला जीत पर साहिर लुधियानवी ने लिखा" बाबुल की दुआएं लेकर जा जा तुझको सुखी संसार मिले" यह वह गीत है जो आज भी हर उसे औरत के मन को अपने अतीत की अपने विदाई की खुशी और गम भरी दास्तां याद दिलाता है। और आंखों से आंसू छलक उठते है। यूं तो नायाब फनकारों ने लिखे हुए सब गीतों में कुछ ना कुछ बात है मगर आनंद बक्शी के गीतों में एक अलग ही बात है अलग ही अंदाज़ है। आनंद बक्शी ऐसे सफल गीतकार है जो सिर्फ़ बॉलीवुड के नहीं युग के सर्वश्रेष्ठ गीतकार है। अपने 40 साल से भी ज़ादा फ़िल्मी कैरियर में लगभग 650 फिल्मों में इन्होंने गीत लिखे। जीवन के हर पहेली को आनंद बक्शी ने कलम में पिरोया है।"आदमी मुसाफिर है आता है जाता है, तू कितनी अच्छी है तू कितनी भोली है, मेरे नैना सावन भादो फिर भी मेरा मन प्यासा" जैसे सैकड़ो गीत आज भी सुनकर मन भाव विभोर हो उठता है साथ ही साथ साहिर लुधियानवी ने अपने गीतों के माध्यम से समाज की विसंगतियां,प्रेम,पीड़ा और आर्थिक असमानताओं को उजागर किया है साहिर जी के करियर के सर्वश्रेष्ठ गीत प्यासा फ़िल्मी के है जो 1957 में बनी थी। यह दुनिया अगर मिल भी जाए तो क्या है हाउस नंबर 44 फिल्म जो 1955 में आई थी उसमें गहरी प्रेम का सरल प्रवाह और पवित्रता उनका गाना 'चाहूंगा मैं तुम्हें सांझ सवेरे 'में प्रस्तुत की गई जिसने दशकों से समाज के मन पर राज किया। सदी के महानायक अमिताभ बच्चन रेखा स्टारर ब्लॉकबस्टर मूवी कभी-कभी फिल्म जो 1976 में बनी थी उसका गीत "कभी-कभी मेरे दिल में ख़याल आता है" यह प्रेम की अभिव्यंजना,स्मृति,विश्वास और आत्मीयता से भरा क्लासिक गीत है। इस गीत ने आधुनिक प्रेम-काव्य को नया आयाम प्रदान किया और उसे नई मंज़िल दी।

जहां गीतकारों की बात हो रही हो वहां जावेद अख्तर का नाम न हो संभव नहीं है। जावेद अख्तर साहब फिल्म जगत के वह प्रतिभासंपन्न व्यक्तित्व के धनी गीतकार है जिन्होंने समकालीन जीवन, मानवीय भाव भावनाओं और संवेदनाओं को अत्यंत सूक्ष्मता के साथ अपनी कलम से शब्दबद्ध किया है। वे गीतकार, पटकथाकार,संवाद लेखक, कवि और सामाजिक सरोकारों से गहरे जुड़े बुद्धिजीवी के रूप में पहचाने जाते हैं। उनकी कलम में सरल भाषा के साथ लेखन में भावनाओं की उच्चतम गहराई दर्शन जीवन के अनुभवों का अनूठा संतुलन दिखाई देता है जावेद अख्तर का हर वह तराना एक अनोखी दास्तान बनकर उभर आया। जैसे "दिल चाहता है" लगान फ़िल्मी का "ओ पालनहारे" कल हो ना हो और कभी अलविदा ना कहना जैसे बेहद सुंदर गीतों के रचना जावेद साहब ने की, और सदी के सर्वश्रेष्ठ गीतकार के श्रेणी में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

गीतकारों की सूची में बेहद महत्वपूर्ण नाम निकलकर सामने आता है वह है शैलेंद्र जी का जिनको हिंदी उर्दू का हम कवि-गीतकार माना जाता है शैलेंद्र जी ने भारत देश की कृषक पार्श्वभूमी को केंद्र में रखकर आंचलिक गीत की रचना की, जो

आज भी श्रोताओं के मन को भाव-विभोर कर देते हैं। शैलेंद्र जी ने अपने दौर की सामाजिक परिस्थितियों मध्यमवर्गीय सामान्य जनता की भावनाएं और संवेदनाओं को शब्दबद्ध किया। शैलेंद्र के गीत

"सजन रे झूठ मत बोलो खुदा के पास जाना है"
" मेरा जूता है जापानी"
" प्यार हुआ इकरार हुआ"
" हम लाए हैं कश्ती" जैसे गीत आज भी जनमानस में गहराई से बसे हुए हैं।

मजरूह सुल्तानपुरी हिंदी उर्दू के अनमोल गीतकारों और शायरों में गिने जाते हैं, जिन्होंने हिंदी फिल्मों को एक नया भाव-संसार दिया वह सिर्फ गीतकार ही नहीं बल्कि प्रेम,दर्द, रोमांस और इंसानियत की संवेदनाओं को उजागर करने वाले उर्दू शायर थे उनका पूरा नाम असरार हसन ख़ान था। उनकी भाषा में एक खास नमी, सादगी और भावनाओं की सच्चाई थी। उनके शायरी का स्वर प्रेम और इंसानी रिश्तों की नजाकत को नया आयाम देता है उनके गीत सादगी भरे थे जैसे "चाहे कोई मुझे जंगली कहे" उनके गीतों में प्रेम स्वाभाविक, सहज और जीवन से जुड़ा हुआ है । "जुल्फों वाली" , "जब दिल ही टूट गया हम जी कर क्या करेंगे" मजरूह ने 350 से अधिक फ़िल्मों के लिए लगभग 4000 गीत लिखे उन्होंने रोमांटिक गीत भी लिखें,"ओ मेरे दिल के चैन" ,"क्या हुआ तेरा वादा" , मजरूह ने फ़िल्मी गीतों को कविता का दर्जा दिया। उनके बिना हिंदी फ़िल्मी संगीत अधूरा लगता है।
शब्दों के जादूगर और भावनाओं के शायर, जिनका नाम सुनते ही बारिश की ख़ुशबू, काग़ज़ की सरसराहट, दिल की धड़कनों की आहट और ज़िंदगी का संगीत सब एक साथ गूँज उठता है। उनका नाम है गुलज़ार साहब ,हिंदी सिनेमा जगत के प्रयोगधर्मी गीतकार है। "मोरा गोरा अंग लई के" से गीतकार की यात्रा प्रारंभ करते हुए गुलज़ार ने स्त्री मन की संवेदनाओं को गीतों का प्राण बनाया गुलज़ार सृष्टि के नेमत से विभूषित कलाकार है गुलज़ार की कलम के बारे में कहा जाए तो मानवता की अटूट आस्था लिए नूर की आवाज है।

"तेरे बिना जिंदगी से कोई शिकवा तो नहीं,
शिकवा नहीं, तेरे बिना जिंदगी भी लेकिन जिंदगी नहीं"[4]

जैसे जीवन को झंकारने वाले गीत लिखे। गुलज़ार साहब पंजाबी लोक ज़बान के बड़े फ़नकार है और अपनी गीत यात्रा में हज़ारों गीत ऐसे लिख चुके हैं। जिसमें पंजाबी मिट्टी की खुशबू आते हैं जैसे गुलज़ार माचिस फ़िल्मी का गीत "चप्पा चप्पा चरखा चले"[5]

आधुनिक गीतकारों की श्रेणी में जिनका नाम अदब और एहतराम से लिया जाता है वह है, इरशाद कामिल। वे मूलतः पंजाबी पृष्ठभूमि से आते हैं, लेकिन उनकी भाषा में हिंदी उर्दू का सहज मेल मिलता है जिसमें उन्हें नई पीढ़ी के सबसे प्रिय गीतकारों में शामिल किया है।

इरशाद कामिल भारत के चुनिंदा श्रेष्ठ गीतकारों में से है, जिन्होंने हिंदी फ़िल्मी संगीत में संवेदनशीलता, काव्यात्मक गहराई और आधुनिक सोच का अनोखा संगम प्रस्तुत किया है। उनके गीतों में नौजवानों की भावनाएं ,संघर्ष, प्रेम, आत्म-अन्वेषण को छूते हैं। उर्दू की नफ़ासत और हिंदी की सहजता यही समन्वय उनके गीतों को विशिष्ट बनाता है। उनका मानना है की

" गीत न सिर्फ़ मनोरंजन नहीं बल्कि मनुष्य की आत्मा और अनुभव का दर्पण होते हैं।"[6]

उनके तराने"ले जाए कहां हवाएं", "ये इश्क हाय"और "आओगे तुम हो सजना" आज भी लाखों युवा धड़कनों पर छाए हुए हैं। हिंदी फ़िल्मी जगत के पुरुष सत्ताक क्षेत्र में कौसर मुनीर एक ऐसी महिला गीतकार है जिनके गीत लाखों युवा के दिलों पर अपनी रौनक बिखेरते है। "फ़लक तक चल साथ मेरे", "तू जो मिला"और" भर दो झोली मेरी या मोहम्मद" जैसे सदाबहार गीत कौसर मुनीर ने लिखे। कौसर मुनीर इंसानी जज़्बात को बड़े ही कोमलता और संवेदनशीलता के साथ लिखती है।

निष्कर्ष

हिंदी फ़िल्मी गीतकारों और ग़ज़लकारों ने मानव सभ्यता और संस्कृति को नए आयाम प्रदान किए हैं तथा उन्हें समृद्ध और संपन्न बनाया है। फ़िल्मी गीत और ग़ज़ल अपनी-अपनी भिन्न संरचनाओं के बावजूद भाव-बोध, मानवीय संवेदना, चेतना और गरिमा को उच्चतम भावनात्मक धरातल पर एक-दूसरे से गहराई से जोड़ते हैं। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि हिंदी फ़िल्मी

ISSN : 2581-8848

गीतकार और ग़ज़लकार हिंदी साहित्य की मुख्यधारा के महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य आधार-स्तंभ हैं। इन्हीं स्तंभों पर संपूर्ण हिंदी फ़िल्मी जगत अपने अस्तित्व को दृढ़ता और मजबूती के साथ बनाए हुए है।

संदर्भ

1) the role of music in human culture Vikas Shah thought economics 2013 downloaded for internet ID
2) https://www.welcometomonarchlanding.com
3)Younganukung.com
4) विनोद खेतान, उम्र से लंबी सड़कों पर गुलजार
5) यतींद्र मिश्र ,गुलजार साहब हजारे राहें मुड़ के देखी ,वाणी प्रकाशन 4695 दरियागंज नई दिल्ली 11002 पुस्तक क्रमांक 58,59
6) The lallantop

*****

 ISSN : 2581-8848

फ़िल्मी गीतों पर डॉ. सुनील देवधर का सांस्कृतिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण

लता वर्मा
डॉ. सोनू जेसवानी
राष्ट्रसंत तुकडोजी महाराज
नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर |
8552002089
latav914@gmail.com

सारांश :

डॉ. सुनील देवधर एक बहुआयामी हिन्दी साहित्यकार, मराठी साहित्यकार एवं आकाशवाणी के सृजनात्मक रचनाकार हैं, जिनकी साहित्यिक और प्रसारण यात्रा ने हिंदी भाषा, साहित्य और संस्कृति को नए आयाम दिए हैं। वे लेखक, अनुवादक, समीक्षक, संपादक, प्रसारण विशेषज्ञ और विचारशील वक्ता के रूप में अपनी पहचान बना चुके हैं। इनका लेखन जहाँ गहराई, संवेदना और शिल्प का समन्वय है, वहीं उनकी प्रसारण कला में कल्पनाशीलता, तकनीक दक्षता और भावनात्मक प्रभाव का अद्भुत मेल दिखाई देता है। एक ओर जहां उनका रचनाकर्म कविता, गीत, लेख, समीक्षा, रूपांतर, अनुवाद आदि साहित्यिक रचनाधर्मिता से संपन्न है, वहीं दूसरी ओर आकाशवाणी प्रसारण के क्षेत्र में भी अपनी ख़ूबसूरत लेखनी, मर्मस्पर्शी आवाज़, और कल्पनाशीलता को एकसाथ साधते हुए न सिर्फ नए प्रयोग किए हैं, बल्कि रेडियो रूपक, साक्षात्कार, फ़िल्मी गीत समीक्षा आदि सृजनात्मक विधाओं के माध्यम से उन्हें सहेजने का भी महत्वपूर्ण कार्य किया है। उन्होंने रेडियो प्रसारण के क्षेत्र में एक कम्पलीट ब्रॉडकास्टर के रूप में प्रसिद्धि हासिल की है।

देवधर जी फ़िल्मी गीत समीक्षा के माध्यम से गीतों के शब्दों पर ज़ोर देते हुए उनका विश्लेषण करके गीत के 'बोल' के महत्त्व को उजागर करते है, जो हमारे जीवन से जुड़े हुए तथ्यों के बिन्दुओं को रेखांकित करते हुए पाठक को एक नया दृष्टिकोण एवं समझ देते हैं | वे कहते हैं कि फ़िल्मी गीत न सिर्फ मनोरंजन का साधन है बल्कि समाज को जागृत करने का भी सशक्त माध्यम बन गया है | वर्तमान भारतीय फ़िल्मी गीतों में पाश्चात्य सभ्यता एवं बाजारवाद का अत्याधिक प्रभाव दिखाई दे रहा है, जिससे गीतों में भावनात्मक पहलू की विशेषताएं गायब होती जा रही हैं, जिसका प्रभाव आनेवाली पीढ़ी पर हो रहा है | इसी प्रभाव को गहराई से समझाने का कार्य देवधर जी ने फ़िल्मी गीत समीक्षा के माध्यम से किया है | वे समाज में गीतों का महत्त्व स्थापित करते हुए अपनी संस्कृति से जुड़े रहने का सन्देश देते हैं |

बीज शब्द – समन्वय, दक्षता, धर्मिता, ब्रॉडकास्टर

पुणे से 'लोकमत समाचार' नामक हिंदी दैनिक पत्र में सुनील देवधर जी का एक कॉलम हर रविवार को "बड़े अनमोल गीतों के बोल" नाम से प्रकाशित होता था। लेकिन कुछ दिनों बाद यह कार्यक्रम आकाशवाणी पर प्रस्तुत किया जाने लगा, जो बहुत ही लोकप्रिय रहा और सफल कार्यक्रम साबित हुआ। इसी कार्यक्रम-श्रृंखला से चुने 51 गीतों के बोलों का विवेचन- विश्लेषण करके देवधर जी ने इसे एक किताब में संकलित करके एक रचना का रूप दिया है। डॉ. सुनील देवधर जी की फ़िल्मी गीतों की समीक्षा पर आधारित रचना 'बड़े अनमोल गीतों के बोल' का प्रथम संस्करण - २०१७ में प्रकाशन हुआ। इस रचना में देवधर जी ने प्रसिद्ध शायर और कवियों द्वारा रचित उच्च कोटि के फ़िल्मी गीतों का चुनाव करके उन्होंने भारतीय सामाजिक परंपरा के विभिन्न पक्षों को और भी गहराइयों से उभारने की कोशिश की है।

वे कहते हैं कि जिस तरह से सृष्टि का नियम परिवर्तनशील है और उस परिवर्तन में ढलना मानवीय सभ्यता की प्रमुख प्रवृत्ति होती है । बदलते दौर के साथ-साथ तत्कालीन सामाजिक परिवेश, विचार, दृष्टिकोण आदि में भी परिवर्तन दिखाई देने लगते हैं और उसे गहराइयों से जानने का मौका मिलता है। देवधर जी की सृजनात्मक लेखन शैली बहुत ही सहज और सरल है, जैसे हम कोई रचना नहीं पढ़ रहे बल्कि वे हमसे स्वयं बात कर रहे हों क्योंकि गीतों के बोल भी हमारे जीवन से ही जुड़े होते हैं, जिसे हम अनुभव करते रहते हैं । इस व्यस्तता भरे जीवन में उलझे होने के कारण फ़िल्मी गीतों के बोलों के अनोखेपन पर, उनकी अनमोलता पर ध्यान नहीं जाता । परन्तु इस रचना को पढ़ने से हम उन बोलों के महत्व को समझते हुए भावना और अर्थ के और भी करीब पहुंच जाते हैं । उन्होंने फ़िल्मी गीतों को पढ़ने, सुनने, देखने और समझने का एक नया दृष्टिकोण का निर्माण किया है, जिसका प्रभाव भी सभी उम्र के लोगों पर अपने-अपने स्तर पर होता दिखाई देता है।

सुनील देवधर जी का मानना है कि साहित्य और फ़िल्मों के गठबन्धन से नई सृजनात्मक विचारधाराओं की लहर बहती है, जिसमें समाज के यथार्थ चित्रण को कलात्मक ढंग से फ़िल्मी गीतों में प्रस्तुत किया जाता है। उन्होंने इसी रचना में सर्वप्रथम एक प्रसिद्ध गीत पेश किया है-

‘वन्दे मातरम्
सुजलां सुफलां मलयजशीतलाम्
शस्य श्यामलां मातरं
शुभ्र ज्योत्स्न पुलकित यामिनीम
फुल्ल कुसुमित दुमदलशोभिनीम्,
सुहासिनी सुमधुर भाषिणीम्
सुखदां वरदां मातरम् ..
वन्दे मातरम्’ [१]

इस गीत के गीतकार बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय ने भारत देश की स्वतंत्रता संग्राम के लिए प्रेरणास्रोत के रूप में बांग्ला और संस्कृत की मिश्रित भाषा से गीत की रचना सन् 1875 में की थी। इसके पश्चात सन् 1880 में 'आनंदमठ' उपन्यास का प्रकाशन हुआ। इस गीत का प्रथम गायन सन् 1896 रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कलकत्ता में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस अधिवेशन में किया था। सन् 1952 में 'आनंदमठ' शीर्षक से फ़िल्म बनाई गई, जिसमें 'वन्दे मातरम्' गीत का समावेश किया गया, जिसके संगीतकार हेमंत कुमार और गायक लता मंगेशकर थीं। देवधर जी के अनुसार इस गीत के बोलों ने सभी भारतवासियों के हृदय में देश प्रेम की भावना जागृत करके एक सूत्र में बांधने का महत्वपूर्ण कार्य किया।

डॉ. सुनील देवधर जी कहते हैं सर्वधर्म-समभाव की मिसाल देनेवाले भारत देश ने अपनी अनोखी संस्कृति, धार्मिक आस्था, कला, साहित्य की ओर पूरे विश्व को अपनी ओर आकर्षित किया है। यह मिसाल भारतीय फ़िल्म में धार्मिक और पौराणिक कथाओं का आधार लेने के कारण ही संभव हो सकी है | इसी धरोहर ने मानव सभ्यता को अपनी परंपरा से जोड़े रखा है। यहाँ आस्था भारतीय जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा है। इन्हीं धार्मिक, पौराणिक कथाओं पर आधारित 'तुलसीदास' सन् 1954 में फ़िल्म आयी जिसके गीत के बोल हैं-

‘हे महादेव मेरी लाज रहे
हे महादेव मेरी लाज रहे
मेरी लाज रहे तेरा राज रहे
हे महादेव मेरी लाज रहे
ज़हर कंठ में नाग गले में आग नयन में
फिर भी अमृत तुम्हीं लुटाते इस त्रिभुवन में
आज भक्त पर भीर पड़ी है
हे महादेव मेरी लाज रहे मेरी लाज रहे...
आज भक्त पर भीर पड़ी है फिर तुम कहाँ बिरज रहे’ [२]

यह गीत देवों के देव महादेव भगवान शिव शंकर पर आधारित कथा को आधार बनाकर रचा गया है | पौराणिक कथा के अनुसार देवों और दानवों के बीच में समुद्र मंथन हुआ था। इसमें से बहुत-सी वस्तुएं निकली थीं और उसी में से विष भी निकला था, जिसे शिव भगवान ने अपने कंठ में समाकर रखा था। इसलिए महादेव को ‘नीलकंठ’ के नाम से भी जाना जाता है। ऐसे ही कई किस्से हैं जिनसे कई गीत, सीरियल, फ़िल्में बनती रही हैं। देवधर जी बताते हैं कि इससे समाज में नैतिक मूल्यों की स्थापना बनी रहती है। फ़िल्मी गाने मनोरंजन के साथ-साथ बदलते दौर की सच्चाई भी दिखाते हैं और हौसला भी बढ़ाते हैं। सन् 1957 में आई फ़िल्म 'नया दौर' के गीत के बोल हैं-

‘साथी हाथ बढ़ाना, साथी हाथ बढ़ाना
एक अकेला थक जायेगा
मिल कर बोझ उठाना
साथी हाथ बढ़ाना...

हम मेहनतवालों ने जब भी मिलकर कदम बढ़ाया
सागर ने रस्ता छोड़ा, परबत ने सीस झुकाया
फ़ौलादी हैं सीने अपने, फ़ौलादी हैं बाहें
हम चाहें तो पैदा कर दें, चट्टानों में राहें
साथी हाथ बढ़ाना...'[३]

देवधर जी कहते हैं ये गीत दर्शकों पर अपना अलग ही प्रभाव डालता है और मानव समाज की एकता के चमत्कारी और सशक्त प्रभाव को बताते हुए चिंतन-विश्लेषण करने पर ज़ोर देता है | क्योंकि समाज के सभी समूह आपसी सहयोग से ही आगे बढ़ते हुए ऊँचाई के शिखर तक पहुँछे हैं। औद्योगिक क्रान्ति और शहरी सभ्यता के विकास में मजदूर वर्गों का भी उतना ही महत्वपूर्ण स्थान है, जितना आज के दौर में तकनीकी साधनों का है। उन्होंने इस गीत में यही स्पष्ट संदेश दिया है कि विश्व में जितने भी बड़े-बड़े कार्य हो रहें हैं, वे मेहनत करने वालों के बिना पूर्ण हो पाना संभव नहीं | इसलिए पूंजीपतियों को या बात समझ में आनी चाहिए कि लाभ का हिस्सा पूरा ख़ुद उठाते उए मज़दूर वर्ग का शोषण करते रहना सभी समाज की निशानी नहीं | सभी को मिलजुलकर काम को आगे बढ़ाना होता है, तभी उस कार्य में सफलता की गूंज उठती है।

डॉ. देवधर आगे कहते हैं कि एक कवि, शायर, गीतकार आदि सृजनात्मक रचनाकार अपने लेखन के ज़रिए समाज को एक नई दिशा, नई उमंग और बदलाव की दिशा दिखाता है। उस दिशा को समाज अपनाकर बदलाव की धारा बहाने लगता है और समाज में चल रही गलत पारंपरिक सोच-विचार भी बदलने लगती है | इसी तरह के धार्मिक परंपरागत विचारों का विरोध करने के पक्ष में फ़िल्म सन् 1959 में 'धूल का फूल' आई, जिसमें गीत के बोल है-

'तू हिंदू बनेगा ना मुसलमान बनेगा
इन्सान की औलाद है इन्सान बनेगा
अच्छा है अभी तक तेरा कुछ नाम नहीं है
तुझको किसी महज़ब से कोई काम नहीं है
जिस इल्म ने इंसान को तक़्सीम किया है
उस इल्म का तुझ पर कोई इल्ज़ाम नहीं है
तू बदले हुए वक्त की पहचान बनेगा...'[४]

देवधर जी बताते हैं कि इस गीत में गीतकार साहिर लुधियानवी ने मानवतावाद के संदेश को आवाज़ दी है। मानव ने अपने स्वार्थों को साधने के लिए धर्म और मज़हब का इस्तेमाल समाज में नफ़रत फैलाने के लिए किया है | मज़हब की भिन्नता को इतना अधिक बढ़ावा दिया जा रहा है कि इसके आगे मनुष्य की भावनाएं ख़त्म होकर मानव समाज में दुष्परिणाम दिखाई दे रहा है। इस मानव ने इस पृथ्वी को ही अलग-अलग देश, धर्म में बांट दिया, जिससे आनेवाली पीढ़ी को समाज में सिर्फ नकारात्मक पहलू ही दिखाई देंगे। इस गीत से यही संदेश मिलता है कि इस पूरे संसार में शांति की लौ को जलाए रखना है तो सभी धर्मों से पहले इंसानियत को ऊपर रखना होगा और तभी इस सृष्टि में मानवतावाद जीवित रहेगा।

भारत देश जिसे हिन्दुस्तान भी कहते हैं जिसमें विविध धर्म, संस्कृति, परंपरा हर दिशा से उपजती रहती हैं। इस देश की विशेषताएं बताते हुए कई फ़िल्म और गीत लिखे गए हैं। इसी विषय पर आधारित फ़िल्म 'हम हिन्दुस्तानी' सन् 1960 में आयी थी, जिसमें मज़हबों की पहचान को छोटा मानते हुए भारत के वासी का सबसे बड़ा परिचय उसका भारतीय कहलाना माना गया | इस गीत द्वारा राष्ट्र की एकता को मज़बूत करने का प्रयास किया गया | इस गीत के बोल थे-

'छोड़ो कल की बातें, कल की बात पुरानी
नए दौर में लिखेंगे, मिल कर नई कहानी
हम हिन्दुस्तानी, हम हिन्दुस्तानी
आज पुरानी ज़ंजीरों को तोड़ चुके हैं
क्या देखें उस मंज़िल को जो छोड़ चुके हैं
चाँद के दर पर जा पहुंचा है आज ज़माना
नए जगत से हम भी नाता जोड़ चुके हैं
नया ख़ून है नई उमंगें, अब है नई जवानी... हम हिन्दुस्तानी...'[५]

 ISSN : 2581-8848

इस गीत में अपने धर्म और अपनी जातियों के झूठे अहंकार की पुरानी बातों को पीछे छोड़ते हुए हमेशा आगे बढ़ते रहने की बात है | आने वाले भविष्य की चुनौतियों का सामना करने के लिए हमेशा तत्पर रहने की हेतु ऐसे गीत प्रेरणा देते हैं। आज हिन्दुस्तानवासियों ने धरती से लेकर आसमान तक विश्व के सभी स्थानों में अपना परचम लहराया है। आज का नया हिंदुस्तान अपनी पारंपरिक संस्कृति को साथ लेकर आगे की ओर बढ़ता ही जा रहा है | देश का युवा अपने ईमानदार व्यवहार और कड़ी मेहनत से अपने देश को सुरक्षित और ऊंचाइयों पर ले जा रहा है। देश के आधुनिक विकास में मुख्य भूमिका हिंदुस्तान के युवाओं द्वारा निभाई जा रही है और निस्वार्थ भाव से वे देश की सेवा भी कर रहे हैं। देवधर जी का मानना है कि गीतकार प्रेम धवन के गीत सुनते ही भारतवासियों के मन में जोश और उमंग पैदा हो जाती है, जिससे आनेवाली पीढ़ी को प्रेरणा मिलती है | इसी से बने नया हिंदुस्तान बनेगा।

डॉ. सुनील देवधर भारतीय देश को विविधता में एकता का संदेश देने वाले समाज के विविध रंग रूप, परंपरा उत्सव को महत्वपूर्ण मानते हैं। उत्सव जीवन को नए रंग, उमंग, आशाओं से भर देते हैं। इससे जीवन जीने का तरीका और भी अनोखा हो जाता है। फ़िल्म 'कोहिनूर' सन् 1960 में आयी थी, जिसमें गीत के बोल हैं-

‘तन रंग लो जी आजी मन रंग लो तन रंग लो
खेलो खेलो उमंग भरे रंग प्यार के ले लो
आज गली में रंग है बहार है
गली गली में रस की फुहार है
पिचकरियों में रंग भरा प्यार है
इस रंग में जीवन रंग लो
हो तन रंग लो मन रंग लो
रंग लो जी आजी मन रंग लो तन रंग लो...’[६]

इस गीत में होली त्योहार की विशेषताएं बताई गई हैं। ये उत्सव रंगों से भरा होता है, जो बुराई पर अच्छाई की जीत का संदेश देता है। यह गीत समाज में प्यार के रंग में भरते हुए लोगों को एक दूसरे से जोड़े रखता है। इस गीत के माध्यम से प्यार के रंग को चारों दिशाओं में फैलाने का सन्देश दिया है | देवधर जी कहते हैं कि मानव जीवन के दो पहलू होते हैं सुख और दुःख, जिससे कोई अछूता नहीं रहता है। कवि, शायर, गीतकार अपने जीवन से जुड़े किस्सों को रचना के माध्यम से व्यक्त करते हैं। यह रचना ज़िंदगी की अनकही बातों को बयाँ करती है। इसी से जुड़ी हुई फ़िल्म 'हम दोनों' सन् 1961 में प्रकाशित हुई, जिसमें साहिर लुधियानवी गीतकार के गीत के बोल हैं-

'मैं ज़िंदगी का साथ निभाता चला गया
हर फिक्र को धुएं में उड़ाता चला गया
बरबादियों को सोग मनाना फ़ज़ूल था
बरबादियों का जश्न मनाता चला गया
हर फ़िक्र को...’[७]

देवधर जी ने इस गीत में जीवन के हर एक मोड़ पर आनेवाले उतार-चढ़ाव को गहराई से बताने की कोशिश की है, जिससे हमें जीवन को गहराई से समझने की सीख मिलती है। यह गीत एक निराशा भरे जीवन को प्रकाश की ओर ले जाता है क्योंकि जीवन की समस्याओं में हम उलझे रहेंगे तो हम वहीं ठहर जाएंगे और उससे आगे बढ़ने का मार्ग दिखाई नहीं देगा। इसलिए इस गीत के एक-एक बोल में जीवन का यथार्थ छुपा हुआ है और इसी छुपे हुए अर्थ को देवधर जी हमेंअवगत कराते हैं | यह गीत जीवन को आगे बढ़ाने के लिए एक प्रेरणा देता है। देवधर जी कहते हैं कि ईश्वर ने इस संपूर्ण संसार को जिस डोर से बांध रखा है, उसका नाम है - प्रेम का बंधन। प्रेम ही एक मात्र साधन है, जो पूरे विश्व को जोड़े रख सकता है। प्रेम की भावना से हृदय में मानवता की भावना बनी रहती है। इसी विषय पर आधारित फ़िल्म 'आप की परछाइयां' सन् 1964 में आयी थी । इस फ़िल्म के गीत के बोल हैं -

‘मैं निगाहें तेरे चेहरे से हटाऊँ कैसे
लुट गए होश तो फिर होश में आऊँ कैसे
छा रही थी तेरी बिखरी हुई जुल्फों की घटा

तेरी आँखों ने पिला दी तो मैं पीता ही गया
तौबा-तौबा वो नशा है के बताऊँ कैसे...'[८]

समीक्षक देवधर जी कहते हैं कि फ़िल्म के गीतकार मेहंदी अली खान ने इस गीत से प्रेमी दिलों की अनकही आवाज़ को बुलंद किया है। इसे सुनते ही दर्शक मोहब्बत की इक ख़ूबसूरत और काल्पनिक दुनिया में खो जाते हैं | देवधर जी ने काम भावना को भी वह शक्ति माना है, जो त्याग, सहयोग को बढ़ावा देकर पारिवारिक और सामाजिक जीवन को खुशहाल बनाती है, जिससे भौतिक वातावरण में ख़ुशी और सकारात्मक ऊर्जा भर जाती है|

डॉ. सुनील देवधर के अनुसार प्राचीन समय से भारत देश में संतों के वचन, आस्था, भक्ति की परंपरा का विशेष मूल्य रहा है | संतों के विचार मंथन में सदैव विश्व के कल्याण की कामना रहती है और समाज में सुख, शांति बनाये रखने का संदेश समाया रहता है | यही सन्देश फ़िल्म सन १९६४ में 'संत ज्ञानेश्वर' में दिखाई दिया | गीत के बोल हैं -

'ज्योत से ज्योत जलाते चलो
प्रेम की गंगा बहाते चलो
राह में आये जो दीन दुखी
सब को गले से लगते चलो
जिसका ना कोई संगी साथी
ईश्वर है रखवाला
जो निर्धन है, जो निर्बल है
वो है प्रभु का प्यारा
प्यार के मोती लूटते चलो ज्योत से...'[९]

देवधर जी ने इस गीत में यही बताने की कोशिश की है कि एक संत अपने वचन से समाज में प्रकाश फैलाने का कार्य करता रहता | संत समाज से अंधकार ऊर्जा को मिटाकर प्रेम की भावना से सभी मानव जीव-प्राणी को समानता की दृष्टि से देखते हैं | संत ज्ञानेश्वर जिनमें अपार ज्ञान और भक्ति का अद्वितीय संगम था, उन्होंने अपने भक्ति आन्दोलनों से समाज को नयी दिशा देने का महत्वपूर्ण कार्य किया | इस गीत से मनुष्य के ह्रदय में समाज के प्रति सेवा की भावना जागृत होती है | ऐसे गीत सभी लोगों को समानता की दृष्टि से देखने के लिए प्रेरित करते हैं |

निष्कर्ष –

देवधर के अनुसार एक फ़िल्मी गीत समीक्षाक का दायित्व होता है कि समाज को गीत के बोलों के माध्यम से समय-समय पर जागृत करता रहे क्योंकि फ़िल्मी गीत के सन्देश ही एक ऐसा सशक्त माध्यम है जिससे समाज जल्दी ही प्रभावित होता है और उसका अनुकरण भी करता है | सुनील देवधर जी का फ़िल्मी गीत पर आधारित समीक्षात्मक साहित्य समाज को एक नया दृष्टिकोण देता है और चिंतन करने के लिए विवश करता है | वर्तमान समय में बदलते परिवेश में प्रेरणादायी गीतों की अत्यधिक आवश्यकता जान पड़ती है | देवधर जी कहते हैं कि इस आधुनिकीकरण से हम अपनी ही सांस्कृतिक परंपरा, सभ्यता और नैतिक मूल्यों को पीछे छोड़ते जा रहे हैं | इसका भौतिकी प्रभाव दिखाई देने लगता है, जिससे समाज में ऊंच और नीच की दीवार बढ़ती ही चली जाएगी | इसी दिवार को कम करने का कार्य फ़िल्मी गीतों के ज़रिये करना संभव हो सकता है | देवधर जी बताते हैं फ़िल्मी गीतों से ही सम्पूर्ण विश्व को एक सन्देश जाता है, जो समाज में मानवतावाद को बढ़ावा मिलता है और समाज को जीवन के वास्तविक उद्देश्य को जानने का मौका मिलता है |

सुनील देवधर जी ने अपने आकाशवाणी के कार्यक्रमों को साहित्य का रूप देकर उन अनमोल गीतों के बोलों पर सबका ध्यान आकर्षित करने की कोशिश किए हैं और उनके शब्दों के गहरे महत्व को समझने पर जोर दिया है | फ़िल्मी गीत ही एक ऐसा ज़रिया है, जिसे सुनकर व्यक्ति को सुकून और आनंद का अनुभव होता है | सुनील देवधर जी का समीक्षात्मक साहित्य फ़िल्मी गीतों के साहित्यिक योगदान को रेखांकित करता है | साहित्य समाज का आईना है तो फ़िल्में और उनके गीत समाज का वह चेतनाशील और प्रभावी प्रतिबिंब हैं, जो हमारे जीवन की दशा से तो हमारा परिचय कराती ही हैं, साथ ही उसे दिशा भी देती हैं | हमारी ज़िंदगी भी एक फ़िल्म की तरह ही है, जिसमें कभी सुख तो कभी दुःख दोनों पक्ष आते रहते हैं परन्तु हमें जीवन की कठिन परिस्थिति से जूझने की प्रेरणा भी इन्हीं गीतों से ही मिलती है |

ISSN : 2581-8848

संदर्भ ग्रंथ सूची

१ सुनील देवधर, 'बड़े अनमोल गीतों के बोल' (२०१७), बुकमार्क पब्लिकेशंस, पुणे, पृ. क्र. २०
२ वही पृ. क्र. २८
३ वही पृ. क्र. ३२
४ वही पृ. क्र. ४४
६ वही पृ. क्र. ५२
७ वही पृ. क्र. ५६
८ वही पृ. क्र. ६८
९ वही पृ. क्र. ७२

*****

हिंदी साहित्य में नवगीत का विकास और प्रवृत्तीयाँ

किशोरी सुरेश टोणपे
एम.ए.बी.एड, सेट,पी.एचडी (कार्यरत)
सहायक प्राध्यापक
दत्ताजीराव कदम आर्टस,सायन्स एण्ड
कॉमर्स कॉलेज, इचलकरंजी
मो. ९५०३२७५१८७
ई-मेल-kishoristonpe@gmail.com

सारांश –

आधुनिक काल में आकर काव्य परंपरा में जब हर 10-15 वर्षो अंतराल में कविता नये-नये नाम व वादों के घेरे में बंधकर अपनी पहचान करवाने लगी उसी दौर में गीत ने भी नयी कविता की शैली का नामकरण नवगीत करवा डाला। विद्वान लोग जिसप्रकार से छायावाद, प्रयोगवाद, नयी कविताएँ, अकविता, विचार कविता आदि के नामों को लेकर पारस्पारिक वैचारिक संघर्ष में जुटे हुए थे। उसी समय धीरे-धीरे अन्य नामों की भाँति नवगीत अपनी पहचान बना बैठा। कवि बिना बिंबो, प्रतिकों के ओर संवेगो की संश्लिष्टता, सूक्ष्मता के गीत को व्यक्त नहीं कर पाते आज का यही भाव सत्य नये गीतो में व्यक्त हो रहा है। नवगीतो में कवियो ने सुंदर नये गीतों की रचना की है इन गीतों की अनुभूति की सच्चाई, अनुभूति की अपनी-अपनी विशिष्टता, नवीन सौंदर्य बोध इन गीतो में स्पष्ट हुआ है। लोक जीवन की नयी छवियों को नये गीतो में समटने का प्रयास किया गया है। इस प्रकार नये में से ही अपने आपको अलग दिखाने की झोंक में आजकल गीत को नया नाम नवगीत देना आरंभ किया गया।

बीज शब्द- छायावाद ,प्रयोगवाद, नवगीत, अकविता, संश्लिष्टता, सूक्ष्मता, अनुभूति, सौंदर्य, छवियो, गीत, समेटना।

प्रस्तावना-

नवगीत, गीत लेखन की आधुनिक विधा है जिनका प्रचलन हिंदी साहित्य में छायावाद युग के उपरांत साठ के दशक में नयी कहानीयो के दोर के समांतर शुरू किया गया। नवगीत में गीत होना जरुरी है। यों तो किसी भी गाने योग्य शब्द रचना को गीत कह सकते है। लेकिन किसी एक ढाँचे में रची गयी समान पंक्तियों वाली कविता को किसी ताल में लयबद्ध करके गाया जा सकता हो तो वह गीत की श्रेणी में आती है। छंदबंध्द कोई भी कविता गायी जा सकती है पर उसे गीत नहीं कहा जा सकता।

शोध आलेख का विश्लेषण-

हिंदी साहित्य में नवगीत, नई कविता के समानांतर आधुनिक यथार्थ और सामाजिक विसंगतियो को लोकधुनों सरल भाषा और नए बिंबो के साथ व्यक्त करने वाली एक नवीन काव्यधारा है, जिसका विकास 1950 -60 के दशक से हुआ और रविंद्र भ्रमर और रमेश रंजक, शंभुनाथ सिंह, वीरेंद्र मिश्र जैसे कवियो ने इसे लोकप्रिय बनाया, जिसने गीत विधा को पुनर्जिवित किया और लोकमानस से जोडा। यह आधुनिक युग की काव्यधारा है। हिंदी साहित्य में गीतिकाव्य की परंपरा आदिकाल से ही रही है इसकी झलक विद्यापति, अमीर खुसरो की रचनाओं में देखने को मिलती है। भक्तीकाल के कवियों में इसका चरमोत्कर्ष देखणे को मिलता है खासकर कृष्णभक्त कवियों में सूरदास,नंददास, मीराबाई के पद गेय रहे है रीतिकाल में नृत्य, संगीत जैसे कलाओं का बहुमुखी विकास हुआ। यहाँ से भारतेंदू काल तक गीत परंपरा की जडो से पोषित रहे है। द्विवेदी युग की इतिवृतात्मकता की प्रवृत्ती ने कविता को गद्य रूप में स्वीकार, गेयता का अभाव इस काल में बना रहा किंतु प्रसाद,पंत,निराला और महादेवी ने सफल गीतों का लेखन किया।

नवगीत का विकास तीन कालखंडो में विभाजित कर देखा जा सकता है।

1) **प्रथम स्तर (1950 से 1960 तक)**

2) द्वितीय स्तर (1960 से 1970 तक)

3) तृतीय स्तर (1970 से अब तक)

प्रथम स्तर स्वतंत्र भारत में 'नवरोमा नियतत' से भर आशावादी और यथार्थोमुखता का रहा है। नये लेखकों की पिढी का यह दौर है, सामाजिक रुढीयों परंपराओं के प्रति आक्रोश, विद्रोह से भरा रहा है परिणामत: आधुनिकता का 'नवरोमा नियतता' का प्रभाव इस कालखंड में लिखे गये नवगीतो में दिखाई देता है।

ISSN : 2581-8848

द्वितीय स्तर बदलती नगरबोध की चेतना से भरा है, जिसमें जीवन में आयी यांत्रिकता, अजनबीपन, विसंगतीयाँ, संत्रास, कुंठा के साथ सहज ग्राम्य बोध पाया जाता है।

तृतीय स्तर जीवन यथार्थता, जीवन में बढता सामाजिक-राजनीतिक, अक्रांतता, लोकतंत्र का खोकलापण, परिवर्तन प्रति निराशा के साथ आपतकाल के आतंक से प्रभावित रहा है। मनुष्य मन आधुनिकता के कारण उभरकर आयी कुंठा,संत्रास, अजनबीपन, अनास्था, ऊब,घुटन, पारिवारिक विघटन तेजी से फैला नयी कविता की तरह नवगीत भी अस्तित्ववाद की अनुभूति का वैयक्तिक स्तर पर अनुभव कर रहा था उसी की अभिव्यक्ति सामाजिक रूप ले चुकी है।

सन 1950 के बाद गीत की चेतना में परिवर्तन आया और यह मान जाने लगा की गितों का स्वर नये जीवन और नयी प्रगती के प्रति आस्था और विश्वास का स्वर रहे है। इस नयी चेतना को देखते हुए ही ‘नया गीत’ ‘आज का गीत’ ‘आधुनिक गीत’ ‘नये गीत’ आदि विभिन्न नामों से उसे चिन्हित किया गया। नवगीत नाम सर्वप्रथम श्री राजेंद्र प्रसाद सिंह ने ‘गीतांगिनी’ के माध्यम से सन 1958 में प्रदान किया इन्ही की ‘आईना’ पत्रिका ने नवगीत को उर्वर भुमी दिलायी। सन 1958 में ही ‘लहर’ के संपादक प्रकाश जैन का कवितांक आया इसी में से गीत के नये तेवर का पता चलता है। संपादक महेंद्र शंकर की ‘वासंती’ द्वारा आयोजित ‘नये गीत: नये स्वर’ की श्रृंखला ने भी नवगीत को गति दी।

नवगीत अपनी सृजन प्रक्रिया में सदैव सजग एवं सक्रीय रहा है। अनेक विद्वानों ने उसे छायावाद और नयी कविता की गीत परंपरा को जोडनेवाला सेतू माना है। छायावादी गीत परंपरा के लिजलिजे, मांसल, मादक, गुद्दे, कल्पनामिश्रीत वैयक्तिकता की जमीन को छोडकर जीवन के नीरस नागरीकरण और यांत्रिक परिवेश-जिसमें बेगानापन, विघटन,अजनबिपन,घुटन, अनास्था, संत्रास, खीझ, पराजय, कुंठा का चित्रण था। ऐसे में नवगीत मात्र इन सारी चीजों को नकाराकर मानव के चेतनात्मक स्तर पर प्राकृतिक स्नेहिल आयामों द्वारा ऐसे समन्वय प्रस्तुत कर रहा था, जो मस्तिष्क को उदभव करता पैदा और साथ ही हृदय को रसाप्लावित भी।

नवगीत की विविध प्रवृत्तीयाँ रही है किंतु ग्राम जीवन अर्थात जमीन से जुडी यह विधा सशक्त रही है। इसी में उसका सामर्थ्य रहा है। वह किसी आयातीत विचार भूमी पर खडा नहीं है, वरना अधिकांश कविता, कविता आंदोलन, विदेशी वादों पर लिखी गयी है। **कुँवर बैचेन ने ‘पिन बहुत सारे’** में कहा है-

जिन्होंने खरीदी है।
दूर से, विदेशो से टूटी बैसाखियाँ
वे सब तो कहलाएँ
बुद्धिमान, तगडे, हम पुरे आदमी
अपने ही पाँव खडे
फिर भी तो घोषित है- लंगडे।

1) सामाजिक यथार्थ-

नवगीत यथार्थ के प्रति आग्रही रहा है। वस्तुतः दैहिक रोमान तथा काल्पनिक आयाम से मुक्त होकर आधुनिक जीवन के विसंगत पक्षो को अभिव्यक्त करने के पिछे यही यथार्थ बोध कां कर रहा था। दुसरी तरह से कहे तो यह की, नवगीत अपनी इसी प्रवृत्ती के चलते ‘नवगीत’ संज्ञा अर्जित कर रहा था। स्पष्ट है की नवगीत की संपूर्ण सौंदर्यमयता इस यथार्थ चित्रण के कारण ही निर्मित हुई तथा नवगीत साहित्य में अपना स्वतंत्र अस्तित्व कायम कर सका। **वीरेंद्र मिश्र ने ‘गीतम’** में इसे ही स्पष्ट किया है-

दूर होती जा रही कल्पना,
पास आती जा रही जिंदगी।

इसी तरह नवगीत पुराने भावबोध से निकलकर आधुनिक हो गया उसने जन-जन के साथ अर्थात समाज के साथ अपना रिश्ता कायम किया। इसी तरह वह सामाजिक यथार्थ के प्रति प्रतिबद्ध था यो कहे दयाबोध रखता है।

2) ग्राम बोध-

नवगीतकार प्राय: ग्राम जीवन के निकट रहा है। उसके प्रति अनुरक्त या कहे ‘मोहग्रस्त’ रहा है। गाँव इनके लिए ‘सांस्कृतिक ‘धरोहर’ रही है। ग्राम्य जीवन का आत्मीयतापूर्ण, पारिवारिक संदर्भो आदि को स्मृति के सहारे नवगीत में वह लाता है। जिस पर शहरीकरण के आक्रमण निरंतर हो रहे है। इसका मूल कारण आर्थिक दबाव है जिसके नगर में पूरे होने के अवसर अधिक

है। इसलिए गाँव के लोग शहर की तरफ भाग रहे है। नवगीतकार शहरजीवी है पर गाँव की मधुर स्मृति उसके मन में जिंदा है। वह लोगों को अगाह करता है_

"घर की किल्ल्त भूख-बिमारी
हँस कर सह जाना
भैया!
शहर नहीं आना।"
_ अनूप अशेष, नवगीत दशक

यह नवगीत का आधुनिक जीवन के प्रति आग्रह है। वह अपने जीवन में बदलाव चाहता है, अपनी सहभागिता की सही समझ पाना चाहता है।

3) नगर बोध-

नवगीत में शहर तमाम नकारात्मक मूल्यों के प्रतिक रूप में उभरकर आया है। सांस्कृतिक ऱ्हास, विघटन, पारिवारिक टूटन, नकलीपन, उदासी, बिखराव संबंधों का खात्मा, उपभोक्ता संस्कृति के जन्म, आर्थिकीकरण, शोषण, यंत्रणा, ऊब, घुटन,तनाव,अजनबीयत, अनैतिकता इत्यादि का कारण शहरीकरण को मानते हुए नवगीतकार ने अपने बोध को इसके खिलाप खडा कर दिया है, और सौंदर्य के उसे नये मानक का शोध किया है जो सिर्फ मानव के उल्लासित तथा मधूर संदर्भो से ही निर्मित नहीं होता वरन जीवन के दु:खात्मक पहलुओं को भी संस्पर्श करता है।

वस्तुतः नवगीत में शहर जीवन की संवेदनशिलता का भरपूर चित्रण आय है ग्राम की तुलना करते हुए नवगीतकारों ने नगर बोध की अभिव्यक्ती की है।

4) प्रकृति प्रेम-

गाँव प्रकृति का सम्मोहन नवगीतकारों में रहा है। जिस ग्रामीण जीवन से वह जुडा है उसी को गति का विषय न बनाया जाए, ऐसा होता नहीं। गाँव प्रति निष्ठा, सांस्कृतिक निष्ठा, परंपरा बोध के साथ प्रकृति प्रेम कई नवगीतकारों में है।

प्रकृति को स्वतंत्र विषय बनाकर उसका वर्णन रामदरश मिश्र, रविंद्र भ्रमर, रामनरेश पाठक, शंभूनाथ सिंह, ठाकुप्रसाद सिंह आदियों में पाया जाता है। उनके प्रकृति चित्रण में मन के उल्लास, संयोग-वियोग, हर्ष-उन्माद और रोमांटिकता अधिक मिलती है। शंभूनाथ सिंह का गीत माध्यम में **'कातिक की धरती'** का वर्णन आय है____

रोम रोम में छबि है छाँई,
त्रिवली सी है खींची हराई,
सोही सी रूप धुनाई,
अंग अंग से झरती
कातिक की धरती।

प्रकृति के विभिन्न रूपो का चित्रण इनमे पाया जाता है आलंबन, उद्दीपन, आलंकरण, मानवीकरण, प्रतिक आदि।

5) प्रणय बोध-

प्रकृति को माध्यम बनाकर प्रणय का चित्रण छायावादी की खास विशेषता है। निराला की 'जुही की कली' इसका उत्तम उदाहरण है, फिर भी निराला के गीत परंपरा का या कहे इसी प्रवृत्ती का प्रयोग नवगीतकारों ने किया है, किंतु ध्यान रहे इसका चित्रण छायावाद से नितांत भिन्न है प्रणय चित्रण में नवीनत, ताजगी, उत्फुल्लता, सहजता,स्वाभाविकता की ललक है।

नवगीत में जो नारी आती है वह सिर्फ 'देव' मात्र न होकर मानवीय भावनाओं का आधार भी है **राजेंद्र गौतम ने 'गीत पर्व आया है'** में लिखा है___

'देह कंचन की नहीं
वासना भींगी
तुम भावनाओं का,
मधुर आधार भी तो हो।'

आधुनिकता के दौर में बढते शहरीकरण में प्रणय संबंधों पर संशय खडे हो गये उस पर 'आर्थिक दबाव तथा भोगवादी आकर्षण ने आत्मीयता के क्षण को सीमित कर दिया है।

ISSN : 2581-8848

जहीर कुरेशी 'एक टुकडा धूप' की रचना 'एक नदी सागर से मिलकर गाना भूल गयी' इसी दरार को दर्शाती है_

'पत्नी निकली सुबह
शाम को दफ्तर से लौटी,
पति का नाईट शिफ्ट सात दिन में फिर से लौटी।

निष्कर्ष-

नवगीत साठोत्तरी हिंदी कविता की एक प्रमुख प्रवृत्ती है। नवगीत का प्रारंभ श्री राजेंद्र प्रसाद सिंह ने **'गीतांगिनी'** के माध्यम से सन 1958 में प्रदान किया नवगीत ने छायावाद के सरोकार के साथ-साथ नयी कविता को भी अपने स्नेह से लाभ पहुँचा कर उसे सहज बोधगम्यता से सहारा दिया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1) डॉ. गणपतीचंद्र गुप्त- हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास पृ.सं-246
2) डॉ.नगेंद्र- हिंदी साहित्य का इतिहास पृ.सं- 665
3) डॉ.शंभूनाथ चतुर्वेदी- आधुनिक कविता की भाषा-पृ. सं-157
4) डॉ.बच्चन- हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास पृ.सं- 450
5) राजेंद्र गौतम, गीत पर्व आया है, पृ.सं-66
6) https:/www.ijmra.us/project%20doc/2018/IJRS/NOVEMBER2018/
7) IJRSSNOV18SaritaGr.pdf

*****

इक्कीसवीं सदी के हिंदी सिनेमा गीतों में राष्ट्रीय चेतना

डॉ. सपना तिवारी (शोध निर्देशिका)
प्रोफ़ेसर, हिंदी
डी. आर. बी. सिंधु महाविद्यालय, नागपुर

चित्रा कटकवार (शोधार्थी)
राष्ट्र संत तुकडोजी महाराज,
नागपुर विश्वविद्यालय
हिंदी विभाग नागपुर
Chitra Katakwar 7@gmail.com

शोध सार:

हिंदी सिनेमा भारतीय समाज का एक प्रमुख सांस्कृतिक माध्यम रहा है, जो राष्ट्रीय भावनाओं को व्यक्त करने में सदैव अग्रणी रहा। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान फिल्मी गीतों ने क्रांतिकारी चेतना जगाई, जबकि स्वतंत्रता के बाद नेहरूवादी युग में एकता और विकास की भावना को बढ़ावा दिया। 21वीं सदी में वैश्वीकरण, आर्थिक उदारीकरण और डिजिटल क्रांति के प्रभाव से हिंदी सिनेमा में परिवर्तन आया, किंतु राष्ट्रीय चेतना गीतों में विभिन्न रूपों में जीवित रही। यह चेतना अब केवल सीमा रक्षा या युद्ध तक सीमित नहीं, बल्कि सामाजिक एकता, सांस्कृतिक गौरव, खेल भावना, पर्यावरण संरक्षण और सैन्य बलिदान जैसे विषयों में विस्तृत हुई है।

बीज शब्द: प्रतिबिंबित , बॉलीवुड, समसामयिक, आर्टिकल, सर्जिकल स्ट्राइक , समावेशी प्लेटफॉर्म, मल्टीप्लेक्स, मस्कुलर, राष्ट्रवाद

भूमिका :

इक्कीसवीं सदी का हिंदी सिनेमा, जिसे सामान्यतः बॉलीवुड के नाम से जाना जाता है, न केवल मनोरंजन का माध्यम रहा है, बल्कि यह भारतीय समाज की सामूहिक चेतना का आईना भी बन चुका है। स्वतंत्रता के बाद के दशकों में जहां सिनेमा ने राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, वहीं इक्कीसवीं सदी में वैश्वीकरण, डिजिटल क्रांति और राजनीतिक परिवर्तनों के दौर में यह राष्ट्रीय चेतना को पुनर्परिभाषित करने का सशक्त औजार बन गया है। राष्ट्रीय चेतना वह भावना है जो व्यक्ति को अपने राष्ट्र की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक पहचान से जोड़ती है, उसे एकजुट करती है और बाहरी चुनौतियों के प्रति सजग बनाती है। हिंदी सिनेमा इस चेतना को दृश्य-श्रव्य माध्यम के जरिए जन-जन तक पहुंचाता है, जहां फिल्में न केवल मनोरंजन प्रदान करती हैं, बल्कि राष्ट्रवाद, सामाजिक न्याय, सांस्कृतिक गौरव और समसामयिक मुद्दों को उकेरती हैं।

इक्कीसवीं सदी के हिंदी फिल्मी गीत राष्ट्रीय चेतना को भावनात्मक स्तर पर जन-जन तक पहुंचाते हैं। वैश्वीकरण के दौर में जहां पश्चिमी प्रभाव बढ़ा, वहीं गीतों ने भारतीयता को मजबूत किया। शोधकर्ता जैसे श्वेता घोष (2021) ने 1957-2019 के देशभक्ति गीतों का सामग्री विश्लेषण कर दिखाया कि कैसे ये गीत भावनात्मक और राष्ट्रीय भावनाओं को प्रतिबिंबित करते हैं। इसी प्रकार, बदलते राष्ट्रवाद पर 2000 के बाद का बॉलीवुड "मस्कुलर नेशनलिज्म" की ओर झुका, जहां सैन्य शौर्य और सांस्कृतिक गौरव प्रमुख हैं।

इक्कीसवीं सदी में हिंदी सिनेमा ने आर्थिक उदारीकरण के बाद वैश्विक बाजार में अपनी पैठ बनाई। 2000 के दशक से 'स्लमडॉग मिलियनेयर' (2008) जैसी फिल्मों ने अंतरराष्ट्रीय पहचान दिलाई, लेकिन साथ ही 'उरी: द सर्जिकल स्ट्राइक' (2019) जैसी फिल्मों ने घरेलू स्तर पर राष्ट्रवादी भावनाओं को प्रज्वलित किया। यह दौर ऐसा है जहां सिनेमा राजनीतिक एजेंडे से प्रभावित होता दिखता है, विशेषकर 2014 के बाद भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) के शासन में हिंदुत्व-प्रधान राष्ट्रवाद का उदय। फिर भी, 'आर्टिकल 15' (2019) जैसी फिल्में समावेशी राष्ट्रीयता की वकालत करती हैं। इस प्रकार, सिनेमा राष्ट्रीय चेतना का बहुआयामी दर्पण है, जो समाज को प्रतिबिंबित करता है और उसे आकार भी देता है।

राष्ट्रीय चेतना की अरणा और सिनेमा में उसकी अभिव्यक्ति

राष्ट्रीय चेतना की अवधारणा आधुनिक राष्ट्र-राज्य की नींव पर टिकी है। बेनेडिक्ट एंडरसन के अनुसार, राष्ट्र 'कल्पित समुदाय' (imagined community) है, जहां साझा इतिहास, भाषा और संस्कृति लोगों को एकजुट करती है। हिंदी साहित्य और सिनेमा में यह चेतना स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ी रही है। डॉ. रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक 'निबंध'में "राष्ट्रीय चेतना को 'राष्ट्र की आत्मा का जागरण' कहा है, जहां व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत पहचान को राष्ट्रीय हितों में विलीन कर देता है।" **(१)**

ISSN : 2581-8848

सिनेमा के संदर्भ में, सुमिता एस. चक्रवर्ती की पुस्तक National Identity in Indian Popular Cinema, 1947-1987 में राष्ट्रीय पहचान को फिल्मों के माध्यम से 'सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व' के रूप में परिभाषित किया गया है। "राष्ट्रीय चेतना फिल्मों में प्रतीकों, नायकों और संघर्षों के जरिए व्यक्त होती है, जो दर्शकों को राष्ट्र से भावनात्मक रूप से बांधती है। " **(२)**

हिंदी सिनेमा में राष्ट्रीय चेतना का विकास स्वतंत्रता पूर्व से ही दिखता है, लेकिन इक्कीसवीं सदी में यह अधिक जटिल हो गया। कुमार भास्कर की पुस्तक राष्ट्रीयता और हिन्दी सिनेमा में इसे 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' के रूप में देखा गया है, जहां फिल्में राष्ट्र की एकता को मजबूत करने के साथ-साथ वैश्विक चुनौतियों का सामना करने की प्रेरणा देती हैं। लेखक लिखते हैं, "राष्ट्रीय चेतना वह मानसिक अवस्था है जो व्यक्ति को अपने राष्ट्र की सीमाओं, मूल्यों और संघर्षों से जोड़ती है, और सिनेमा इसका सबसे प्रभावी माध्यम है क्योंकि यह दृश्य भाषा के जरिए भावनाओं को जगाता है "। **(३)**

इसी प्रकार, गौतम कर्माकर और पिप्पा कैटरेल की संपादित पुस्तक Nation, Nationalism and Indian Hindi Cinema में १९८० से २०२० के दशक की फिल्मों के विश्लेषण से पता चलता है कि राष्ट्रीय चेतना अब 'मस्कुलिन राष्ट्रवाद' (muscular nationalism) से जुड़ गई है, जहां सैन्य कार्रवाइयां और ऐतिहासिक पुनर्रचना प्रमुख हैं। परिचय में कहा गया है, "हिंदी सिनेमा राष्ट्रवाद को दृश्य रूप से प्रस्तुत करता है, जो दर्शकों की चेतना में गहराई तक उतर जाता है"। **(४)**

इक्कीसवीं सदी में यह चेतना हिंदुत्व के प्रभाव से प्रभावित हुई। अजय गेहलावत की Bollypolitics: Popular Hindi Cinema and Hindutva में हिंदुत्व को 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का नया रूप' कहा गया है, जहां फिल्में राजनीतिक एजेंडे को बढ़ावा देती हैं। लेखक के अनुसार, "राष्ट्रीय चेतना अब बहुसंख्यक हिंदू पहचान पर केंद्रित हो गई है, जो अल्पसंख्यकों को हाशिए पर धकेलती है, लेकिन कुछ फिल्में समावेशी दृष्टिकोण अपनाती हैं"। **(५)**

इक्कीसवीं सदी में हिंदी सिनेमा का परिवर्तन और राष्ट्रीय चेतना का विकास

इक्कीसवीं सदी की शुरुआत में हिंदी सिनेमा ने वैश्विक बाजार को अपनाया। मल्टीप्लेक्स संस्कृति, ओटीटी प्लेटफॉर्म्स और अंतरराष्ट्रीय सहयोग ने गीत-संगीत को विविध बनाया। फिर भी, राष्ट्रीय चेतना कमजोर नहीं पड़ी। 1990 के दशक से शुरू हुई राष्ट्रवादी लहर 2000 के बाद मजबूत हुई। फिल्में जैसे लगान (2001), स्वदेश (2004), रंग दे बसंती (2006), चक दे इंडिया (2007), रंगीला राष्ट्रीय (2008), उरी: द सर्जिकल स्ट्राइक (2019), केसरी (2019), शेरशाह (2021) और सम्राट पृथ्वीराज (2022) ने गीतों के माध्यम से राष्ट्रीय गौरव को उभारा।

इक्कीसवीं सदी का राष्ट्रवाद नेहरूवादी समाजवाद से बदलकर "हिंदुत्व" प्रभावित मस्कुलर राष्ट्रवाद की ओर गया। ए.आर. रहमान, प्रसून जोशी, मनोज मुंतशिर जैसे कलाकारों ने पारंपरिक धुनों को आधुनिक संगीत से जोड़कर राष्ट्रीय भावना को वैश्विक बनाया। वैश्वीकरण के बावजूद, गीतों में भारत की विविधता में एकता, बलिदान और गौरव की थीम प्रमुख रही। हाल के वर्षों में पुलवामा हमला (2019) और सर्जिकल स्ट्राइक जैसे घटनाओं ने गीतों में सैन्य राष्ट्रवाद को बढ़ावा दिया।

प्रमुख गीतों का विश्लेषण

21वीं सदी के हिंदी फिल्म गीतों में राष्ट्रीय चेतना विभिन्न रूपों में प्रकट हुई है। इन्हें निम्नलिखित श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

1. सांस्कृतिक और भावनात्मक राष्ट्रवाद

मां तुझे सलाम (वंदे मातरम, 1997; लेकिन 21वीं सदी में अत्यधिक लोकप्रिय): ए.आर. रहमान का संगीत और मेहबूब के बोल। "मां तुझे सलाम" भारत को मातृभूमि के रूप में चित्रित करता है। यह गीत राष्ट्रीय आयोजनों में बजता रहा, विविधता में एकता का प्रतीक बना।

ये जो देश है तेरा (स्वदेश, 2004): रहमान का संगीत, जावेद अख्तर के बोल। यह गीत एनआरआई को भारत लौटने की प्रेरणा देता है, राष्ट्र को व्यक्तिगत जीवन से जोड़ता है। वैश्वीकरण के दौर में यह भारतीयता की याद दिलाता है।

2. युवा जागरण और क्रांति

रंग दे बसंती (रंग दे बसंती, 2006): रहमान का संगीत, प्रसून जोशी के बोल। "खूब लड़ी मर्दानी…" जैसी पंक्तियां भगत सिंह जैसे क्रांतिकारियों को वर्तमान भ्रष्टाचार से जोड़ती हैं। यह गीत युवाओं में विद्रोह की चेतना जगाता है, राष्ट्र को सुधारने की प्रेरणा देता है। मेरा रंग दे बसंती चोला (द लेजेंड ऑफ भगत सिंह, 2002): रहमान का संगीत। यह क्रांतिकारी गीत स्वतंत्रता सेनानियों के बलिदान को याद दिलाता है।

3. खेल और राष्ट्रीय एकता

चक दे इंडिया (चक दे इंडिया, 2007): सलीम-सुलेमान का संगीत, जावेद अख्तर के बोल। महिलाओं की हॉकी टीम के माध्यम से लिंग, धर्म और क्षेत्रीय भेदभाव से ऊपर उठकर राष्ट्रीय एकता का संदेश। यह गीत खेल को राष्ट्र गौरव से जोड़ता है।

सैन्य शौर्य और बलिदान

तेरी मिट्टी (केसरी, 2019): अरको का संगीत, मनोज मुंतशिर के बोल। "तेरी मिट्टी में मिल जावां" सैनिकों के बलिदान को समर्पित। पुलवामा हमले के बाद यह गीत राष्ट्रीय भावना का प्रतीक बना, मस्कुलर राष्ट्रवाद को दर्शाता है।

4. ऐ वतन (राज़ी, 2018): शंकर-एहसान-लॉय का संगीत, गुलजार के बोल, अरिजीत सिंह की गायकी। जासूसी थ्रिलर में यह गीत व्यक्तिगत बलिदान को राष्ट्र से जोड़ता है।

संदेशे आते हैं (बॉर्डर, 1997; लेकिन इक्कीसवीं सदी में कारगिल और अन्य घटनाओं से प्रासंगिक): यह गीत सैनिकों की परिवार से दूरी और बलिदान को व्यक्त करता है।

जय हिंद (उरी, 2019): सर्जिकल स्ट्राइक की वीरता को उजागर।

5. देश मेरे (द वैक्सीन वॉर, 2023): कोविड योद्धाओं को समर्पित, राष्ट्रीय सेवा की नई परिभाषा।

मिले सुर मेरा तुम्हारा (रीमेक संस्करण, विभिन्न फिल्मों में): एकता का प्रतीक।

ये गीत दिखाते हैं कि 21वीं सदी में राष्ट्रीय चेतना युद्ध से आगे बढ़कर सामाजिक न्याय, महिला सशक्तिकरण, वैज्ञानिक प्रगति और सैन्य गौरव तक पहुंची।

निष्कर्ष

इक्कीसवीं सदी के हिंदी सिनेमा गीत राष्ट्रीय चेतना को जीवंत और प्रासंगिक बनाए रखते हैं। वैश्वीकरण और डिजिटल युग में ये गीत जनता में मातृभूमि प्रेम, एकता और बलिदान की भावना जगाते हैं। राष्ट्रवाद की परिभाषा नेहरूवादी समावेशीता से मस्कुलर और सांस्कृतिक गौरव की ओर विकसित हुई है। ये गीत न केवल मनोरंजन करते हैं, बल्कि समाज को दिशा देते हैं और राष्ट्रीय एकता को मजबूत करते हैं। भविष्य में ओटीटी और वैश्विक प्लेटफॉर्म्स से यह चेतना और विस्तारित होगी, किंतु समावेशी राष्ट्रवाद की आवश्यकता बनी रहेगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

१. शर्मा , रामविलास - निबंध, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष १९५० (पुनर्मुद्रण २००५), पृष्ठ १२३।

२. एस, सुमिता चक्रवर्ती, 'National Identity in Indian Popular Cinema', 1947-1987, यूनिवर्सिटी ऑफ टेक्सास प्रेस, ऑस्टिन, प्रकाशन वर्ष १९९३, पृष्ठ ५।

३. भास्कर, कुमार, 'राष्ट्रीयता और हिन्दी सिनेमा', संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष २०२४, पृष्ठ १०।

४. कर्माकर ,गौतम एवं पिप्पा कैटरेल (संपा.), ' Nation, Nationalism and Indian Hindi Cinema' , रूटलेज, लंदन, प्रकाशन वर्ष २०२५, पृष्ठ १।

५. गेहलावत, अजय , 'Bollypolitics: Popular Hindi Cinema and Hindutva,' ब्लूम्सबरी एकेडमिक, लंदन, प्रकाशन वर्ष २०२४, पृष्ठ २०।

६. आलोक पांडे, सिनेमा आजकल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष २००७,

७. Ghosh, Shweta. (2021). "A Content Analysis of Famous Hindi Patriotic Film Songs, 1957-2019". Academia.edu.

८. "बदलते सिनेमा का बदलता राष्ट्रवाद". (2018). ResearchGate.

९ . "The Songs of Resistance: Textual Analysis of the Patriotic Hindi Film Songs". (2024). ResearchGate.

१०. अपनी माटी जर्नल. विभिन्न शोध आलेख हिंदी सिनेमा और राष्ट्रवाद पर।

*****

ISSN : 2581-8848

‘दुष्यंत’ के बाद की गज़लों में राजनैतिक परिदृश्य

प्रा. विक्रम सखाराम राजवर्धन
डॉ. प्रा.विश्वनाथ महादू देशमुख
राजाराम महाविद्यालय,कोल्हापुर
मो. 9423618380
Email-vikisr6393@gmail.com

सारांश

दुष्यंत कुमार उर्दू और हिंदी के महानतम गज़लकार रहे हैं जिस होड़ से उन्होंने लेखन किया है, वह प्रवाह आगे भी चलाता रहा है। गज़ल अपना एक विशेष स्थान रखती है। इस शोध पत्र में दुष्यंत कुमार के बाद जो गज़लकार रहे हैं उनके गज़लों में राजनैतिक परिदृश्य की चर्चा की है जिसमें बेकरी, आतंकवाद, भूख, शिक्षा जैसे मुद्दों को छोड़कर दूसरे मुद्दों को महत्व देनेवाले राजनेता प्रजातंत्र की लुटती मत पेटियां जैसे विषय की चर्चा की है।

बीज शब्द

गजल, उर्दू, राजनैतिक, परिदृश्य

प्रस्तावना

भाषा समाज का दर्पण है और उसकी विधा के माध्यम से हम समाज का चित्र पूरा करते हैं। उसमें कहानी, उपन्यास, कविता, निबंध, रिपोर्ताज और गज़ल इनके जरिए समाज का चित्रण हम करते हैं। गज़ल भी एक ऐसी विधा है जो समाज में चले भले बुरे का अंकन करती है। मानव को समाज को, देश को सीधा या आदर्श नागरिक बनाने का काम करती है। 'मोइन अख्तर अंसारी’ लिखते हैं "हिंदुस्तान में गज़ल साहित्य की गौरवशाली परंपरा रही है सदियों से गज़ल खासो-आम को प्रभावित करती आ रही है। प्रारंभ में तो फारसी-अरबी में ही गज़लें कही गई, मगर धीरे-धीरे काल और परिवेश के अनुसार गज़ल ने स्वयं को ढाल लिया, यानि आम बोल-चाल की भाषा में गज़लें कहीं जाने लगी जिन्हें लोगों ने सर आंखों पर बैठाया"1 गज़ल मूलतः फारसी शब्द है जिसका अर्थ है 'मोहब्बत के जज्बातों' को स्पष्ट करना या प्रेमिका से वार्तालाप। "निसंदेह गजल एक आयातित विधा है इसने अरब से चलकर ईरान होते हुए भारत की यात्रा की है।"2 भारत में उर्दू और फारसी साहित्यकारों ने उसे अभय दिया उर्दू ने लौकिक प्रेम वह फारसी ने परलौकिक प्रेम गज़ल के जरिए लोगों में पहुँचाने का काम किया भारत में ‘अमीर खुसरो’ का गज़ल में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। "प्रोफेसर सिराजुद्दीन अजहर के संग्रह में सुरक्षित तेरावी हिजरी के प्रारंभ में लिखी गई ग़ज़ल को हिंदी की प्रथम गज़ल होने का गौरव प्राप्त हुआ इस ग़ज़ल के शोधकर्ता मोहम्मद सिरानी है।"3

हिंदी की गज़ल को सशक्त करने का काम शंभूनाथ शेष, बलबीर सिंह ‘रंग निराला’, हरि कृष्ण प्रेमी ‘नीरज’, रामदरश मिश्र, अखलाफ सागरी, राम अवतार त्यागी, चिरंजीत, बाल स्वरूप ‘राही’, कृष्ण कुमार कौशिक ‘हृदय’, महेंद्र ‘हुमा’, दुष्यंत कुमार, शेर जंग गर्ग, पुरुषोत्तम प्रतीक ‘प्रतीक’ आदि गज़लकारों ने हिंदी में गज़ल आम आदमी तक पहुंचाने का काम किया।
विधा किसी भी भाषा की हो लेकिन जो अच्छा है उसका स्वीकार करके उसका पोषण करना भारतीय संस्कृति है, इसका भी परिचय यहाँ होता है

“दुष्यंत कुमार के बाद हिंदी गज़ल ने कई सशक्त हस्ताक्षर दिए हैं। जिनकी गज़लें कथ्य ही नहीं शिल्प की दृष्टि से भी बेजोड़ है। बहुत सारे लोग हिंदी में गज़ल लिख रहे हैं। नए-नए भाव से युक्त उनकी रचनाएं प्रभावित करती है। एक अच्छी बात है यह है कि गज़ल के शिल्प को लेकर भी आज का गज़लकार सचेत हो रहा है और अपने पूर्वाग्रह से मुक्त होकर इस दिशा में सोचने लगा है।"4

हिंदी की गज़ल प्रेमिका के चक्रव्यूह से निकलकर आम जनता की आवाज बनी है। समाज में कुंठा, भ्रष्टाचार, अमीर-गरीबी भेद, जात-पात, नारी, समाज, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक जैसे विषयों को अपना स्वर बनाया है।

राजनीतिक परिदृश्य

गज़लकार ‘चंद्रसेन विराट’ अपनी ग़ज़ल में लिखते हैं।

"कवि आवाज लगाते रहना
समय कठिन है गाते रहना
देश, समाज नहीं सो जाए

 ISSN : 2581-8848

जगना और जगते रहना
राजनीति भूलें न नीति का
पाठ सतत दोहराते रहना।"5

प्रजातंत्र में विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका और मीडिया ये स्तंभ है और रचनाकार भी समाज में पत्रकार की तरह सरकार पर नजर रखता है और जवाब दे ही राजनेता या सरकार को जगाने का काम करता है।

'रमेश महेश्वरी' अपने गजल में सरकार को सतर्क कर रहा है। वह कहता है कि समाज में जो नंगे, भूखे हैं जिनके विकास के लिए तुम बैठे हों उनके हक उनतक पहुँचा दो नहीं तो एक दिन इंकलाब हो जाएगा।

हमारे लोकतंत्र में विकास के नाम पर सरकार योजनाएं बनती है, लेकिन लोगों तक पहुंचती नहीं। वह ठेकेदार और नेता फरेबी कर रहे हैं यही इस ग़ज़ल में है।

"कैद मंत्रालय में कब तक रखोगे जम्मूर को
इन गुलामी के लहू में कुछ उबाल आने तो दो
झूठ, मक्कारी, फरेबी लूट, खुद होगी खामोश
बेजुबानों की जुबांह को बोलना आने तो दो
देखते ही देखते खुद इंकलाब हो जाएगा
नंगे भूके जाहिलों तक उनका हक जाने तो दो।"6

सामान्य लोगों में जब असंतोष की भावना जागती है, तो विद्रोह है निश्चित है। बांग्लादेश, श्रीलंका जैसे देशों में संसद पर हमले हो रहे हैं।

ग़ज़लकार 'गणेशदत्त सारस्वत' अपने एक शेर में लिखते हैं

"महंगाई की इस मार ने है तोड़ दी कमर
आश्वासनों का लेप लगाए हुए हैं लोग।"7

ग़ज़लकार लिखता है अपनी जुबा लेकिन वह समाज का चित्रण होता है। आज भी महंगाई बड़ी है लोगों की कमर तोड़ी है, सरकार आश्वासनों की बौछार कर रहा है, उसका लेप लोगों ने लगाया है, ऐसा कई का मानना है आज भी ऐसी स्थिति है और यह कविता समकालीन लगती है।

कवि ओमप्रकाश मिश्रा 'कंचन' लिखते हैं
"अर्थ ही रह गया क्या चुनाव का जब
लूटती मत पेटियां है प्रजातंत्र में
देश की दुर्दशा के लिए दोस्तों
दोषी सब पार्टियाँ है प्रजातंत्र में।"8

ग़ज़लकार का मानना है कि, हमारे देश में प्रजातंत्र आ गया है, हमें वरदान मिला है। लेकिन जब चुनाव आते हैं तो मत पत्तियां की चोरी होती है, जो देश की दुर्दशा है उसकी जिम्मेदार यह पार्टियाँ है जो विकास देश का नहीं खुद का करती है।

'ब्रह्मजीत गौतम' लिखते हैं
"सारी चर्चा धरी रह गई
संसद में धींगा मस्ती है
अग में जग में पग पग देखो
महंगाई कितनी सस्ती है।"9

'ब्रह्मजीत गौतम' आम आदमी के पक्ष में खड़े हैं। वह महंगाई कितनी सस्ती है क्योंकि हमारे सांसद है, वह संसद में मस्ती कर रहे हैं। विकास के मुद्दों को छोड़कर ऐतिहासिक नेताओं की कमियां निकालने में वक्त जाया कर रहे हैं। ना बेकारी की बहस है, न आतंकवाद पर चर्चा, न किसानों की फसल को भाव देने की चर्चा। जो महंगाई बढ़ती जा रही है उसे पर न बस है ना कुछ उपाय यह गजल समकालीन है जो आज के सांसद का भी चित्र यहां स्पष्ट हो रहा है।

'डॉ. अदम गोंडवी' लिखते हैं
"पैसों से आप चाहे सरकार गिरा दे

 ISSN : 2581-8848

संसद बदल गई है यहां की नखाश में
जनता के पास एक ही चार है बगावत
यह बात कर रहा हूं मैं होशहवास में।"10

गज़लकार राजनेताओं के स्वार्थिपन का पर्दाफाश करते हैं। पिछले 10 सालों में जो भारतीय राजनीति में उथल-पुथल मच गई है। उसका भी चित्रण इस ग़ज़ल में है लेकिन जनता ऐसे नेताओं से बगावत करने की आशा गज़लकार रखता है।

निष्कर्ष

गज़लकार दुष्यंत के बाद गजलों में सामाजिक राजनीतिक परिवेश का चित्रण होता रहा है समाज के अनेक पहलुओं पर प्रकाश डाला गया। कृषि, गरीबी, बेकारी, भूख, शिक्षा आदि पर प्रखरता से कलम चलाई है।

संदर्भ सूची

1) मोइन अख्तर अंसारी, गजल दुष्यंत के बाद, संपादक दीक्षित दनकौरी, प्राक्कथन
2) www.shabdbrama.com 17 जनवरी 2017 पृष्ठ 26 उपासना दीक्षित
3) www.shabdbrama.com 17 जनवरी 2017 पृष्ठ 26 उपासना दीक्षित
4) आर. पी. शर्मा महर्षि, आलेख गजल दुष्यंत के बाद, संपादक दीक्षित दनकौर, पृष्ठ XIII
5) चंद्रसेन विराट, गजल दुष्यंत के बाद, संपादक दीक्षित दनकौरी वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ 73
6) रमेश माहेश्वरी, गजल दुष्यंत के बाद, संपादक दीक्षित दनकौरी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ 49
7) गणेश दत्त सारस्वत, गजल दुष्यंत के बाद, संपादक दीक्षित दनकौरी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ 69
8) ओम प्रकाश मिश्रा 'कंचन', गजल दुष्यंत के बाद, संपादक दीक्षित दनकौरी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ 71
9) ब्रह्मजीत गौतम, गजल दुष्यंत के बाद संपादक दीक्षित दनकौरी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ 91
10) अदम गोंडवी, समय से मुठभेड़, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ 71

*****

हिंदी फिल्मी गीतों में चित्रित स्त्री विमर्श

हणमंत परगोंडा कांबळे
शोधछात्र,
हिंदी विभाग,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर
मो. नं. 9579728080
kamblehp4@gmail.com

सारांश :

हिंदी सिनेमा भारतीय समाज का सशक्त सांस्कृतिक माध्यम रहा है और उसके गीत सामाजिक चेतना के संवाहक के रूप में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मेरे इस शोधालेख में हिंदी फिल्मी गीतों के माध्यम से उभरने वाले स्त्री विमर्श का विश्लेषण किया गया है। फिल्मों के माध्यम से स्त्री की छवि विभिन्न कालखंडों में बदलती रही है। प्रारंभिक हिंदी फिल्मों में स्त्री को प्रायः त्याग, सहनशीलता और पारंपरिक मर्यादाओं तक सीमित रूप में प्रस्तुत किया गया। गीतों में वह प्रेमिका, पत्नी या माँ के रूप में आदर्शीकृत रही। लेकिन समय के साथ-साथ, गीतों में स्त्री की स्वतंत्र चेतना, आत्मसम्मान और सामाजिक अन्याय के प्रति विरोध के स्वर स्पष्ट होने लगे। आधुनिक हिंदी फिल्मी गीतों में स्त्री को निर्णय लेने वाली, संघर्षशील और आत्मनिर्भर व्यक्तित्व के रूप में उकेरा गया है। हिंदी फिल्मी गीत समाज में स्त्री की बदलती भूमिका और स्त्री विमर्श के विकास को प्रतिबिंबित करते हैं। इस प्रकार, फिल्मी गीत स्त्री चेतना के सामाजिक प्रसार और संवेदनशील विमर्श को सशक्त करने में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

बीज शब्द : हिंदी फिल्मी गीत, स्त्री विमर्श, समाज और संस्कृति, सशक्तिकरण, भावनात्मक निर्भरता, स्वतंत्रता और आत्मसम्मान

प्रस्तावना :

भारतीय समाज में सिनेमा केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं है, बल्कि वह सामाजिक, सांस्कृतिक और वैचारिक चेतना का सशक्त दर्पण भी है। हिंदी सिनेमा, जो देश के सबसे प्रभावशाली सांस्कृतिक माध्यमों में से एक है, अपने गीतों के माध्यम से समाज के विचारों, मूल्यों और संवेदनाओं को व्यापक स्तर पर अभिव्यक्त करता रहा है। फिल्मी गीत जनमानस तक सरल, भावनात्मक और प्रभावी ढंग से पहुँचते हैं, इसलिए उनका सामाजिक प्रभाव अत्यंत व्यापक और गहरा होता है। स्त्री विमर्श आधुनिक साहित्य और सामाजिक चिंतन का एक महत्वपूर्ण आयाम है, जो स्त्री की पहचान, अधिकार, असमानता, संघर्ष और सशक्तिकरण से जुड़े प्रश्नों को केंद्र में रखता है। हिंदी फिल्मी गीतों में स्त्री की प्रस्तुति समय के साथ बदलती रही है। हिंदी फिल्मी गीतों के माध्यम से स्त्री की छवि केवल प्रेमिका या त्यागमयी पत्नी तक सीमित नहीं रही, बल्कि वह एक संवेदनशील, सोचने-समझने वाली और संघर्षशील सामाजिक इकाई के रूप में उभरती है। अनेक गीतों में स्त्री की चुप पीड़ा, सामाजिक अन्याय, आर्थिक निर्भरता और पितृसत्तात्मक दबावों को स्वर दिया गया है। आगे चलकर, विशेषकर समकालीन सिनेमा में, स्त्री अपनी स्वतंत्र पहचान, आत्मसम्मान और निर्णय-क्षमता के साथ सामने आती है।

स्त्री विमर्श की अवधारणा :

स्त्री विमर्श वह वैचारिक प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत स्त्री की सामाजिक स्थिति, पहचान, अधिकार, असमानता और संघर्ष का विश्लेषण किया जाता है। इसका उद्देश्य पितृसत्तात्मक व्यवस्था द्वारा स्थापित उन धारणाओं और संरचनाओं पर प्रश्न उठाना है, जो स्त्री को दोयम दर्जे का मानती हैं। स्त्री विमर्श स्त्री को केवल सहनशील या त्यागमयी भूमिका में नहीं, बल्कि एक स्वतंत्र, सोचने-समझने वाली और निर्णय लेने वाली सामाजिक इकाई के रूप में स्थापित करता है। स्त्री के संदर्भ में सिमोन द बुआवर लिखती "कोई महिला के तौर पर जन्म नहीं लेता बल्कि उसे बनाया जाता है।"[1] यह अवधारणा समानता, आत्मसम्मान, स्वतंत्रता और न्याय की पक्षधर है तथा समाज में स्त्री के सशक्तिकरण की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

विषय विवेचन:

पारंपरिक मातृत्व और परिवार-केंद्रित भूमिका

प्रारंभिक हिंदी फिल्मी गानों में स्त्री पात्रों की पहचान प्रमुख रूप से परिवार और मातृत्व के संदर्भ में की किया जाता था। जैसे की 19957 में प्रदर्शित हुई फिल्म 'मदर इंडिया' के "दुख भरे दिन बीते रे भाई"[2] गीत में मातृत्व की महिमा और परिवार के प्रति निष्ठा को प्रमुख रूप से दर्शाया गया है। इस गाने में स्त्री का समाज में मूल्य मुख्य रूप से उसके परिवार और बच्चों के प्रति

समर्पण में निहित है। इस गीत में नारी का जीवन संघर्ष, बलिदान और जिम्मेदारी से भरा हुआ है। इस प्रकार के गीत दर्शकों को यह संदेश देते थे कि महिला की भूमिका केवल परिवार और पति/संतान के लिए है। इस समय के समाज में महिला के व्यक्तित्व और इच्छाओं की स्वतंत्रता सीमित थी। यह गीत स्त्री विमर्श के उस पहलू को दर्शाते हैं जिसमें महिला की पहचान उसकी पारिवारिक जिम्मेदारियों के अनुसार होती थी।

प्रेम और विवाह की इच्छाएँ

इस श्रेणी के गीत महिलाओं की प्रेम और विवाह संबंधी इच्छाओं को उजागर करते हैं। सन 1995 में आयी फिल्म "तुझे देखा तो ये जाना सनम"[3] इस गीत में महिला पात्र अपनी भावनाओं को स्वतंत्र रूप से व्यक्त करती है। यह गीत यह संकेत देता है कि आधुनिक महिला भी प्रेम में अपनी इच्छाओं को प्राथमिकता देती है और समाज के अपेक्षित आदर्शों से परे अपने भावों का पालन करती है। फिल्मों में प्रेम और विवाह की इच्छा न केवल व्यक्तिगत भावनाओं का प्रतीक है, बल्कि समाज में महिलाओं की सीमित स्वतंत्रता को भी उजागर करता है। गीतों के माध्यम से यह दिखाया गया है कि प्रेम और विवाह से जुड़ी भावनाएँ स्त्री की पहचान और सामाजिक भूमिका दोनों को प्रभावित करती थीं।

स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता

आधुनिक हिंदी फिल्मी गीतों में स्त्री पात्रों को स्वतंत्र और आत्मनिर्भर दिखाया गया है। 'नीरज' (2016) फिल्म के "जीते है चल"[4] इस गाने में महिला अपने जीवन के निर्णय लेने में स्वतंत्र है और अपने व्यक्तित्व को खुलकर व्यक्त करती है। गीत की ऊर्जा और बोल स्त्री पात्र की आत्मनिर्भरता और आत्मविश्वास को प्रमुखता देते हैं। इस गाने में महिला पात्र को सशक्त, निर्णायक और स्वतंत्र रूप में चित्रित किया गया है। यह दर्शाता है कि अब फिल्में महिलाओं को केवल पारिवारिक या प्रेम-केंद्रित नहीं दिखातीं, बल्कि उनके सामाजिक और व्यक्तिगत निर्णयों में सक्रिय भूमिका को भी महत्व देती हैं।

सामाजिक संघर्ष और असमानता

कुछ फिल्मी गीत महिलाओं के सामाजिक संघर्ष और असमानता को प्रमुख रूप से प्रस्तुत करते हैं। 'सत्यमेव जयते' शो का "ओ री चिरैया"[5] यह गीत महिला पात्र समाज में न्याय और समान अधिकार के लिए खड़ी होती है। यह गीत यह संदेश देता है कि महिलाएं अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने में सक्षम हैं और उन्हें समाज में समान स्थान की मांग करने का अधिकार है। यह गीत स्त्री विमर्श के उस पहलू को उजागर करता है जिसमें महिलाओं को सामाजिक असमानताओं और पारंपरिक नियमों के विरोध में अपनी पहचान बनानी पड़ती है।

यौनिकरण और वस्तुवाद

आधुनिक हिंदी फिल्मों में कई बार महिला पात्रों का चित्रण यौनिक और वस्तुवादी रूप में किया जाता है। सन 2012 में प्रदर्शित फिल्म 'अइय्या' के"ड्रीमम वेकपअम"[6] इस गाने में महिला पात्र को आकर्षक और सजावटी रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो पुरुष दर्शकों की आँखों के लिए एक दृश्यात्मक आनंद का साधन बनता है। यह गीत दिखाता है कि फिल्मों में महिलाएं अक्सर सजावट या प्रदर्शन का माध्यम बन जाती हैं। 2010 में प्रदर्शित हुआ 'दबंग' फिल्म के "मुन्नी बदनाम हुई"[7] इस गाने में भी महिला पात्रों का यौनिक और आकर्षक रूप दिखाया गया है। गीत के बोल, संगीत और कैमरा एंगल यह संकेत देते हैं कि महिलाओं का मूल्य उनके सौंदर्य और आकर्षण के आधार पर मापा जा रहा है। यह स्त्री विमर्श के नकारात्मक पक्ष को दर्शाता है, जहां महिलाओं को केवल देखने और आनंद लेने की वस्तु के रूप में पेश किया जाता है। इन गानों के माध्यम से समाज में लैंगिक असमानता अब भी बनी हुई है। महिलाएं केवल सौंदर्य और यौनिक आकर्षण के आधार पर मान्यता प्राप्त करती हैं, जबकि पुरुष पात्र को स्वतंत्र, सक्रिय और निर्णय लेने वाला दिखाया जाता है। यह फिल्मी गीत समाज में महिलाओं के प्रति सांस्कृतिक दृष्टिकोण और लैंगिक पूर्वाग्रह को उजागर करता है।

नारी सशक्तिकरण और आत्मनिर्भरता

कुछ आधुनिक फिल्मी गीत महिलाओं के सशक्त और आत्मनिर्भर पक्ष को उजागर करते हैं। सन 2016 में आयी फिल्म 'दंगल' फिल्म के "धाकड़"[8] और 2007 में आयी फिल्म 'चक दे इंडिया' के "बादल पे पाँव हैं"[9] इन गानों में महिला पात्र अपने जीवन और निर्णयों में स्वतंत्र है। गीत के बोल, संगीत और नृत्य यह दिखाते हैं कि महिला अब केवल पारिवारिक या प्रेम-केंद्रित

नहीं, बल्कि सामाजिक और व्यक्तिगत निर्णयों में सक्रिय भूमिका निभा सकती है। यह गीत दिखाता है कि महिलाओं का जीवन केवल पुरुषों या परिवार के इर्द-गिर्द नहीं घूमता, बल्कि वे अपने जीवन में खुद नेतृत्व कर सकती हैं। महिलाएं अब सामाजिक दबाव और पारंपरिक सीमाओं के बावजूद अपने अधिकारों और इच्छाओं के लिए खड़ी हो रही हैं। गीत में दिखाए गए पात्र सशक्त, साहसी और आत्मनिर्भर हैं, जो आधुनिक समाज में महिलाओं की भूमिका और उनके अधिकारों को दिखाते हैं।

शिक्षा और सामाजिक चेतना

आधुनिक फिल्मी गीतों में महिलाओं में शिक्षा और सामाजिक चेतना को बढ़ावा देने का कार्य किया हैं। जैसे की 'चक दे इंडिया' फिल्म के "चक दे इंडिया"[10] इस गाने में महिला पात्रों को खेल और टीम वर्क के माध्यम से सशक्त दिखाया गया है। यह गीत यह संदेश देता है कि सामाजिक चेतना और शिक्षा के माध्यम से महिलाएं समाज में प्रभावी भूमिका निभा सकती हैं। यहाँ महिला पात्रों की ऊर्जा, आत्मविश्वास और नेतृत्व क्षमता को प्रमुखता दी गई है। स्त्री विमर्श के इस पहलू में महिला केवल पारंपरिक भूमिका में सीमित नहीं, बल्कि सामाजिक और व्यक्तिगत विकास में सक्रिय होती है। साथ ही, यह दिखाता है कि समाज में महिलाओं की भूमिका अब केवल घरेलू या पारिवारिक नहीं, बल्कि सामाजिक निर्णय, नेतृत्व और योगदान में भी महत्वपूर्ण हो गई है।

व्यक्तिगत स्वतंत्रता और आत्मनिर्भर प्रेम

आधुनिक फिल्मी गीतों में महिला पात्र को व्यक्तिगत स्वतंत्रता और प्रेम में आत्मनिर्भरता के रूप में दिखाया जाता है। 2014 में प्रदर्शित हुई फिल्म 'मेरी कॉम' के "दिल ये जिद्दी है"[11] और सन 2014 में प्रदर्शित हुई फिल्म 'हायवे' के "पट्टाखा गुड़ी"[12] इन गानों में महिला पात्र अपने जीवन में पूर्ण स्वतंत्रता महसूस करती है। महिला पात्र अपने प्रेम और भावनाओं के प्रति सशक्त और स्पष्ट है। यह गीत यह दर्शाता है कि महिलाओं को अब स्वतंत्रता के साथ प्रेम का अधिकार भी प्राप्त है। उनका प्रेम पारंपरिक बाधाओं और समाज के दबावों से स्वतंत्र है। महिलाएं अपने जीवन, प्रेम और करियर में स्वतंत्र और आत्मनिर्भर भूमिका निभा रही हैं। गीत न केवल मनोरंजन का साधन हैं, बल्कि महिला अधिकार और समानता का संदेश भी देते हैं।

महिला नेतृत्व और प्रेरणा

महिला नेतृत्व और प्रेरणा फिल्मी गीतों का महत्वपूर्ण विषय बन चुका है। 'चक दे इंडिया' में महिला पात्रों को खेल के मैदान में नेतृत्व क्षमता और साहसपूर्ण भूमिका में दिखाया गया है। उसी के साथ सन 2014 में आयी मर्दानी फिल्म का "मर्दानी अँथम"[13] इस गाने के बोल और दृश्य प्रभाव दर्शाते हैं कि महिलाएं प्रेरक और निर्णायक पात्र बन सकती हैं, और उनका प्रभाव केवल व्यक्तिगत जीवन तक सीमित नहीं है। इस गाने में महिला पात्र की सक्रिय भूमिका और स्वाभाविक नेतृत्व क्षमता दिखाई देती है। गीत यह दिखाता है कि महिलाओं की सामाजिक और व्यक्तिगत प्रेरणा केवल पुरुष पात्रों के आधार पर नहीं, बल्कि उनके अपने कर्म और निर्णयों से भी बनती है।

निष्कर्ष :

हिंदी फिल्मी गीतों में स्त्री विमर्श का स्वरूप समय, समाज और सांस्कृतिक चेतना के अनुरूप निरंतर परिवर्तित होता रहा है। प्रारंभिक काल के गीतों में स्त्री को मुख्यतः पारंपरिक, त्यागमयी और सहनशील रूप में प्रस्तुत किया गया, जहाँ उसकी भूमिका परिवार और पुरुष केंद्रित सामाजिक संरचना तक सीमित रही। बीच में हिंदी सिनेमा के गीतों में स्त्री के आंतरिक संघर्ष, भावनात्मक पीड़ा और सामाजिक बंधनों की झलक मिलने लगती है। लेकिन वह खुलकर विद्रोह नहीं करती। आधुनिक हिंदी फिल्मी गीतों में स्त्री विमर्श अधिक स्पष्ट, सशक्त और आत्मकेंद्रित रूप में सामने आता है। स्त्री को आत्मनिर्भर, निर्णय लेने वाली और सामाजिक अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाने वाली इकाई के रूप में चित्रित किया गया है। स्त्री विमर्श की दृष्टि से ये गीत सामाजिक चेतना को जागृत करने, रूढ़ मान्यताओं को चुनौती देने और समानता आधारित दृष्टिकोण को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस प्रकार, हिंदी फिल्मी गीतों के माध्यम से स्त्री की बदलती सामाजिक छवि और उसकी संघर्षशील चेतना को गहराई से समझा जा सकता है।

संदर्भ सूची

1) द सेकंड सेक्स, साइमन द बोउवार, (हिंदी अनुवाद) स्त्री उपेक्षिता, प्रभा खेतान, हिंदी पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली, 1998, पृ. क्र. 131
2) https://youtu.be/JP8Jl_xqytk?si=rc4i_ckKuFCaLIoj
3) https://youtu.be/cNV5hLSa9H8?si=TJ1ryCz02TpsA9zy
4) https://youtu.be/GZIh0bhuFtg?si=2NTWIzWUFoa9_t46
5) https://youtu.be/ZUjBxPvdUEs?si=-D4tfPaZAEdcJ2tm
6) https://youtu.be/AQeC89lO2w0?si=2GPPVcKB-SiZ8t_q
7) https://youtu.be/Jn5hsfbhWx4?si=E4A7WEHdJETLm4Ui
8) https://youtu.be/0zFoHrvbRu4?si=xIR0YhK9xs_DT8bF
9) https://youtu.be/DmsOinqrPvQ?si=VogvJ0ebiWrr4jbE
10) https://youtu.be/bnqLzCsffwY?si=CBgqRtrT6iSF3zfx
11) https://youtu.be/puKD3nkB1h4?si=4cOx4Fzc66O7tbuu
12) https://youtu.be/8HDTS80dlr4?si=L-rvRxBQzD3dvk6P
13) https://youtu.be/f2a_doo9PDY?si=BJjHjSA94obZiVCc

*****

ISSN : 2581-8848

हिंदी फिल्मी गीतों में सामाजिक संवेदना

ऐश्वर्या संजय शाह
शोधछात्रा, हिंदी विभाग,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर
मो. नं. - 8530528865
aishwaryashah235@gmail.com

सारांश

हिंदी फिल्मी गीत भारतीय समाज की सामूहिक चेतना, संवेदनशीलता और सामाजिक यथार्थ के सशक्त अभिव्यक्तिकार रहे हैं। फिल्मों की लोकप्रियता और गीतों की भावात्मक शक्ति ने सामाजिक मुद्दों को जनमानस तक पहुँचाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस शोध-आलेख में हिंदी फिल्मी गीतों में व्याप्त सामाजिक संवेदना का विश्लेषण किया गया है। इस शोधलेख में यह स्पष्ट किया गया है कि किस प्रकार गीतकारों ने गरीबी, वर्गभेद, नारी शोषण, मानवीय करुणा, राष्ट्रीय चेतना तथा सामाजिक विषमता जैसे विषयों को कलात्मक रूप में प्रस्तुत किया। यह शोध यह निष्कर्ष प्रस्तुत करता है कि हिंदी फिल्मी गीत केवल मनोरंजन का साधन न होकर समाज को जागरूक करने वाला एक प्रभावी सांस्कृतिक माध्यम हैं।

बीज शब्द : हिंदी फिल्मी गीत, सामाजिक संवेदना, सामाजिक यथार्थ, नारी चेतना, मानवीय मूल्य, जनचेतना, समानता, बाल संवेदना।

प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के साथ हिंदी फिल्मों को भी भारतीय समाज का दर्पण माना जाता है। फिल्मों के गाने इस दर्पण की आत्मा हैं। फिल्मी गीत मनोरंजन के साथ साथ समाज में स्थित समस्याएँ, संघर्षों, आकांक्षाओं और परिवर्तनों को व्यक्त करने का प्रभावी साधन हैं। स्वतंत्रता पूर्व से लेकर आज तक हिंदी फिल्मी गीतों ने सामाजिक में प्रबोधन करने कार्य किया है। हिंदी फिल्मी गीतों में सामाजिक संवेदना विभिन्न रूपों में दिखाई देती है। जैसे गरीबी, श्रमिकों की पीड़ा, स्त्री की सामाजिक स्थिति, जातिय व्यवस्था, सामाजिक विषमता, राष्ट्रप्रेम, मानवीय करुणा, नैतिक मूल्य तथा सामाजिक न्याय की भावना। गीतकारों ने अपने गीतों के माध्यम से आम जनता के दुख-दर्द, आशा-निराशा और संघर्षों को सरल एवं प्रभावशाली शब्दों में प्रस्तुत किया है। फिल्मी गीतों की लोकप्रियता और व्यापक पहुँच के कारण उनका प्रभाव समाज के हर वर्ग पर पड़ता है। यही कारण है कि सामाजिक संवेदना से परिपूर्ण गीत जनता को सोचने, प्रश्न करने और कभी-कभी परिवर्तन के लिए प्रेरित करने में सक्षम रहे हैं। जैसे की 1962 के भारत चीन युद्ध में लता मंगेशकर ने अपने 'ये मेरे वतन के लोगों' इस गीत के सहारे भारतीय जवान एवं आम जनता में राष्ट्रीय प्रेम जगाने का कार्य किया हैं। इस गाने से प्रभावित होकर भारतीय युवकों ने सेना में जाकर देश के लिए मर मिटने को भी तैयार हो गए थे। समय के साथ सामाजिक संदर्भ बदले हैं और उनके अनुरूप गीतों की विषयवस्तु और अभिव्यक्ति शैली में भी बदलाव आया है। हिंदी फिल्मी गीतों में व्याप्त सामाजिक संवेदना का अध्ययन केवल साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन के लिए भी अत्यंत प्रासंगिक और महत्वपूर्ण है।

सामाजिक संवेदना

जो संवेदना हमें समाज, समाज की परंपराओं, रुढ़ि, मान्यताओं, से अवगत करती है वही सामाजिक संवेदना है। आचार्य रामचंद्र शुल्कजी ने संवेदना इस शब्द का अर्थ लिखा हैं "संवेदना का अर्थ – सुख दु:खात्माक अनुभूति ही है।"[1] सामाजिक संवेदना समाज के प्रति गहरी सहानुभूति, करुणा और उत्तरदायित्व की भावना से है। शेखर शर्मा सामाजिक संवेदना के बारें में लिखते है "व्यक्ति के मन में किसी तत्व, विचार अथवा वस्तु के प्रति संवेदना पैदा होती है, अत: यह आवश्यक भी है की उसकी प्रतिक्रिया भी होती है जिसे वे प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में व्यक्त भी करेगा। इसका प्रभाव समाज पर भी पड़ेगा जो बाद में जाकर उसकी संवेदना सामाजिक संवेदना का रूप ग्रहाण कर लेगी।"[2] यह संवेदना व्यक्ति को न केवल अपने तक सीमित रखता है, बल्कि समाज के अन्य वर्गों के दुःख-दर्द को समझने और महसूस करने की क्षमता भी प्रदान कराता है। साहित्य और कला के माध्यम से सामाजिक संवेदना का संप्रेषण अधिक प्रभावी ढंग से होता है। हिंदी फिल्मी गीतों में सामाजिक संवेदना प्रतीकात्मक, कलात्मक और भावनात्मक रूप में व्यक्त होती है। गीतों की सीधी भाषा और मधुर संगीत श्रोताओं के मन पर गहरा असर डालती हैं, जिसके माध्यम से सामाजिक संदेश सहज रूप से आत्मसात हो जाता है।

हिंदी फिल्मी गीतों में सामाजिक संवेदना:

गरीबी और आर्थिक असमानता

हिंदी फिल्मी गीतों में गरीबी और आर्थिक असमानता का चित्रण कई बार किया है। ये गीत समाज में स्थित आर्थिक विषमता और गरीबों की पीड़ा को जनता के सामने लाते हैं। उदाहरण के लिए, फिल्म पतंग (1960) का गीत "देने वाले किसी को गरीबी न दे"[3] आम आदमी की निराशा और गरीब वर्ग की भावनाओं को प्रकट करता है। ऐसे गीत न केवल सामाजिक यथार्थ को सामने लाते हैं, बल्कि लोगों में समानता और सामाजिक न्याय के प्रति संवेदनशीलता भी बढ़ाते हैं। इसके माध्यम से समाज को यह संदेश मिलता है कि गरीबी सिर्फ आर्थिक नहीं, बल्कि मानवीय मुद्दा भी है। आधुनिक फिल्मों में भी ऐसे गीतों ने गरीबी और बेरोज़गारी के मुद्दों को उजागर किया है, जिससे समाज के अधिक जागरूक और संवेदनशील वर्ग का निर्माण हुआ।

मजदूरों की पीड़ा

मजदूर वर्ग की कठिनाइयों को हिंदी फिल्मी गीतों में बड़ी संवेदनशीलता से दर्शाया गया है। गीत आमतौर पर उनके संघर्ष, मेहनत और अधिकारों के प्रति उनके संघर्ष को सामने रखता हैं। फिल्म मजदूर (1983) का गीत "हम मेहनतकश इस दुनिया के"[4] श्रमिकों और आम जनता के सहयोग और संघर्ष की भावना को उजागर करता है। इस प्रकार के गीत समाज में श्रमिक वर्ग की समस्याओं और उनकी योगदान की महत्ता को लोगों तक पहुँचाते हैं। गीतों के माध्यम से मजदूरों में आत्मसम्मान और समाज में उनकी स्थिति के प्रति जागरूकता उत्पन्न होती है। आधुनिक फिल्मों में भी ग्रामीण और मजदूर जीवन की कठिनाइयाँ गीतों के माध्यम से दर्शाई जाती हैं, जिससे समाज में उनकी समस्याओं के प्रति करुणा और समझ बढ़ती है।

नारी संवेदना और सशक्तिकरण

हिंदी फिल्मी गीतों में महिलाओं की पीड़ा, उनके अधिकार, संघर्ष और समानता की भावना को बड़े मार्मिक ढंग से व्यक्त किया गया है। फिल्म मर्दानी (2007) का गीत "मर्दानी अँथम"[5] नारी सशक्तिकरण और आत्म-विश्वास को प्रोत्साहित करता है। इस प्रकार के गीत समाज में महिलाओं के अधिकारों, समानता और स्वतंत्रता के प्रति जागरूकता फैलाते हैं। वे महिलाओं में आत्मसम्मान और सामाजिक भागीदारी की भावना पैदा करते हैं। समाज में लैंगिक असमानता पर ध्यान आकर्षित करने और नारी सशक्तिकरण को बढ़ावा देने में ये गीत महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

देशभक्ति और राष्ट्रीय एकता

देशभक्ति से जुड़े गीत समाज में राष्ट्रीय चेतना और एकता को मजबूत करते हैं। जैसे की "ऐ मेरे वतन के लोगों"[6] (1963, गायक: लता मंगेशकर, संगीतकार: सी. रामचंद्र) भारतीय सैनिकों के बलिदान और समाज में एकता की भावना को उजागर करता है। ऐसे गीत समाज में सामूहिक भावना, त्याग और राष्ट्रप्रेम की प्रेरणा देते हैं। इसके अलावा, फिल्म साथी हाथ बढ़ाना के गीत सामूहिक प्रयास और सहयोग की भावना को भी प्रोत्साहित करते हैं। देशभक्ति गीतों के माध्यम से समाज में विभिन्न वर्गों और समुदायों के बीच भाईचारा और समानता की भावना को मजबूत किया जाता है। ये गीत लोगों को अपने देश और समाज की जिम्मेदारियों को समझने के लिए प्रेरित करते हैं।

मानवीय करुणा

हिंदी फिल्मी गीत मानवीय करुणा और सहानुभूति की भावना को फैलाने में सहायक होते हैं। ऐसे गीत लोगों में दूसरों की मदद करने और उनके दुख-सुख को साझा करने की प्रवृत्ति को विकसित करते हैं। 'अनाड़ी' फिल्म का गीत "जीना इसी का नाम हैं"[7] इस गाने में मित्रता और करुणा के महत्व को सरल ढंग से प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार के गीत समाज में नैतिकता, मानवता और करुणा के मूल्य को बढ़ावा देते हैं। गीतों के माध्यम से लोगों को यह संदेश मिलता है कि समाज में अन्य की मदद करना और सहानुभूति दिखाना एक जिम्मेदारी है।

सामाजिक न्याय और समानता

हिंदी फिल्मी गीत समाज में व्याप्त अन्याय और भेदभाव के खिलाफ चेतना उत्पन्न करते हैं। 'मदर इंडिया' (1957) फिल्म का गीत "दुनिया में हम आए हैं तो जीना ही पड़ेगा"[8] ग्रामीण और गरीब वर्ग की समस्याओं को उजागर करते हैं और समाज में समानता और न्याय की भावना को बढ़ावा देते हैं। इसके माध्यम से समाज को यह संदेश जाता है कि समानता, न्याय और मानव अधिकारों की रक्षा हर नागरिक की जिम्मेदारी है।

शिक्षा और जागरूकता

शिक्षा और सामाजिक जागरूकता पर आधारित गीत समाज में सुधार और विकास की दिशा में प्रेरणा देते हैं। शैक्षिक फिल्मों जैसे की 'म्यूजिक स्कूल' का गीत "पढ़ते जाओं बच्चा"[9] जैसे गीत बच्चों और युवाओं में शिक्षा के महत्व को उजागर करते हैं। इसके अलावा, ये गीत सामाजिक जिम्मेदारी, नैतिक मूल्यों और सच्चाई के प्रति सजग रहने की भावना पैदा करते हैं। समाज में शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ाने में ऐसे गीत महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

सामाजिक बुराइयों का विरोध

भ्रष्टाचार, अत्याचार, अत्यधिक लालच और अन्य सामाजिक बुराइयों के खिलाफ गीत समाज में जागरूकता उत्पन्न करते हैं। फिल्म अंधा कानून (1983) का गीत "ये अंधा कानून है"[10] सीधे तौर पर समाज सुधार और नैतिक मूल्यों का संदेश देते हैं। ये गीत लोगों को यह समझने में मदद करते हैं कि समाज में बुराइयों के खिलाफ आवाज़ उठाना और सुधार की दिशा में प्रयास करना आवश्यक है।

प्रेम और पारिवारिक मूल्य

हिंदी फिल्मी गीत पारिवारिक और सामाजिक मूल्यों को बनाए रखने में योगदान देते हैं। जैसे की फिल्म 'घर घर की कहानी' का गीत "दादी माँ दाई माँ प्यारी प्यारी दादी माँ"[11] जैसी गीतों के माध्यम से परिवार बड़ों के प्रति सम्मान और प्रेम का महत्व दर्शाया जाता है। ये गीत समाज में पारिवारिक जिम्मेदारी, स्नेह और आपसी समझ को बढ़ावा देते हैं।

बाल संवेदना

कुछ गीत बच्चों की मासूमियत और उनकी समस्याओं को उजागर करते हैं। जैसे की 'मासूम' (1983) फिल्म का गीत "लकड़ी की काठी"[12] यह गीत बच्चों के प्रति संवेदनशील दृष्टिकोण और समाज में उनके महत्व के प्रति जागरूकता बढ़ाते हैं। यह गाना बचपन की मासूमियत, कल्पना और खिलिने के साथ खेलने की खुशी से है। खिलौने के माध्यम से जीवन में जीने की दिशा को दर्शाया है।

सांस्कृतिक और सामाजिक समरसता

गीत समाज में सांस्कृतिक विविधता, धर्म-समानता और सामाजिक समरसता को बढ़ावा देते हैं। 'धूल का फूल' (1959)इस फिल्म का गीत "तू हिंदू बनेगा ना मुसलमान बनेगा"[13] ये गीत समाज में भाईचारा, समानता और विविधता के प्रति जागरूकता पैदा करते हैं। उसी के साथ धर्मों के बीच के तनाव को काम करते हैं।

निष्कर्ष :

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि हिंदी फिल्मी गीतों में सामाजिक संवेदना एक सशक्त और जीवंत तत्व के रूप में स्थित है। इन गीतों ने समाज के यथार्थ को संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया और मानवीय मूल्यों को स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। हिंदी फिल्मी गीत केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना का प्रभावी माध्यम हैं। उन्होंने आम जनता को समाज की समस्याओं से परिचित कराया और परिवर्तन की दिशा में सोचने के लिए प्रेरित किया। इस प्रकार हिंदी फिल्मी गीत भारतीय समाज की सामूहिक संवेदना का सजीव दस्तावेज़ हैं।

संदर्भ :

1) शुक्ल रामचंद्र, हिंदी,साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, 2003,पृ. क्र. 691
2) शर्मा शेखर, समकालीन संवेदना और हिंदी नाटक, भवन प्रकाशन, नई दिल्ली, 1988, पृ. क्र. 34
3) https://youtu.be/U6l_Ol3T3Sk?si=hAqILNxSj6gnuvZU
4) https://youtu.be/Nwnfb3g2zJo?si=OpAqrn0NQxp8rl_5
5) https://youtu.be/f2a_doo9PDY?si=Mimg1O0eGizDFdcZ
6) https://youtu.be/Wvr8sX5-T_8?si=Ct6y5b7MNWnktyk5
7) https://youtu.be/c8bXTWEeh9Y?si=Wl6AGNS__G5MMhkk
8) https://youtu.be/4BBB0PX8IvE?si=oaRLZ6QHcxCOybCy
9) https://youtu.be/ukldidu9fNQ?si=QC_fQZRWa1b3BdUp
10) https://youtu.be/h6LGTsi6pEY?si=Q0x5Lkq9mrsfkrvi
11) https://youtu.be/0__pzoLUq10?si=fDvc9IxqJMVDluGx
12) https://youtu.be/wSs2n5abdmg?si=fjPuN45n0WDX4MqR
https://youtu.be/FGrXizYFEjI?si=IbKuwXaiorbpmV6c